


कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि विरचित
जैन रामायण (त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र)
पर आधारित ऐतिहासिक रसपूर्ण उपन्यास

श्री विश्वकल्याण प्रकाशन
जयपुर
की हिन्दी साहित्य की पंचवर्षीय
योजना के अन्तर्गत द्वितीय वर्ष का
द्वितीय पुष्प

लेखक
मुनिश्री भद्रगुप्त विजय जी

प्रकाशक :
हीराचंद वैद
पारसमल कटारिया
—मानद मंत्री
श्री विश्वकल्याण प्रकाशन
आत्मानन्द सभा भवन
घी वालों का रास्ता
जयपुर–३

शाखा :
श्री विश्वकल्याण प्रकाशन
—मानद मंत्री
सुन्दरलाल दलाल
दिवानसिंह बाफना
घंटाघर, उदयपुर

वि० सं० २०२५, दीपावली

प्रथम आवृत्ति—प्रति : १०००

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक :
अजन्ता प्रिण्टर्स
जयपुर–३

हिन्दी साहित्य की पंचवर्षीय योजना

प्रथम वर्ष की चार पुस्तकें	द्वितीय वर्ष की चार पुस्तकें
ज्ञानसार (भाग १)	१. जयशंखेश्वर
वासना और भावना	२. अंजना
३. [illegible] तारे	३. जीवन वैभव
[illegible]	४ प्रिय कहानियाँ (प्रेस में)

निवेदन करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि श्री विश्वकल्याण प्रकाशन की साहित्य-योजना सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त कर रही है। विशेष रूप से उदयपुर (राज०) का श्री जैन संघ धन्यवाद का पात्र है कि जहाँ से १०८ सदस्य संस्था को प्राप्त हुए हैं। वहाँ के उत्साही कार्यकर्ता श्रीयुत सुन्दरलाल जी दलाल व दिवान सिंह जी वाफना को हम हार्दिक धन्यवाद देते हुए हर्षान्वित होते हैं। उदयपुर अब विश्वकल्याण प्रकाशन की शाखा बना है। पू० महाराज श्री भद्रगुप्त विजयजी म० सा० का उदयपुर चातुर्मास ऐतिहासिक चातुर्मास बना है, आपकी प्रेरणा से संघ ने नैतिक धार्मिक व आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त की है।

आसोज पूर्णिमा
२०२६

हीराचन्द वैद
पारसमल कटारिया

संस्कृत ग्रन्थकार

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरीश्वर जी

[विक्रम की बारहवीं शताब्दी]

गुजराती उपन्यासकार

सिद्धान्तमहोदधि स्व० पूज्य आचार्य श्री विजय-प्रेम सूरीश्वरजी
महाराज के शिष्यरत्न प्रभावक प्रवचनकार
पू० पं० श्री भानुविजयजी गणिवर के
शिष्यरत्न पू० मुनिश्री भद्रगुप्त विजयजी

[वि० सं० २०२०]

हिन्दी अनुवादकार

श्रीयुत जसराज सिंघी (पिंडवाड़ा)

[वि० सं० २०२५]

अनुक्रम



● 'अंजना' के विमोचन पश्चात् राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया 'अंजना'

अनुरोध

रामायण में प्राचीन भारतीय संस्कृति का दर्शन होता है। भारत के बाहर भी रामायण का आकर्षण देखने को मिलता है। वाल्मिकी रामायण और तुलसी रामायण तो सुप्रसिद्ध हैं ही, आज जैन रामायण हिन्दी भाषा में पढ़ने को मिली, इससे ज्ञात हुआ कि भारतीय विभूति श्री हेमचन्द्राचार्य ने रामायण लिखी है। इस में अन्य रामायणों की अपेक्षा आदर्शों में व्यापकता है और पत्र आलेखन में रोचकता है। मैं हिन्दी भाषी जनता से अनुरोध करता हूं कि मुनि श्री भद्रगुप्त विजयजी द्वारा अनूदित इस जैन रामायण का अध्ययन करें।

मोहनलाल सुखाड़िया

मुख्य मन्त्री राजस्थान

● 'अंजना' के विमोचन के पश्चात् राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया 'ज्ञान पूजन' करते हुए। पास में श्री दीवानसिंह वाफना (श्री विश्व कल्याण प्रकाशन की उदयपुर शाखा के मानद मन्त्री) खड़े हैं।



१८. वर का वरन

चन्द्रमा की चांदनी में राजमहल का संगमरमर हँस रहा था।

प्रवेश द्वार पर दो सशस्त्र सैनिक पहरा लगा रहे थे। राजमार्गों पर विद्याधरों का घूमना फिरना नहीं के बराबर था। महेन्द्रनगर स्वर्गलोक की मस्ती में निद्राधीन बना हुआ था। परन्तु राजा महेन्द्र की नींद तो कई दिनों से अदृश्य हो गई थी। अपने शयनागार में विचारों के सघन भार के नीचे दबा हुआ वह इधर से उधर चक्कर काट रहा था। संगमरमर का महल उसकी इस चिन्ता को कम करने में असमर्थ था। उसका अतुल बाहुबल उसकी चिंता की आग बुझा नहीं सकता था। अपार वैभव संपत्ति उसका मानो दुःख दूर नहीं कर सकते थे।

कभी तो वह पलंग में करवटें बदलता हुआ लेटता है तो क्षण भर में उसे चक्कर काटता हुआ देखते हैं। घड़ी भर में वह झरोखे में जाकर आकाश के सामने टकटकी बांधता है, तो थोड़ी ही देर में चमकते हुए स्फटिक फर्श की ओर देखने लगता है।

इतने में तो शयनागार के द्वार पर खट खट हुआ।

'द्वार खोलो' ,मधुर परन्तु कुछ वेदना मिश्रित स्वर सुनाई दिया। राजा स्वर से परिचित था। तुरन्त उसने द्वार खोला।

द्वार खुलते ही पटरानी हृदयसुन्दरी ने मौन रूप से प्रवेश किया।

दो चार मिनिट तक कोई कुछ भी नहीं बोलता। न तो बोलता राजा और न बोलती रानी! पर रानी से धैर्य न रक्खा गया!

'स्वामिन्, क्या आज कोई पता लगाकर आया?'

'हां, पता लगाकर कब कोई नहीं आता? परन्तु—'

'पसंद नहीं आता.......' यही बात है न?

'हाँ,' राजा ने निश्वास छोड़ा।

'मुझे एक दूसरा ही विचार आता है,' रानी बोली।

'क्या?'

'जो २ विद्याधर राजपुत्रों को देखने जाते हैं उन्हें आज्ञा दो कि वे अपने साथ राजपुत्रों के चित्र तथा उनका सम्पूर्ण परिचय भी लावें।'

'यह बात ठीक है,' राजा ने कुछ सोचकर कहा।

पुत्री अंजना यौवन के आँगन में आ चुकी थी। रूप, गुण और कला की त्रिवेणी तुल्य पुत्री के लिए योग्य वर की खोज हो रही थी। विद्याधरों की दुनिया में से राजा महेन्द्र के कुशल पुरुष खोज में लगे थे। दिन बीतते जा रहे थे परन्तु अभी तक कोई राजा और रानी की पसंद में ठीक नहीं बैठता था और इसीलिये राजा और रानी दोनों शोकातुर रहते थे।

रात्रि का दूसरा प्रहर पूर्ण होने वाला था, राज दम्पत्ति निद्राहीन बना।

प्रातः उठते ही राजा ने तुरन्त महामंत्री को बुलवाया। महामंत्री प्रातःकालीन कार्यों में व्यस्त थे, परन्तु राजा की आज्ञा पाते ही अविलंब तैयार होकर राजमहालय में पहुँच गए।

राजा मंत्रणालय के द्वार पर ही महामंत्री की प्रतीक्षा में खड़े थे। मंत्री को आते देखकर राजा आगे बढ़े और हाथ पकड़कर उन्हें मंत्रणालय में ले गए। 'आज देवी को एक उत्तम उपाय सूझा है, वह आपको कहने के लिये इस समय कष्ट दिया है, राजा ने बात शुरु की।

'आप मेरे नाथ हैं। आप जब भी याद करें तभी सेवक आपकी सेवा में उपस्थित है।

'अपने जो २ पुरुष अंजना के वर की खोज करने के लिए जाते हैं, उन्हें ऐसा आदेश दो कि उन्हें जो कुमार पसंद आए उसका चित्र साथ लेते आए तथा उसके विषय में सम्पूर्ण परिचय भी एकत्रित कर लाएं।'

'जी हां, अभी आज्ञा का पालन करता हूँ—' महामंत्री ने राजा की बात बिना तर्क वितर्क के स्वीकार करते हुए कहा।

'नहीं २, परन्तु यह बात उचित तो लगती है न?' बिना किसी तर्क के मंत्री को बात स्वीकार करते हुए देखकर राजा ने प्रश्न किया।

'बात उचित है महाराज! इससे हमें पसंद करने में सरलता और सावधानी रहेगी।' राजा को प्रणाम कर महामंत्री घर आए। अपनी शेष प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त हो कर उन्होंने सम्बन्धित व्यक्तियों को बुलाकर योग्य सूचना देकर रवाना किया।

कुछ दिन बीते।

एक विचक्षण मंत्री एक दिन उपस्थित हुए। उन्होंने राजा

के समक्ष एक चित्र उपस्थित किया। राजा ने चित्र देखा। रानी ने भी चित्र देखा। देखकर दोनों बड़े प्रसन्न हुए।

'मंत्री ! क्या यह किसी कलाकार की कल्पनामूर्ति है अथवा सचमुच किसी राजकुमार का ही चित्र है?' राजा ने चित्र पर दृष्टि रखकर मंत्री से पूछा। 'महाराजा ! यह किसी कलाकार की कल्पना मूर्ति नहीं, परन्तु यह जिसका चित्र है वह राजकुमार अभी विद्यमान है।'

बस ! राजा रानी के आनंद की सीमा ही न रही। अब तक हजारों राजकुमार देखे,—उनके विषय में सुना—परन्तु चित्त प्रसन्न नहीं होता था। आज यह चित्र देखकर राजा रानी का चित्त प्रसन्न हुआ।

चित्र राजमहल में फिरने लगा। जो देखता है वह अंजना को धन्यवाद देता है, जो भी देखता है वह 'अपूर्व रूप' कह कर हँस पड़ता है।

दूसरे दिन का उदय हुआ। राजसभा एकत्रित हुई। वहां एक अन्य मंत्री भी चित्र लेकर उपस्थित हुआ। राजा को प्रणाम कर उसने चित्र राजा की सेवा में प्रस्तुत किया।

सुन्दर वस्त्र से ढके हुए चित्र पर से वस्त्र हटाया गया और ज्योंही चित्र को देखा राजा की आंखें विकसित हो गई। चित्र देखते ही रहे......देखते ही रहे......! राजा के मुख की रेखाएं देखकर सभा के प्रत्येक सभ्य के मन में चित्र देखने की उत्कंठा जाग्रत हुई।

राजा ने चित्र दिया रानी को। रानी भी इसे देखकर हर्ष से पुलकित हो गई। गत-दिन का चित्र भी रानी के पास ही था। तुरन्त उसने वह चित्र निकाला और आज के चित्र के साथ उसका मिलान करने लगी, पर कोई किसी से घटिया

हो तब न ? दोनों में से जिसे देखें वही मन को लुभाता है। रानी की किंकर्तव्य विमूढ़ता बढ़ गई। दोनों में से किसे पसंद करे ? उसने दोनों चित्र दिये राजा को। राजा की भी यही स्थिति हुई ! महामंत्री राजा रानी की इस किंकर्तव्य विमूढ दशा को समझ गए। उन्होंने गत-दिन चित्र लाने वाले मंत्री को खड़ा कर कहा—

'आप गत-दिन जिसका चित्र लाए हैं, उसके संबंध में जो कुछ विशेष परिचय आपको हो वह महाराजा को निवेदन करो।

मंत्री ने कहा—'महाराज ! मैंने जो चित्र कल आपकी सेवा में प्रस्तुत किया था उस राजकुमार का नाम 'विद्युत्प्रभ' है। विद्याधर पति हिरण्याभ का पुत्र है। सुमना रानी की कुक्षि को उज्ज्वल करने वाला है। इसके चित्र पर से ही इसके रूप का पता चल सकता है'; और 'आकृतिः कथयति गुणान्' आकृति को देखकर व्यक्ति के गुणों का पता लगा सकते हैं। रूप ....कुल, बल-बुद्धि-गुण आदि सभी उत्तम कोटि के हैं। विशेष तो क्या कहूँ....?' मंत्री ने अपना वक्तव्य पूरा किया। अब महामंत्री ने दूसरा चित्र लाने वाले मंत्री से कहा—

'अब आप जो चित्र लाए हैं उसका विशेष परिचय दें।' मंत्री खड़े हुए, राजा को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और अपना वक्तव्य शुरू किया।

'महाराज ! आदित्यपुर नगर विद्याधरों की दुनिया में प्रसिद्ध है। इस नगर का राजा है प्रह्लाद। पराक्रमी और गुणवान् प्रह्लाद के केतुमती नामक पत्नी है। उसका 'पवनंजय'। अद्भुत पराक्रमी और अपार कलाओं स्वामी है। ... का चित्र ही इसके अद्वितीय गुण ...

राजा को दोनों राजकुमारों की विशेषता समान लगी। किंकर्तव्यविमूढ़ता का अन्त नहीं हुआ। राजा, रानी और अन्य सोच में पड़ गए, परन्तु इतने में तो विद्युत्प्रभ का चित्र लाने वाले मन्त्री महोदय ने खड़े होकर कहा—

'महाराज! एक महत्त्वपूर्ण बात तो बताई ही नहीं,'

'वह क्या?' बड़ी उत्सुकतापूर्वक राजा ने प्रश्न किया।

'विद्युत्प्रभ चरम शरीरी है—ऐसा एक विश्वासपात्र नैमित्तिक का कथन है अर्थात् इसी भव में मोक्ष में जाने वाली उत्तम आत्मा है।'

'पवनंजय की अपेक्षा विद्युत्प्रभ की यह असाधारण विशेषता है।' महामन्त्री ने स्पष्टीकरण करने के आशय से प्रश्न किया।

'आपने विद्युत्प्रभ की जो बात कही वह तो सुन्दर है, परन्तु जिस नैमित्तिक ने इनके इसी भव में निर्वाण की बात कही, उसने यह भी कहा होगा कि कौन से वर्ष में इनका निर्वाण होगा?'

'जी हाँ, यह भी कहा है।'

'वह बात कहो।'

'नैमित्तिकों ने कहा है कि अठारह वर्ष की वय में निर्वाण होगा।'

'हें! क्या कहा? अठारह वर्ष की वय में निर्वाण?' राजा ने प्रश्न किया।

'जी हाँ। यह बात सत्य है, जरा भी झूठी नहीं।'

महामन्त्री ने पवनंजय का चित्र लाने वाले मन्त्री महोदय से पूछा—'मन्त्री महोदय। पवनंजय के आयुष्य के विषय में आपके पास कोई ठोस जानकारी है? यदि हो तो कहो।'

'जी हाँ है न। पवनंजय दीर्घ एवं प्रवल आयुष्य वाले हैं ऐसा नैमित्तिकों का कथन है और यह कथन विश्वसनीय है।'

महामन्त्री ने महाराजा की ओर देखा। राजा महामन्त्री के निर्णय को समझने का इच्छुक था। महामन्त्री ने राजा के मुख पर खिंची हुई रेखाओं से समझा।

'महाराजन्! अब यदि आप श्री की आज्ञा हो, तो इस सम्बन्ध में कुछ कहूँ.........।'

हाँ हाँ अवश्य कहें—महामन्त्री!

खाँसकर, जरा गला साफ कर उत्तरीय को कंधे पर व्यवस्थित कर महामन्त्री ने अपना कथन शुरू किया।

'महाराजन्! राजकुमारी अंजना के लिए योग्य वर को पसन्द करने के लिए आप श्री ने भारी श्रम किया है, यह इस लिये कि अंजना शादी करके जहाँ भी जाए वहाँ वह सुखपूर्वक अपना जीवन बिता सके। इस लोक और परलोक में सुखद करणी कर सके। भगवंत जिनेश्वरदेव कथित भाविक जीवन जी सके। इतना ही नहीं परन्तु अपने पति, सास, श्वसुर, ननद एवं देवर आदि को निर्मल स्नेह के जल से स्नान करा दे। पति की ओर से इसे वैषयिक सुखप्राप्ति में कोई विघ्न न आए।

इन सब के लिए जिसके साथ हम अंजना का पाणिग्रहण करते हैं, उसका आयुष्य कितना है, यह जान लेना आवश्यक है और वह हमने जान लिया है। विद्युत्प्रभ की अपेक्षा पवनंजय दीर्घ आयुष्यवाला है और अन्य किसी बात में वह विद्युत्प्रभ से पीछे नहीं है अतः मुझे तो लगता है कि अंजना के लिए पवनंजय ही योग्य है।'

नंदीश्वर की यात्रा पर जाने के लिए सारे नगर में तैयारियाँ होने लगीं। राजा के अन्तःपुर में भी भारी उल्लास व्याप्त हुआ।

'बेटी अंजना! तैयार हुई या नहीं?' हृदयसुन्दरी अंजना को कहना भूल ही गई थी, और अंजना तो अपने खंड में बैठी सखियों के साथ वार्ता विनोद कर रही थी। हृदयसुन्दरी को अचानक याद आई। दौड़कर वह अंजना के पास आई और उसे तैयार होने के लिए कहा।

'किस बात की तैयारी माँ?' अंजना को तो नंदीश्वर द्वीप की यात्रा का पता नहीं था।

'क्यों, तुझे समाचार नहीं मिले? हमें नंदीश्वर द्वीप चलना है।'

'अति उत्तम, अभी तैयार हुई,' तीर्थयात्रा की बात आते ही वह नाच उठी। माता को विदा कर सखियों को तैयार होने के लिए अंजना ने कहा। परन्तु अंजना की प्रिय सखी वसन्ततिलका वहाँ पर उपस्थित नहीं थी।

'वसन्ततिलका कहाँ है?' अंजना ने पूछा।

'यह आई,' द्वार में प्रवेश करते ही वसन्ततिलका ने कहा।

'आयुष्य तो बड़ा लगता है।'

'मेरी सखी से तो छोटा ही है।'

'तो मुझ से जल्दी मरना है न?'

'हाँ। तुझे आँखों के सामने देखते देखते मरूँ तो........।'

'अरे अब फिर मरने की बात, जीने की बात करो न।' दूसरी सखी ने कहा।

'अरे, पर तू कहाँ गई थी ?' अंजना ने वसन्ततिलका से पूछा।

'मन्त्रणालय में,' गंभीर मुद्रा करके वसन्ततिलका ने उत्तर दिया।

'तो तुझे मन्त्रणालय में किसने घुसने दिया ?'

'मुझे कौन रोक सकता है ?'

'ओ हो !'

'हाँ, हाँ ! माताजी के पीछे पीछे पहुँच गई

'महान् पराक्रमी।'

'तो क्या कम पराक्रमी हूँ ?'

'ठीक, कम नहीं, पर यह तो कह कि मन्त्रणालय में क्या जानकारी प्राप्त की ?' अंजना ने मूल बात पर प्रश्न किया।

'माताजी और पिताजी ने आज तेरे लिए निर्णय कर लिया है।'

'मेरे विषय में ?'

'नहीं तो, क्या मेरे विषय में ?'

'किस बात का निर्णय ? जो भी हो, स्पष्ट क्यों नहीं कहती ?'

'स्पष्ट कथन की तो इसने कसम ले रक्खी है।' मिश्रका ने

अंजना का पक्ष लिया।

'तेरे तो कसम नहीं है न ? तू ही कह दे।' मिश्रका को वसन्ततिलका ने आँख दिखाई।

'मैं तो मन्त्रणालय में नहीं थी, अन्यथा तेरी तरह ठट्ठे-बाजी नहीं करूँ।' मिश्रका भभक उठे ऐसी नहीं थी।

नंदीश्वर द्वीप में गगनचुम्वी भव्य जिन मंदिरों को देखकर सब के हृदय पुलकित हो गए। विधिवत् प्रवेश कर सब ने उमड़ते हुए भक्ति भाव से परमात्मा श्री जिनेश्वर देव की उत्तम द्रव्यों से पूजा की।

द्रव्य पूजा पूर्ण कर सभी भाव पूजा करने के लिये मंदिर के मध्य भाग में आकर बैठे। परमात्मा के प्रति पूर्ण भक्ति-पूर्वक मधुर कंठ से स्तुति की।

वहाँ आदित्यपुर का राजा प्रह्लाद भी अपने विशाल परिवार के साथ यात्रार्थ आया हुआ था। राजा महेन्द्र की अपूर्व जिन भक्ति देखकर पीछे ही वैठ गया।

राजा महेन्द्र के एक ओर बैठी हुई अंजना पर प्रह्लाद की दृष्टि पड़ी। उसके चित्त में विचारों की एक पंक्ति प्रसारित हो गई। तत्क्षण पुनः वह प्रभु भक्ति में लीन हो गया।

स्तुति पूर्ण हुई। राजा महेन्द्र परिवार के साथ जिन मंदिर से वाहर निकला। प्रह्लाद ने भी अनुसरण किया और वह महेन्द्र से मिला।

दोनों राजाओं ने एक दूसरे को कुशलक्षेम पूछा। राज्य की कुशलता पूछी। दोनों बातें करते करते महेन्द्र के निवास स्थान पर आ पहुँचे। मन्त्रणालय में दो सुन्दर सिंहासनों पर दोनों वैठे और वार्तालाप आगे बढ़ा।

प्रह्लाद ने जरा मौन धारण कर महेन्द्र के सामने गंभीर दृष्टि से देखा।

'कहिए, जो कुछ कहना हो, निःसंकोच कहिए।' महेन्द्र ने प्रह्लाद की मुखमुद्रा देखकर कहा।

'मुझे एक माँग करनी है।' मुस्कराते हुए प्रह्लाद ने भूमिका की रचना की।

'एक नहीं, दो !' महेन्द्र ने प्रह्लाद के संकोच का निवारण कर किया।

'राजपुत्र पवनंजय के लिए आपकी अंजना मुझे चाहिए, प्रह्लाद ने खुले हृदय से बात कही।

जब से उसने जिन मंदिर में अंजना को देखा था तब से उसके चित्त में अंजना को पुत्रवधू बनाने का संकल्प पैदा हुआ था। पुत्र पवनंजय के लिए उसे अंजना अत्यन्त अनुरूप लगी।

इधर राजा महेन्द्र तो चाहता ही था। जो प्रिय था वही वैद्य ने बताया। महेन्द्र ने बिना किसी खींचतान या आनाकानी के प्रह्लाद के वचन को मान्यता दी। प्रह्लान के आनंद की सीमा न रही। इतना ही नहीं परन्तु विवाह मुहूर्त संबंधी निर्णय लेने के लिए तुरन्त पुरोहित भी बुलवाया गया।

'पुरोहित जी ! बड़ा शीघ्र आता हो ऐसा मुहूर्त बताओ। राजा महेन्द्र ने कहा और प्रह्लाद के सामने देखा। प्रह्लाद ने भी इसका समर्थन किया और कहा, 'हाँ हाँ अति विलंब करना अच्छा नहीं। शुभे शीघ्रम्।'

ज्योतिषी ने भी सोचा कि यहाँ मैं सुन्दर में सुन्दर मुहूर्त निकालकर दिखाऊँगा परन्तु यदि कोई देर से होगा तो इन राजाओं को पसन्द नहीं आएगा। अतः अति गहन रूप से न देख कर ऊपर ऊपर देखकर कह देना अधिक हितकर है।' नक्षत्र, योगआदि थोड़ा सा देखकर ज्योतिषी ने कहा:—'आज से तीसरे दिन विवाह मुहूर्त आता है'।

'उत्तम ! उत्तम !' दोनों राजा बोल उठे।

जीव की कैसी अज्ञान दशा है ! दोनों राजा भावी भयंकर होनहार को कहाँ से जान सकते हैं ? इन्हें क्या पता कि इस

मुहूर्त में गठबन्धन से पुत्र-पुत्री जुड़ेंगे इसका परिणाम दारुण होगा।

सुख के दिनों में आमोद प्रमोद करते जीव को समझ नहीं होती कि छाया के बाद धूप आयेगा। फूल के साथ कांटे लगे हुए होते हैं।

दोनों राजाओं की अपने अपने मन की धारणाएँ सफल होने से दोनों आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। फिर तीसरे ही दिन लग्न मुहूर्त आने से दोनों नाच उठे और उन्होंने निर्णय लिया कि मानसरोवर के रमणीय तट पर इस भव्य विवाहोत्सव का आयोजन किया जाए।

दोनों ने अपने अपने परिवार को आज्ञा भी दे दी कि मानसरोवर के तट पर स्वर्ग तुल्य एक सुन्दर नगर खड़ा कर दें।

परन्तु यह दोनों समधियों की बात हुई।

इस बात का पता प्रह्लाद पुत्र पवनंजय को चला। उसने तुरन्त अपने मित्र प्रहसित को पूछा :—

'मित्र ! क्या तूने अंजना देखी है। वह कैसी है ?'

'अंजता ? हाँ मैंने देखी है। रंभा और उर्वशी के सौंदर्य भी उसके अनुपम सौंदर्य के सामने टिक नहीं सकते, हँसते २ प्रहसित ने कहा।

'तू मजाक न कर; सच्ची सच्ची बात कह।'

प्रहसित को हँसता देखकर पवनंजय के मन में कुछ शंका उत्पन्न हुई।

मजाक भी होती होगी मित्र ? उसका मैंने जो रूप देखा है वह शब्दों से अवर्णनीय है। मैं तो क्या बृहस्पति आ जाए तो वह भी वर्णन करने में असमर्थ रहेगा—समझे ?

ये शब्द सुनकर पवनंजय कहाँ रुकने वाला था?

अंजना को प्रत्यक्ष देखने के लिए वह लालायित हो गया। प्रहसित के गले में दोनों हाथ डालकर, आंखों से आंखें मिला कर उसने कहा—'मित्र! आज ही मुझे अंजना दिखा'।

'अरे, परन्तु पाणिग्रहण में कहाँ देर है? तीसरे दिन तो—'

'तीन दिन हैं बीच में, मित्र! एक दिन तो क्या एक एक क्षण भी अब मुझे एक माह सा लग रहा है।'

काम की गति विचित्र होती है। काम ने किसे नहीं नचाया? अच्छे अच्छे पंडितों-मुनियों को भी काम ने क्षण भर में पछाड़ दिये हैं तो फिर पवनंजय जैसा राजपुत्र तो किस खेत की मुली थी? काम के वातावरण में फँसने के बाद इसमें से मुक्त होना अति दुष्कर होता है। ऐसा दुष्कर कार्य करने वाले तो झांझरिया मुनि, सुदर्शन सेठ अथवा स्थूलभद्र जैसे विरले ही होते हैं। प्रहसित ने कहा, 'मित्र, जरा धैर्य रख। आज रात को तू अपनी भावी पत्नी को प्रत्यक्ष देखेगा—बस?

पवनंजय को प्रहसित की बात से आश्वासन मिला। कब रात हो और अंजना देखने को मिले......बस इसी विचार में उसने जैसे तैसे दिन काटा।

बेचारा पवनंजय नहीं जानता था कि आज की रात उसके लिए अभिशाप रूप बनने वाली है, यह भी नहीं जानता कि आज रात को वह एक दारुण अनिष्ट का निमित्त बनेगा!

आवेश में दौडते हुए जीव की कैसी करुणाजनक स्थिति का सर्जन होता है, इतना ही नहीं परन्तु यह अन्य जीवों की भी कैसी विकट स्थिति कर देता है यह बात यहाँ हमें पवनंजय भली प्रकार बता देता है।

रात हुई। पृथ्वी पर अन्धकार का साम्राज्य छा गया। पवनंजय के वासनापूर्ण हृदय में अंजना को देखने जाने की इच्छा तीव्र हो गई। मित्र प्रहसित आ गया। पवनंजय को देने योग्य सलाह देकर दोनों मित्र आकाश मार्ग से मानसरोवर के तट पर आ पहुँचे।

राजा महेन्द्र ने अंजना के लिए सात मंजिल का महल खड़ा कर रक्खा था। रत्नों के दिपकों से महल जगमगा रहा था। सातवीं मंजिल पर अंजना अपनी सखियों के साथ वार्ता विनोद कर रही थी।

दोनों मित्र सातवीं मंजिल पर पहुँचे। प्रहसित ने ऐसा स्थान ढूँढा कि जहाँ से वे अंजना को देख सके परन्तु अंजना अथवा उसकी सखियाँ इन दोनों मित्रों को न देख सकें।

पवनंजय ने अंजना को देखा। वह देखता ही रहा। अंजना का अनुपम रूप देखकर पवनंजय विस्मित हो गया। विश्व की यह श्रेष्ठ सुन्दरी अपनी भावी पत्नी है इस विचार से उसका मन नाच उठा।

इतने में अंजना की सखियों की बातें उसके कान में पड़ीं।

वसन्ततिलका बोली, 'अंजना तू वास्तव में सौभाग्यशाली है कि तुझे पवनंजय जैसा पति मिला।'

मिश्रका बोली, 'अरे वसन्ता तू भी खूब मक्खन लगा रही है। चरम-शरीरी विद्युत्प्रभ को छोड़कर कोई अन्य वर भी प्रशंसनीय होगा भला ?'

वसन्ततिलका बोली, 'तू तो पगली है पगली। तुझे कुछ भी पता तो है नहीं और चली है विद्युत्प्रभ की प्रशंसा करने। अल्पायु पति अपनी स्वामिनी के किस काम का ? पति तो दीर्घायु होना चाहिए—समझी ?

मिश्रका बोली, 'तेरी भी बुद्धि पर पाला पड़ गया लगता है। अमृत थोड़ा भी हो तो अमृत अमृत ही है जबकि विष के बड़े बड़े घड़े भी भरे हों तो किस मतलब के ?

अंजना न तो वसन्ततिलका का पक्ष ले सकती और न मिश्रका का, उसका तो मौन ही रहना उचित है अन्यथा सखियाँ उसकी खूब गत बनाएँ।

परन्तु अंजना के मौन ने पवनंजय के हृदय में और ही विचार को जन्म दिया। उसने सोचा "यह दूसरी सखी मेरी तुलना विष के साथ कर रही है फिर भी अंजना मौन है, अतः अवश्य इसके मन में विद्युत्प्रभ बसा हुआ है। यदि इसने मुझे मन में बसाया होता तो सखी का मुँह बन्द कर देती। उसका क्रोध भभक उठा।

कमर से तलवार खींचकर आगे बढ़ा। 'जिसके मन में विद्युत्प्रभ है उस सखी और उसकी स्वामिनी दोनों के सिर धड़ से अलग कर डालूँ।' इस प्रकार कहता हुआ अंधकार को चीरता हुआ वह आगे बढ़ा कि प्रहसित ने उसका हाथ पकड़ कर रोक दिया।

'यह क्या करता है ?'

मुझे रोक मत। अपने क्रोध की अग्नि में आहुति देकर ही मैं शान्त होऊँगा।

'अरे, स्त्री अपराधिनी होने पर भी अवध्य है.........तो यह अंजना तो निरपराधिनी है।

'अंजना निरपराधिनी है ?' बोल मत, व्यर्थ मुझे अधिक क्रुद्ध न कर।'

'सत्य कहता हूँ मित्र, अंजना निरपराधिनी है। सखी को

बोलने से उसने रोकी नहीं इसमें उसकी लज्जा ही कारण है, न कि इसके हृदय में विद्युत्प्रभ है'।

प्रहसित ने कठोर शब्दों से पवनंजय को दबा दिया परन्तु पवनंजय के हृदय से अंजना के प्रति रोष तनिक भी कम नहीं हुआ। जितने उत्साह से, प्रेम से, वह अंजना के रूपामृत का पान करने के लिए आया था उतने ही द्वेष से—वैर से वह लौट गया। मित्र के साथ वह आकाशमार्ग से सीधा अपने आवास पर पहुँच गया।

अपने आवास पर आया परन्तु उसे नींद नहीं आती। कहाँ से आए? एक ओर अंजना के साथ पिता जी ने ब्याह निश्चित् किया है, और दूसरी ओर अंजना के प्रति उसके हृदय में भयंकर तिरस्कार जाग उठा है। अब करना तो क्या? अनेक प्रकार के विचारों की अग्नि में उसका दिल सुलग रहा है।

नाना प्रकार के विचार करता हुआ भी यह किसी भी निर्णय पर न आ सका। तब इसे प्रहसित की याद आई। 'कब सुबह हो और मित्र की सलाह लूँ।' इसी सोच में वह प्रभात की प्रतिक्षा करने लगा।

प्रहसित भी बड़ा ही चितातुर था। मित्र पवनंजय कोई भी प्रतिकूल साहस न कर डाले इसलिए वह जागता हुआ अपने कक्ष में पड़ा रहा। किसी भी उपाय से पवनंजय के हृदय से अंजना के प्रति दुष्ट विकल्प को दूर करने के लिए प्रहसित उपाय सोच रहा था।

अरुणोदय हुआ।

प्रहसित उठकर सीधा पवनंजय के शयनकक्ष में पहुँचा। पवनंजय प्रहसित की प्रतीक्षा में था ही। प्रहसित को देखते ही

पवनंजय पलंग में उठ बैठा और प्रहसित को अपने पक्ष में बिठाया।

'प्रहसित, अंजना के साथ पाणिग्रहण करने का काम हो गया अब.......?'

'मित्र, तू जा स्वस्थ चित्त से सोच।'

'मेरा मन इस समय अत्यन्त विह्वल है.......अभी ये शब्द मेरे कानों में शूल की भाँति चुभ रहे हैं।'

'तेरी बात सत्य है, परन्तु यदि तू अंजना की रात की परिस्थिति पर सोचेगा तो तुझे अंजना अवश्य निर्दोष लगेगी। शादी के पूर्व के दिनों में सखियाँ कन्या के साथ पति के गुण-दोषों की बातें कर कन्या का चितरंजन करती हैं। इसमें पति को वास्तव में वे नीचा नहीं दिखाती और अपनी संस्कृति के अनुसार ऐसे प्रसंगों में कन्या को मौन ही रहना चाहिए। यदि सखियों की बातों में, वार्ताविनोद में वह भाग ले तो इसमें कन्या की निर्लज्जता कहलाती है। अतः अंजना के मौन पर तुझे यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि उसके हृदय में विद्युत्प्रभ है और तू नहीं।'

'कुछ भी कह, मुझे तो इसके प्रति पूर्ण अरुचि हो गई है, और जिस वस्तु पर अरुचि हो जाए फिर वह मिष्ठान ही क्यों न हो तब भी उसे खाने को जी नहीं चाहता। साथ ही यह भी बात है कि ऐसी अरुचि से खाने की आवश्यकता भी क्या है?'

'परन्तु इसमें एक गुण-युक्ता नारी के प्रति तू घोर अन्याय कर रहा है.......।'

'मुझे अन्याय नहीं लगता। मैंने कहाँ इसके साथ अभी शादी कर ली है।। अन्य किसी राजकुमार के साथ.......'

'वोल मत। ऐसा भी भला वोला जाता है क्या ? आर्य-कन्या एक वार ही मन का दान करती है। अंजना तुझे मन से तो वर मान चुकी है। अब इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन असम्भव है।

'इससे मुझे क्या ? मैं तो इसके साथ शादी कदापि नहीं करूँगा। चल, अव अपने नगर में पहुँच जाएँ।'

'पलंग पर से उठकर उसने चलना शुरु किया कि प्रहसित ने हाथ पकड़कर उसे पुनः विठा दिया। पवनंजय प्रहसित की ओर एकटक से देखने लगा। प्रहसित ने पवनंजय के दोनों हाथ अपने हाथों में दृढ़ पकड़ रक्खे थे।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे।

'पवनंजय। महापुण्य किसे कहते हैं ?' प्रहसित ने वड़ी ममता-पूर्ण आवाज में वात शुरु की।

'तू ही कह।'

'एक वार जो वात स्वीकार कर ली उसे किसी भी कीमत पर न छोड़ना।'

'क्या मतलव ?'

'मतलव यही कि एक बार अंजना को तूने स्वीकार कर लिया है; अव तुझे किसी भी कीमत पर इसे नकारना नहीं चाहिए।'

'मुझे ऐसी महानता·······'

'नहीं चाहिए यही कहना है न ?' प्रहसित ने वाक्य पूर्ण किया। पवनंजय मौन रहा।

'भले ही तुझे महानता न चाहिए; परन्तु गुरुजनों की महानता को तो टिकाना है न ? प्रहसित ने वात को मोड़ा।

'तो मैं कहाँ गुरुजनों की महानता का नाश कर रहा हूँ ?'

'पिताजी ने राजा महेन्द्र को वचन दिया है यह वात तो तू जानता ही है न ? नंदीश्वर द्वीप पर ही दोनों राजाओं ने तुम्हारे सम्बन्ध निश्चित् किये हैं, क्या तू नहीं जानता ? अव तू सोच कि यदि तू इनकार करेगा तो पिताजी राजा महेन्द्र को मुँह कैसे दिखायेगा ? क्या तू कहेगा कि पिताजी ने मुझे कहाँ पूछकर सम्बन्ध निश्चित् किया है। तुझे विना पूछे अंजना जैसी विश्व की श्रेष्ठ रूपसुन्दरी के साथ तेरा सम्बन्ध किया इसमें तुझ पर उनका जो विश्वास था क्या तू उसका घात करना चाहता है ?'

'मुझे कहाँ विश्वासघात करना है।' पवनंजय कुछ ढीला हुआ।

'विश्वासघात नहीं तो और क्या ? जव पिताजी को इस वात का पता चलेगा तव उनके दिल को कितनी ठेस पहुँचेगी इस वात को तो सोच। मित्र ! मैं समझता हूँ कि इस स्तर पर मेरी वात से तू नाराज होगा परन्तु एक कल्याण मित्र होने के नाते मुझे अपनी समझ के अनुसार उचित वात कहनी ही चाहिये और ऐसी वात कहने में तेरा मन दुःखी हुआ हो तो मुझे क्षमा करना। वोलते वोलते प्रहसित का गला कुछ भर गया। भरी हुई आवाज में उसने अपनी वात आगे वढ़ाई।

'वास्तव में दुष्ट प्रारब्ध का ही यह दोप दीखता है वाकी अंजना में तो दोप का अंश भी नहीं। भाग्य रूठने पर स्नेही जनों के हृदय में फेर आने में देर नहीं लगती।

'प्रहसित, तेरी सारी वातों का सार तो यह है कि गुरुजनों

के खातिर मेरा भावी जीवन नष्ट होता हो तो होने दिया जाए·······?'

'नहीं, तनिक नहीं। मुझे तेरे भावी जीवन में अनिष्ट दीखता तो मैं तुझे जरा भी आग्रह नहीं करता। मैं गुरुजनों को समझाने का प्रयत्न करता। परन्तु मुझे तो अंजना के साथ तेरा भावी जीवन उज्जवल दीखता है इसलिए इतना आग्रह कर रहा हूँ। और यह भी मान ले कि अंजना को छोड़कर तू किसी अन्य कन्या के साथ पाणिग्रहण करेगा तो क्या भावी जीवन सुखद ही बनेगा ऐसी तेरी मान्यता है? अरे! तेरा प्रारब्ध ही यदि विपरीत हुआ तो अच्छी मानी हुई कन्या भी शादी के बाद बिगड़ते देर नहीं लगेगी।'

कैसा अपूर्व मित्र! पवनंजय राजपुत्र होते हुए भी जरा भी लिहाज रक्खे बिना अवसरोचित सच्ची बात कहने में जरा भी जिसे संकोच नहीं। धर्मगुरु की अदा से पवनंजय को सुन्दर सलाह देकर एक अच्छे मित्र के आदर्श को वह निभाता है।

'भाई! तू केवल अपने ही विचारों के प्रवाह में न बह। अपने आसपास के सभी संयोगों पर विचार कर। बस, मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना।'

पवनंजय प्रहसित की बात का उलंघन कर सके ऐसा नहीं था। मित्र की बात रखकर अंजना के साथ व्याह करने की उसने सहमति प्रकट की।

परन्तु हृदय से अंजना के प्रति दुर्भाव तो नहीं मिटा सो नहीं मिटा। कैसे मिटे? पूर्व भव से अंजना ऐसा प्रारब्ध ले कर आई है कि जो पति के हृदय में अपने प्रति सद्भाव पैदा ही न होने देगा।

अभी तक दोनों मित्रों को प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होना था। द्वार पर परिचारिका प्रतीक्षा में खड़ी ही थी।

प्रहसित ने खड़े होकर द्वार खोला। संकेत से परिचारिका को अन्दर आने की अनुमति दे दी।

परिचारिका विनयपूर्वक प्रविष्ट हुई और कुमार से करवद्ध प्रार्थना की।

'युवराज ! माता जी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। आपके साथ ही दुग्धपान करने को कहती हैं।'

'यह, अभी आया।' कहता हुआ पवनंजय उठा। परिचारिका नमन करके उल्टे पांव शयनकक्ष से बाहर निकल गई।

प्रहसित को साथ ही लेकर पवनंजय माताजी के पास पहुँचा।

माता केतुमती का आनंद समा नहीं रहा था। प्राण से प्रिय पुत्र के विवाह महोत्सव का जब आयोजन हो रहा हो तो केतुमती के आनन्द का तो पूछना ही क्या ?

पुत्र एवं पुत्रमित्र का मधुर शब्दों से स्वागत कर केतुमती ने दोनों को अपने पास बैठाकर दुग्धपान कराया और पुत्र को अब कहीं दूर न जाने की सलाह दी तथा दोनों को विदा किया।

दोनों राजाओं ने मानसरोवर के तट पर मानों नवीन सृष्टि का सृजन किया हो। स्थल स्थल पर ध्वजाओं, तोरणों, कमानों से नगर को सजा दिया। मधुर वाद्ययन्त्रों के स्वर सतत गूंजने लगे।

अंजना भी अपने भावी जीवन के मधुर स्वप्नों को देखती हुई हर्ष के सागर में स्नान करने लगी। सखियों के चतुर एवं मनोहर वार्ता-विनोद से अंजना प्रतिपल प्रसन्नचित्त रहने लगी।

अंजना ने भले ही पवनंजय को प्रत्यक्ष नहीं देखा परन्तु उसने पवनंजय का चित्र तो देखा है। उसे एक दिव्य सौन्दर्यवान् और विचित्र गुणयुक्त पति मिल रहा है—इस विचार से वह अपने आप को महान् भाग्यशालिनी मानने लगी। इतना ही क्यों ? सभी इसे भाग्यशालिनी मानने लगी।

विवाह का दिन आ पहुँचा। शुभ मुहुर्त में दोनों का पाणि-ग्रहण हुआ। दोनों गठबन्धन में जुड़ गए।

अंजना ने अंत:करण से पवनंजय को पति के रूप में स्वीकार किया। परन्तु पवनंजय ने तो मात्र बाह्य व्यवहार से ही अंजना को पत्नी के रूप में स्वीकार किया था। इसके हृदय में से तो अंजना का कभी से बहिष्कार हो चुका था।

राजा महेन्द्र ने बड़े स्नेहभाव से प्रह्लादराज का स्वागत किया। पुत्री अंजना को गहरी ममता के साथ अपूर्व दहेज दिया। रानी हृदयसुन्दरी की आँखों से तो अश्रुधारा बह चली। एकमात्र प्रिय पुत्री के वियोग को सहन करने की ताकत उसमें कहाँ से हो ? अश्रु भरी आँखों से पुत्री के मस्तक पर आलिंगन कर माता ने कहा—

'बेटी अंजना, मेरी कुछ हितकारी बातें अपने हृदयमंदिर की दीवारों पर लिखकर रखना।'

- अपने श्वसुर को तू पिता तुल्य समझना।
- अपनी सास को तू माता के स्थान पर स्थापित करना।
- अपने पति को देव मानकर उनकी पूजा करना।
- शील को जीवन की श्रेष्ठ सम्पत्ति मानकर उसकी रक्षा करना।
- श्री नवकार मन्त्र की अपने चित्त में सदा आराधना करना।

- गंभीरता, उदारता, सहिष्णुता और प्रीति—इन चार गुणों के चार पुष्पों से अपने केशपाश सदा सुगंधित रखना।
- अपनी मति को परमात्मा श्री जिनेश्वरदेव के उपदेशामृत से सिंचित रखना।

विशेष तुझे क्या कहूँ ? तूने जिस प्रकार हमारे घर को अपने गुणों से, कला से उज्ज्वल बनाया है उसी प्रकार अब अपने घर को भी उज्ज्वल बनाना और यदाकदा अपनी माता को याद कर लेना.......'.हृदयसुन्दरी फूट पड़ी.......अंजना की आँखों में से भी अश्रुधार बह चली। उसने माता के चरणों में मस्तक झुकाकर शुभाशीष माँगी।

सखी वसन्ततिलका को साथ लेकर अंजना ने पवनंजय के विमान में कदम रक्खे।

प्रह्लादराज का विमान सर्वप्रथम आकाशमार्ग पर गतिशील हुआ, तत्पश्चात् पवनंजय के विमान ने मानसरोवर के रमणीय तट का त्याग किया।

अंजना ने विमान की खिड़की में से, झाँककर माता-पिता के मधुर दर्शन किये। देखते ही देखते विमान अदृष्य हो गया।

राजा महेन्द्र और रानी हृदयसुन्दरी के नेत्रों से आँसुओं का अंतिम बिन्दु छलक पड़ी।

२०. दुःख और सुख

आशाओं के जीर्ण शीर्ण और जर्जरित अवशेषों का शव उठाकर पवनंजय ने आकाशमार्ग से अपने नगर की ओर प्रयाण किया।

राजा प्रह्लाद ने पुत्रवधु अंजना को सात मंजिल का भव्य महल आवास के लिये अर्पण किया। लगता था स्वर्गलोक का विमान भूमिस्थ वना हो। अनेक दास दासियों और राज्य-कुल की वृद्धाओं, योवनाओं और वालाओं की हलचल से महल गूंज उठा। जिस किसी ने अंजना को देखा उसने प्रशंसा के पुष्पों की वृष्टि कर दी। सारे दिन लोगों का आना जाना हुआ। रात हुई अंजना का तृषित हृदय प्रेमवारि का पान करने के लिये उत्सुक वना। पवनंजय के दर्शनार्थ उसकी आँखें चारों ओर फिरने लगीं।

नीरवता व्याप्त हुई और अंधकार हुआ। 'अभी पधारेंगे अभी प्रेम का संगीत छिड़ेगा' संयोगसुख की सुमधुर कल्पना की मादकता उसकी आँखों में छलकने लगी।

राजप्रासाद के चौकीदार ने बारह बजने के टंकोर लगाए। अंजना कल्पना-निद्रा में से चौंककर जाग उठी। देखा तो पाँवों के आगे भूमि पर सोई हुई वसन्ततिलका के सिवाय

शयनकक्ष में कोई दिखाई न दिया। उसके हृदय पर आघात हुआ। 'वसन्ता········' भूमि पर सोई हुई वसन्ता को अंजना ने हिलाकर जगाया। 'क्या अभी तक पवनंजय नहीं आए ?' अंजना के सामने आँखें मलती हुई वसन्ततिलका ने प्रश्न किया।

'नहीं।' भग्नहृदया अंजना ने कहा।

मौन छा गया। अंजना के मुख पर खेद और निराशा की रेखाएं खिंच गईं। कई अशुभ, चित्त में होकर निकल गए।

'परन्तु अब इस प्रकार जागृत अवस्था में कब तक बैठी रहेगी ? अब सो जा।' वसन्ता ने अंजना का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा।

'मेरी तो निद्रा ही आज मानो भाग चुकी है····' निःश्वास छोड़ते हुए अंजना ने झरोखे से बाहर मुँह निकाला।

'मुझे लगता है अवश्य वे किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में व्यस्त हैं' वसन्ता ने अंजना के हृदय को आश्वासन पहुँचाने की दृष्टि से कहा। परन्तु ऐसे निराधार आश्वासन से अंजना को कब संतोष होने वाला था ? वह तो बैठी ही रही। वसन्ततिलका भी नींद न ले सकी। नींद ले तो कैसे ? प्राणों से भी अधिक प्रिय सहेली का चित्त व्याकुल हो तब उसे नींद न आना स्वाभाविक ही है।

सारी रात पवनंजय की प्रतीक्षा में पूर्ण हुई। मात्र इसी आशा में कि सुबह तो पवनंजय अवश्य आएगा और रात को न आ सका, इस बात पर खेद प्रकट करता हुआ पत्नी का चित्तरंजन करेगा। परन्तु प्रातःकाल भी पवनंजय के दर्शन नहीं हुए।

पवनंजय तो आकर अपने निवास-स्थान में ही सीधा पहुँचा

और राज्य के कार्यों में व्यस्त हो गया। यद्यपि उसका भग्न हृदय राजकार्यों में लीन हो सके ऐसा नहीं था परन्तु अंजना के प्रति भारी रोष ने उसे अंजना के पास पहुँचने नहीं दिया। मित्र प्रहसित ने वहुत कुछ समझाया पर व्यर्थ। तीव्र कषायों के उदय में जीव की ऐसी ही स्थिति होती है।

अंजना को अपना मुँह तक वताना उसने बन्द कर दिया। अंजना की स्थिति शोचनीय हो गई। उसके भग्न हृदय की दर्दभरी चीत्कार सुनने वाला मात्र वसन्ततिलका के सिवाय और कोई न था। सात मंजिला विशाल महल एक भयानक खंडहर जैसा लगने लगा। अंजना के करुण क्रन्दन के प्रहार दीवारों से टकराने लगे।

तीव्र वेदनाओं, उमड़ते हुए आँसुओं, धगधगते निश्वासों, निराशापूर्ण विवशता, दीनता और उदासीनता का मानो एक नरकागार सृजित हो गया। पवनंजय के विना अंजना का जीवन अंधकारमय वन गया। चन्द्रविहीन मानो अमावस्या की रात्रि।

'अंजना, परन्तु इस प्रकार रातदिन शोक और आक्रन्दन से क्या लाभ? कई दिनों महीनों से अंजना ने न किया स्नान, न डाला सिर में तेल, न किया वेणीश्रृङ्गार और न पहिने सुन्दर वस्त्र। रोते रोते उसकी आँखें सूज गई। विलाप करते करते उसका मुख म्लान वन गया। पलंग में करवटें वदलते वदलते उसके कपड़े भी घिस गये। सखी की आँखों न देखी जा सके ऐसी असह्य स्थिति देखकर वसन्ततिलका ने अंजना की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा।

'मेरा तो सब कुछ लुट गया, 'अंजना फूट पड़ी। मुँह को

दोनों पांवों के वीच दवाकर उसने फूट फूट कर रोना शुरु किया।

'अंजना, तुझ जैसी जिन-वचनानुरागिनी स्त्री को इस प्रकार आपत्ति के समय दुःखी होना शोभा नहीं देता। आपत्ति के समय तो वह धीरज खोता है जिसे पुण्य-पाप और प्रारब्ध के सिद्धान्तों पर श्रद्धा न हो। चल खड़ी हो। इस प्रकार रोते २ जीवन विताने में शोभा नहीं है।

'मैं जानती हूँ वहिन, अपने किये हुए कर्मों का ही यह फल मैं भोग रही हूँ, परन्तु कुछ समझ में नहीं आता कि मुझे हो क्या गया है........इनके प्रति मेरे दिल में जरा भी द्वेष नहीं, अप्रीति नहीं। ये तो महान् गुणनिधि हैं फिर आँखों में आँसुओं का ज्वार उमड़ा। वसन्ता ने अपने वस्त्र-छोर से आँसू पोंछ डाले।

'मैं अभागिन हूँ मैंने तुम्हें दुःखी किया, मैं तुम्हें सुखी न कर सकी वस, मुझे यह वात वार वार याद आती है और मेरा हृदय........।'

'तू अभागिनी नहीं है, तू तो महान् भाग्यशालिनी है। दोष पवनंजय का है। यदि ऐसा ही करना था तो शादी से पूर्व सोचना चाहिये था' वसन्ततिलका ने अपने हृदय की भाप निकाली।

ऐसा न कह वसन्ते, मनुष्य अथवा किसी भी जीव को दुःख मिलता है तो अपने ही कर्मों से मिलता है। मेरे किसी पापकर्म का उदय है कि जिसके परिणाम-स्वरूप उन जैसे गुण-निधान के हृदय में भी मेरे प्रति कोई अशुभ भाव जाग्रत हुआ है।

वर्ष के वर्ष बीतने लगे। सम्पूर्ण राजकुल में यह बात फैल गई कि पवनंजय ने शादी के साथ ही अंजना का त्याग कर दिया है। पवनंजय की माता केतुमती को भी जब इस बात का पता चला तो उसके दिल को भारी ठेस पहुँची। उसने पुत्र को कई प्रकार से समझाया। पवनंजय अविचल रहा। अंजना के किस अपराध पर उसने उसका त्याग किया है यह बात भी केतुमती ने पूछी, परन्तु पवनंजय कोई अपराध न बता सका। क्या बताए? अपराध हो और आप सिद्ध कर सके ऐसा हो तो बताए न? हाँ, अपने मन की शंका प्रकट करे और उसका स्पष्टीकरण माँगे तब तो सुखद समाधान हो जाए।

और इसी प्रकार कर्म अधिकांशतः जीव को दंड देता है। इसमें भी गुरुजन जब छोटों के प्रति इस प्रकार किसी के कहने पर अथवा बात को सप्रसंग समझे बिना क्रुद्ध होते हैं तब महान् अनर्थ खड़ा हो जाता है। छोटों के जीवन खतरे में पड़ जाते हैं। अतः समझदार गुरुजन तो किसी के कहने पर अथवा बात के पूर्व प्रसंग को जाने बिना किसी के लिए निर्णय नहीं देते। न वे किसी निरपराधी जीव को दंड देते हैं।

केतुमती भी बार बार अंजना के पास आती है और आश्वासन के दो शब्द कह जाती है। अंजना के प्रति उसके हृदय में प्रेम वात्सल्य और सहानुभूति है। अंजना तो न किसी के साथ बोलती है, न किसी के साथ हँसती है और न कहीं भी घूमने जाती है। बस, इसने तो अपने चित्त को अरिहंत परमात्मा के ध्यान में जुटा दिया। निरन्तर परमात्म-भक्ति में वह तो लीन हो गई। एक, दो, तीन, तेरह इस प्रकार बाईस वर्षों का दीर्घ काल व्यतीत हो गया।

बाईस वर्षों के दीर्घकाल में अंजना ने अपने स्वभाव को सहिष्णु बना दिया। कर्मों के भले बुरे प्रभावों पर गहन चिंतन कर अपनी सच्ची समझ का खूब विकास किया।

इतना ही नहीं परन्तु सखी वसन्ततिलका ने भी बाईस वर्षों में अंजना के जीवन में गहन रुचि रखकर सखी के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी रहकर एक आदर्श रक्खा।

× × ×

दूसरी ओर प्रह्लादराज की सभा में लंकापति रावण का दूत आकर खड़ा हुआ। प्रह्लादराज को प्रणाम कर उसने लंकापति का महत्त्वपूर्ण संदेश कहना शुरू किया।

'हे नरनाथ! आपको पता ही होगा कि वरुणपुरी का राजा वरुण लंकापति की आज्ञा पालन करने से इन्कार करता है। अहंकार का मानो मूर्तिमंत पर्वत है।

लंकापति ने जब इसे शरण में आने के लिये कहलाया तब उसने दूत को अपमानित कर निकाल दिया। अपनी प्रचंड शक्ति का उसे भारी अभिमान है।'

'परन्तु क्या उसे इन्द्र, नलकुबेर आदि की लंकापति ने क्या स्थिति की है इस बात का होश नहीं है?' प्रह्लादराज ने रावण की शौर्य गाथा का स्मरण किया।

महाराज! यह घमंडी वरुण तो कहता है 'मैं इन्द्र नहीं, मैं नलकुबेर नहीं, मैं सहस्रकिरण नहीं, मुझे मरुत न समझें, मैं तो वरुण हूं वरुण। साथ ही इसने लंकापति को कहलाया है कि 'लंकापति को देवताधिष्ठित रत्नों से अभिमान का मद

चढ़ा हो तो भले वह यहाँ आए। मैं उस दुष्टमति का अभिमान चूर कर दूँगा।'

'फिर यह संदेश लंकापति को पहुँचा'? प्रह्लाद ने कुछ आतुरतापूर्वक पूछा।

'जी हाँ, दूत ने आकर लंका की राजसभा में वरुण का वक्रता पूर्ण संदेश कहा कि लंकापति कोपायमान हो गए और तुरन्त खर और दूषण नामक अपने महान् पराक्रमी सेनापतियों को विशाल सेना के साथ वरुण को जीवित पकड़ लाने की आज्ञा दी।'

'फिर क्या हुआ?' प्रह्लादराज ने प्रश्न किया।

'खर और दूषण विशाल राक्षस सैन्य के साथ वरुणपुरी की ओर बढ़े। वरुण को भी अपने गुप्तचरों के द्वारा खर दूषण की चढ़ाई के समाचार मिलते ही वह अपने प्रबल पराक्रमी पुत्र राजीव, पुंडरिक आदि एवं विराट सेना सहित नगर के बाहर आया।

वरुण एक युद्ध कुशल राजा था। राजीव, पुंडरिक आदि इसके पुत्र तो पिता से भी सवाए थे। नगर से बाहर आकर राजीव ने युद्ध की अद्‌भुत व्यूह रचना जमा दी। खर और दूषण भी राक्षस सेना के कुशल सेनापति थे। रावण के साथ अनेक युद्धों में उन्होंने अपना पराक्रम दिखाकर रावण की प्रीति सम्पादित की थी।'

दूत नें कहा: 'वरुण के पुत्रों नें राक्षस सेना के समक्ष दारुण संग्राम छेड़ा। खर और दूषण को हँफाने लगे। दूसरी ओर वरुण ने राक्षस सेना में हाहाकार मचा दिया। कई दिनों तक दोनों पक्षों की सेना में रक्तपात हुआ। परन्तु एक दिन वरुण

और पुंडरिक ने सीधा खर और दूषण पर ही हमला किया और देखते ही देखते तो राजीव ने खर को और पुंडरिक ने दूषण को जीवित पकड़ लिया।

जहाँ खर-दूषण पकड़ में आए वहीं राक्षस सेना के हाल बेहाल हो गए। कितनी ही सेना कट गई, कितनी ही पकड़ी गई और बहुत कुछ भाग निकली।

खर-दूषण को पिंजरे में बन्द कर वरुण विजयनाद करता हुआ अपनी नगरी में लौटा। पराजय के समाचार वायुवेग से लंका में पहुँच गए। पुनः वरुण को वश में करने के लिए लंकापति तैयार हुए और अपने साथ जुड़े हुए सभी विद्याधर राजाओं को बुलाकर लाने के लिए विशेष दूत रवाना किए, मुझे आपके पास भेजा है।'

दूत ने सविस्तार समग्र परिस्थिति की जानकारी दे दी। प्रह्लादराज भी रावण के साथ प्रीति होने से स्वयं रावण का ही संदेश आने से लंका जाने के लिए तैयार हुए। सेना को सज्ज होने के लिए आदेश दे दिया।

पवनंजय ने लंकापति के दूत की बात अक्षरशः सुनी थी। पिताजी को लंका जाने के लिए तैयार हुए देखकर पवनंजय ने मस्तक झुकाकर खड़े होकर सविनय कहा : 'पिताजी आप यहीं रहें। लंकापति के मनोरथों को पूर्ण करने के लिए मुझे जाने की आज्ञा प्रदान करें।'

'भाई यह, तो वरुण के साथ युद्ध करना है और तूने सुन ही लिया है कि वरुण के पुत्र कितने प्रबल पराक्रमी हैं। खर, दूषण जैसे महारथियों को जीवित पकड़कर जेल के सींखचों में बन्द कर दिया।'

'पिताजी, मैं विद्याधर राजा प्रह्लाद का पुत्र हूँ, मेरे पराक्रम का स्वाद भी वरुण पुत्रों को जरा चख लेने दो। सभी खर दूषण नहीं होते।' पवनंजय ने दृढ़ आवाज के साथ जाने की अनुमति मांगी। प्रह्लाद ने भी पवनंजय के पराक्रम पर विश्वास कर सेना के साथ लंका की ओर प्रयाण करने की स्वीकृति दी। पवनंजय ने सिर झुकाकर पिताजी की आज्ञा शिरोधार्य की।

पवनंजय राज्यसभा में से सीधा अपने आवास पर आया। प्रहसित भी कभी से वहाँ आ पहुँचा था। कई वर्षों के पश्चात् आज पवनंजय के मुख पर आनंद की रेखाएं खिली हुई देखकर प्रहसित ने कहा—

'मित्र, आज तो बड़ा प्रफुल्लित है?'

'हाँ प्रहसित, हमें अब तैयारी करनी है।'

'किस बात की?'

'युद्ध के प्रयाण की।'

'तूने तो मित्र नवीन बात ही निकाली। मैं तो कुछ और ही समझा था।'

पवनंजय ने दूत के आगमन, वरुण के हाथों हुए रावण के पराजय, पुनः युद्ध की तैयारी आदि विषयों से प्रहसित को सूचित किया।

प्रहसित के मुख पर गम्भीरता छा गई।

'किस सोच में डूब गए प्रहसित?'

'किसी में नहीं।'

'नहीं नहीं, तू किसी गम्भीर सोच में डूब गया है। क्या तुझे मेरे पराक्रम के विषय में शंका हो रही है?'

'नहीं; मुझे तेरे पराक्रम के विषय में श्रद्धा है'

'तो फिर ?'

'सोच यही रहा हूँ कि यहाँ से जाने के बाद कब लौटेंगे निश्चित् नहीं है। युद्ध के कार्यों में कई वर्ष चले जाते हैं।'

'काम तो बड़ा है यहाँ। पर तू बड़ा माने तो।'

बाईस बाईस वर्षों से अंजना कैसा दुःखमय जीवन बिता रही है यह बात प्रहसित के हृदय में चुभ रही है। पवनंजय के अन्यायपूर्ण व्यवहार को प्रहसित दुःखी हृदय से देख रहा है। इसने सोचा कि यदि युद्ध में पवनंजय जाता है तो फिर वर्षों तक अंजना के भाल पर दुःख ही लिखा जाता है। इसका जीवन झुर झुर कर ही पूर्ण हो जाता है और इसी विचार से इसके मुख पर गंभीरता और वेदना की रेखाएं अंकित हुई थीं। यद्यपि गत कई वर्षों से प्रहसित ने अंजना की बात पवनंजय के समक्ष कभी भी नहीं की थी; फिर भी आज इसे लगा कि 'मुझे पवनंजय को अंजना की स्मृति करवानी चाहिए।' अतः इसने कहा—

'मित्र, हम नगर छोड़ें इसके पूर्व तुझे एक बार अंजना के चित्त को प्रसन्न करना चाहिये।'

अंजना का नाम सुनते ही पवनंजय का चेहरा बदल गया। मुखाकृति पर से आनंद, उल्लास, उत्साह की रेखाएँ मिट गईं और क्रोध, द्वेष तथा तिरस्कार की रेखाएँ छा गईं।

'तू उसका नाम मेरे सामने न ले। मैं उसका नाम तक सुनने को तैयार नहीं हूं।'

उसकी आँखों के सामने विवाह के पूर्व की कालिख पुती हुई रात खड़ी हो गई। सखियों के बीच बैठी हुई अंजना उसके

सामने प्रतिविम्वित होने लगी। सखियों द्वारा की गई निंदा और अंजना का मौन—वह भभक उठा।

'मैं इसके विषय में कुछ भी सुनने को तैयार नहीं—भले उसका—'

'ऐसा न कह। तेरे हाथों एक गुणशीला आत्मा के साथ अन्याय न हो, एक निर्दोष व्यक्ति का जीवन नष्ट न हो जाय, यह सोचना क्या तेरा कर्तव्य नहीं?'

पवनंजय मौन रहा। प्रहसित को लगा कि पत्थर पर पानी डालना है। उसने बात छोड़कर युद्ध प्रयाण सम्बन्धी तैयारी शुरू की।

सारे नगर में पवनंजय के युद्ध प्रयाण की बात फैल गई। अंजना के कानों में भी बात पहुँची। बाईस वर्षों से लग्न के प्रथम दिन से ही पति ने उसका त्याग कर रक्खा था फिर भी उसने अपने पति के प्रति अनुराग टिका रक्खा है।

अंजना ने कितनी सावधानी रक्खी होगी? अपनें मन पर कितना मजबूत पत्थर रक्खा होगा? महान् आत्माओं की यह एक विशेषता होती है। जिस पर हमने एक बार प्रेम धारण किया, वह व्यक्ति पीछे से अपने प्रति प्रेमविहीन बनता है तब हम भी उसके प्रति प्रेम को टिका नहीं सकते। भले ही प्रेम लौकिक हो अथवा लोकोत्तर हो। जब कि महान् व्यक्ति प्रेम को टिकाये रहते हैं। उनकी इस समझ पर प्रेम टिकता है कि सामने वाले का मेरे प्रति प्रेम टूट गया इसमें उसका कोई दोष नहीं, परन्तु मेरा ही कोई कर्म कारण है। मेरा ही पापकर्म उसके पास मेरे प्रति तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करवाता है।

'सामने वाला व्यक्ति मुझ पर प्रेम रक्खे तो ही मैं उस पर प्रेम रक्खूँ', यह तो अधम वृति है, सौदेबाजी है। अंजना की

वृत्ति उत्तम कोटिकी थी। भलें ही पति उस पर प्रेम न रक्खे परन्तु उसने तो पति कें प्रति प्रेम अखण्डित ही रक्खा। पति के प्रति प्रेम हटाकर किसी अन्य व्यक्ति के प्रति प्रेम रखने की वेश्यावृत्ति को तो उसनें अपने मन मन्दिर में घुसने ही नहीं दिया। इसीलिये आज भी हम अंजना को महासती के रूप में याद कर पावन होते हैं।

विजय यात्रा की भेरियाँ बज उठीं। सेना ने गगनव्यापी जय ध्वनि की। पवनंजय रथ में आरूढ़ हुआ। नगर के बीच से विजय यात्रा प्रस्थान करने लगी।

पति के मुख का दर्शन करने और पति की विजय यात्रा में मंगल कामना करनें के लिये वसंततिलका के साथ महल के नीचे एक स्तंभ की ओट में अंजना खड़ी हो गई।

उसकी देह कृश हो चुकी है। मुख की लालिमा नष्ट हो गई है। आँसुओं से उसने अपने मुख को प्रक्षालित कर रक्खा है। एक टक से वह पतिदेव की राह देख रही है।

इतने में दूर से पवनंजय ने अंजना को देखा। उसे देखते ही अन्तःकरण में भारी तिरस्कार जाग उठा। अंजना का रूप, उसके गुण, उसका ज्ञान, कोई भी तो पवनंजय के तिरस्कार का शमन नहीं कर सके। जब तक अपने पाप कर्मों का उदय रहता है तब तक गुण, शक्ति या रूप कोई भी विपक्षी के अन्तस्थल का परिवर्तन करने में असमर्थ ही रहते हैं।

ज्योंही पवनंजय निकट आया कि अंजना सुन्दरी वेग के साथ आगे बढ़ी और पति के चरणों में गिर पड़ी। अंजली बांधकर गद्गद् स्वर में उसने प्रार्थना की—

'हे स्वामिन्! अब तक आपने मुझे क्षण भर भी संबोधित

नहीं किया। मेरी प्रार्थना है कि फिर भी आप मुझे भूल न जाएँ। आपका मार्ग कुशल बने—पन्थानः सन्तु ते शिवाः....'

पवनंजय ने पवित्र अंजना को दुतकार कर निकाल दी। चरणों में ढली हुई गुणशीला पत्नी की अवहेलना कर पवनंजय आगे बढ़ा।

कितनी निष्ठुरता? कैसा घोर अपमान? अंजना के हृदय को भारी आघात पहुँचा। वह महल में जाते ही भूमि पर पछाड़ खाकर गिरी। पति द्वारा की गई अपनी अवहेलना और पति के वियोग से उसका हृदय भारी क्रंदन कर रहा था।

पवनंजय को उसकी परवाह कहाँ थी? वह तो सेना के साथ वहाँ से आकाश-मार्ग पर आगे बढ़ा। मानसरोवर के तट पर उसने डेरा डाला। विद्या शक्ति के बल से तुरन्त वहीं उसने भव्य प्रासाद खड़ा कर दिया।

संध्या का समय था। पवनंजय महल के झरोखे में पलंग पर पड़ा हुआ सरोवर की मनोहर शोभा देखने में तल्लीन था। इतने में उसने पानी के पट पर आर्तनाद करती हुई चकई को देखा। कोमल मृणाल का चारा होते हुए भी वह उसे चरती नहीं। सरोवर के जल तरङ्गों में से उठता हुआ संगीत उसके चित्त का रंजन करने में असमर्थ है। क्षितिज पर छाये हुए सुन्दर रंग उसके मन को आनन्दित कर नहीं सकते। वह तो चक्रवाक के विरह में व्याकुल होकर करुण क्रन्दन कर रही है।

यह दृश्य देखकर पवनंजय का पत्थर हृदय पिघलने लगा। वह सोचता है; 'सारे दिन चकई चक्रवाक के सहवास में क्रीड़ा करती है फिर भी रात होते ही जहाँ चक्रवाक चला जाता है कि चकई तड़फने लगती है; तो अंजना का क्या हुआ होगा?'

बाईस वर्षों में आज पवनंजय के अन्तःकरण में अंजना के प्रति सहानुभूति प्रकट होती है। बाईस वर्षों की समाप्ति पर आज अंजना के किसी अतिदुष्ट कर्म का नाश होता है।

अरे मैंने ! इसी मानसरोवर के तट पर उसका पाणिग्रहण किया–विवाह किया मात्र इतना ही, हस्तमिलाप किया इतना ही, मैंने उसका त्याग किया–स्पर्श का ही त्याग नहीं–मैंने उसका मुँह देखने का भी त्याग किया–उसके साथ एक शब्द भी नहीं बोला; और यह सब भी बाईस वर्षों तक लगातार। उसके हृदय की क्या स्थिति हुई होगी ? वह कैसा करुण क्रन्दन करती होगी ? इतना ही नहीं आधे में और पूरा। रणयात्रार्थ निकलते समय वह बेचारी मेरे चरणों में गिरी, मेरे प्रति मंगल कामना प्रकट करने आई पर मुझ निष्ठुर हृदय ने उसे अपमानित कर ठुकरा दी।

उसकी देहलता मुरझा गई है—उसकी मुखाकृति पर गाढ़ निराशा वेदनापूर्ण विवशता और भग्न हृदय की काली छाया छा गई है। मुझे प्रहसित ने कहा भी था कि मेरे वियोग में रात दिन जल जल कर वह कोमलांगी मुरझाए हुए पुष्प जैसी हो गई है। उसने न तो अच्छा खाया, न अच्छा पीया न अच्छा पहिना।'

पवनंजय का हृदय सुलग उठा—द्रवित हो गया—उसकी आँखों के सामने अपना निष्ठुरतापूर्ण, अन्यायपूर्ण चेहरा भी दीखने लगा।

वह पलंग पर से नीचे उतरा। उसका अंग अंग काँप उठा। वह त्वरित गति से महल में गया और पलंग में करवट के बल पड़े हुए प्रहसित के पास बैठ गया। प्रहसित उठ बैठा। उसने

पवनंजय के मुख पर घबराहट की रेखाएँ देखकर पूछा—

'क्यों क्या हुआ ?'

'लौटना है।'

'क्यों ?'

'पाप का प्रायश्चित करने—' पवनंजय का शरीर पसीने में लथपथ हो चुका था।

'कौन सा पाप ?' आश्चर्य से पूछा।

'अंजना के प्रति किया हुआ घोर अन्याय।'

प्रहसित की आँखों में हर्ष के आँसू छलक पड़े। उसने पवनंजय को गले लगा लिया। पवनंजय की आँखें अश्रु भीगी बन गई। वह प्रहसित का हाथ पकड़कर उसे झरोखे में ले गया।

'देख वह चकवी—कैसा करुण क्रन्दन करती है ?' पवनंजय ने उंगली के इशारे से पतिविरह से जलती चकवी प्रहसित को बताई।

'मित्र ! इस चकवी ने आज मेरे निष्ठुर, कठोर हृदय को द्रवित कर दिया है। पति का मात्र रात का विरह भी इस चकवी से करुण क्रन्दन करवाता है, तो मैंने विवाह से लेकर आज तक—बाईस वर्षों तक जिसका त्याग कर रक्खा है उसका क्या हुआ होगा ?'

एकटक से चकवी को देखता हुआ पवनंजय आँसू भरी आँख और वेदनापूर्ण आवाज से बोलता चला जा रहा है।

'अवश्य ही, वह तपस्विनी मेरे निष्ठुरता के पर्वत के नीचे कुचली गई है। उसका जो अपमान करके मैं निकला हूँ उसे तो उसकी मृत्यु.......।'

उसकी आँखें भय से फट गई। उसका शरीर कांप उठा। उसने प्रहसित के हाथ को जोर से दबाकर उसकी छाती पर अपना मुँह दबा दिया।

'मित्र शोक न कर। बाजी अभी तक हाथ में है।'

'मैं पापी हूँ, दुर्मुख हूँ, अधम हूँ।'

'मनुष्य के हाथों भूल होना सहज है परन्तु आज तुझे अपनी भूल समझ में आई है—इससे मेरे मन को अपूर्व आनन्द हुआ है।'

'अभी ही हम अपने नगर लौट चलें—' पवनंजय ने कहा।

'हाँ, अन्यथा वह तपस्विनी आज अवश्य वियोग—दुःख में जल जल कर अपना प्राण त्याग कर देगी।' प्रहसित के अंतःकरण में भय पैदा हो गया।

दोनों मित्रों ने अविलम्ब आकाश मार्ग से प्रयाण किया।



२१. दैविक विडम्बना

मित्र प्रहसित को साथ लेकर पवनंजय आकाश मार्ग से आदित्यपुर के उद्यान में पहुँचा। विमान को वहीं छोड़कर दोनों मित्र अंजना के महल में आए।

'हमें अज्ञात रूप से अंजना के कमरे में पहुँच जाना है।' प्रहसित ने अति धीमी आवाज में पवनंजय के कान में कहा।

'पर अब हमें गुप्त रूप से जाने की क्या आवश्यकता है?' पवनंजय को प्रहसित की बात रुचिकर न लगी।

'मैं तुझे सिद्ध कर दिखाना चाहता हूँ कि अंजना के हृदय-सिंहासन पर तेरे सिवाय और कोई नहीं है। तेरी अनुपस्थिति में बाईस बाईस वर्षों तक यह सिंहासन सूना ही रहा है।' पवनंजय के उत्तर की अपेक्षा रक्खे बिना प्रहसित ने उसका हाथ पकड़कर आगे बढ़ना शुरू किया।

सातवीं मंजिल पर राजमार्ग की ओर के अग्रभाग में मन्द मन्द दीपक जल रहे थे। इस पर से दोनों ने अनुमान लगाया कि अंजना वहीं होनी चाहिये।

दोनों विद्याधर कुमार थे। ये तो विद्याशक्ति से सीधे ही सातवीं मंजिल पर पहुँच गए। कमरे के दरवाजे लगभग बन्द जैसे ही थे फिर भी अंदर से बन्द किये हुए नहीं थे। किवाड़ों

की दरारों से दीख सकता था, कि अन्दर कौन कौन बैठा हुआ है। इतना ही नहीं परन्तु अन्दर हो रहा वार्तालाप भी अति स्पष्ट शब्दों में सुना जा सकता था।

'तू इस प्रकार कहाँ तक रोती रहेगी अंजना ?' जलविहीन मछली की भांति तड़फती और करुण क्रन्दन करती हुई अंजना का सिर अपनी उत्संग में लेकर सखी वसन्ततिलका अश्रुभीगी आँखों से उसे आश्वासन दे रही थी।

'मेरा दुर्भाग्य सीमा तोड़ रहा है। मुझ से अब सहन होता नहीं। मेरा हृदय अब वश से बाहर.........' अंजना फूट पड़ी।

'तू रो मत। धैर्य धारण कर। क्या दुःख के बाद सुख नहीं आता ? सुख के बाद दुःख आया है तो दुःख के बाद सुख भी आएगा ही।' अंजना के सिर पर हाथ फेरती हुई वसन्ता ने पुनः आश्वासन देते हुए कहा।

अंजना का रुदन रुक गया। शून्य मनस्क बनकर दीवार की ओर रूखी दृष्टि रखकर वह पड़ी रही।

प्रहसित का हृदय द्रवित हो गया। उसने द्वार खोलकर कमरे में प्रवेश किया। तुरन्त दीवार पर उसकी परछाई पड़ी। पुरुष की आकृति देखकर अंजना चौंक उठी। अचानक किसी अंतरंग व्यक्ति की भांति कौन आ गया। भय की एक गुप्त कंपन उसके शरीर में होकर प्रसारित हो गई परन्तु तुरन्त ही दूसरे क्षण उसने धैर्य धारण कर लिया और वह वीरांगना गरज उठी—

'तू है कौन ? निकल जा बाहर, परस्त्री के आवास में एक क्षण भी खड़ा न रह। अरे वसन्ते ! इस दुष्ट को बाल पकड़कर बाहर निकाल दे। इसका मुँह भी देखने के लिए मैं

इच्छुक नहीं हूँ। तू क्या देख रही है? मेरे कमरे में पवनंजय को छोड़कर किसी को प्रवेश का अधिकार नहीं है।'

प्रहसित ने इस महासती को वंदन कर कहा—'स्वामिनी! आपका कुशल हो। मैं पवनंजय का मित्र प्रहसित हूँ और पवनंजय के साथ यहाँ आया हूँ। आपको पवनंजय के शुभागमन के समाचार देता हूँ।'

दीवार की ओर दृष्टि रखकर अनिमेष दृष्टि और दुःखित स्वर से अंजना बोली—

'प्रहसित! यह समय क्या मेरी हँसी उड़ाने का है? कर्मों ने तो मेरी क्रूर हँसी उड़ाई ही है। तू भी क्या मजाक उड़ाने आया है? परन्तु इसमें तेरा भी दोष नहीं। मेरे पूर्व कर्मों की ही निर्दयता एवं क्रूरता का परिणाम है अन्यथा कुलीन, गुणवान् ऐसे वे मेरा त्याग करें भी भला?'

सूखी आंखों में गरम गरम आँसू उमड़ पड़े।

'शादी के दिन से ही उन्होंने मेरा त्याग किया। आज बाईस बाईस वर्षों का दीर्घकाल व्यतीत हुआ फिर भी मैं पापिनी अभी तक जीवित हूँ।'

प्रहसित ने अपनी आँखों को वस्त्र के छोर से पोंछी। द्वार के आगे खड़े हुए पवनंजय की आँखों में से अविरल आँसू बहने लगे। वसन्ता भी गोद में सिर रखकर रो पड़ी।

पवनंजय ने वेग के साथ आवास में प्रवेश किया। प्रहसित के आगे खड़ा होकर वह गद्गद् स्वर में बोला—देवी तू निर्दोष है..............निष्कलंक है...........मुझ अभिमानी.............. अज्ञानी ने तुझ पर आरोप मढ़कर तेरा परित्याग किया....... मेरे पाप के कारण तू मौत के मुँह में फेंकी जाने जैसी घोर यातनाओं की शिकार बनी है।

सचमुच पवनंजय को आया जानकर लज्जापूर्वक तुरन्त वह पलंग की भुजा पकड़कर खड़ी हो गई और नतमस्तक हो उसने पवनंजय को प्रणाम किया।

पवनंजय अंजना को पलंग पर बिठाकर स्वयं उसके पास में बैठा।

'देवी.......मेरा अपराध क्षमा कर। मेरी बुद्धि अति क्षुद्र है। तू निरपराधिनी होते हुए भी मैंने तुझे दुःखी करने में कमी नहीं रक्खी।' पवनंजय ने अंजना के निर्दोष नयनों में अपनी आँखें मिलाते हुए अपने अपराध की क्षमा-याचना की।

अंजना ने पवनंजय के मुख पर अपना हाथ रख दिया और बोली—'स्वामि! ऐसा न कहें। इस प्रकार कहकर मुझे दुःख न पहुँचाएँ। मैं तो आपकी सदैव दासी हूँ। चरण रज समान एक दासी के सामने क्षमा-याचना नहीं होती नाथ!'

आवास में मौन छा गया।

प्रहसित और वसन्ततिलका आवास से बाहर निकल गए।

दुःख की कालिखसम श्याम रात बीत गई। सुख का मनोहर प्रभात उदित हुआ। बाईस बाईस वर्षों तक सितम पर सितम सहन करते करते भग्न खंडहर बनी हुई उसकी काय लतिका को पुनः नव पल्लवित होने का अवसर मिल गया।

परन्तु यह बिजली की चमक थी। इस जुगनू की चमक में अंजना ने दाम्पत्य सुख भोग लिया।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में पवनंजय ने अंजना से जाने की अनुमति माँगी।

'युद्ध के लिए जाना पड़ेगा, देवी....अन्यथा पिताजी....'

'परन्तु.......'

'तू चिन्ता न कर। सखियों के साथ तू सुख से रहना। मैं लंकापति का कार्य सम्पादित कर अविलम्ब आ जाऊँगा।'

'स्वामिन्! आप पराक्रमी हैं, वीर हैं, यह आपका कार्य सिद्ध ही है। आप यदि मुझे जीवित देखने के इच्छुक हैं तो कृपया शीघ्र लौटें।'

'ऐसी शंका न कर........'

'मैं सप्रयोजन ही कहती हूँ क्यों कि आज ही मैं ऋतुस्नाता हूँ। मुझे गर्भ ठहरने का अनुमान होता है। अब यदि आप समय पर नहीं लौटे तो इस जगत में मेरी क्या दशा होगी?'

'तेरी वात सच्ची है प्रिये! परन्तु मैं शीघ्र ही लौटूँगा और मेरे लौटने के पश्चात् तो किस तुच्छ एवं क्षुद्र व्यक्ति की ताकत है जो तेरी तरफ उँगली भी उठा सके?'

पवनंजय ने आश्वासन दिया फिर भी उसे लगा कि अंजना के चित्त का समाधान नहीं हुआ तव उसने अपनी नामांकित मुद्रिका उतार कर अंजना को दी और कहा—'हो न हो, पर कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो ही जाए तो तू मेरे आगमन की सूचक यह मुद्रिका दिखा देना, जिससे तुझ पर किसी प्रकार का कलंक न आने पाए।'

अंजना के चित्त का कुछ समाधान हुआ। उसके हृदय में तो आ जायेंगे के स्वर गूँज रहे थे. पर करे भी तो क्या'? पवनंजय गए विना रह नही सकता था। मुद्रिका देकर पवनंजय उद्यान में आया। विमान में वैठकर दोनौं मित्र प्रभात होते होते तो मानसरोवर के तट पर आ पहुंचे।

पति के मधुर मिलन की रात अंजना के लिए मानो एक

स्वप्न हो गई। अंजना ने गर्भ धारण किया।..जैसे जैसे दिन बीतने लगे अंजना का सौन्दर्य खिलने लगा। देखते ही देखते तो गर्भवती स्त्री के चिन्ह उसके शरीर पर दीखने लगे।

नगर या महल में किसे पता था कि पवनंजय और अंजना का मिलन हुआ है? वर्षो से अंजना पवनंजय द्वारा परित्यक्ता है इस बात का सभी लोगों को पता है, राजमहल भी जानता है।

बात फैलते कौनसी देर! दासियों द्वारा पवनंजय की माता केतुमती के कानों तक भी बात पहुँची कि अंजना गर्भवती है। वह चौंक उठी। उसके चित्त में नाना प्रकार के भयंकर विचार प्रसारित हुए। बात सुनते ही वह लपककर अंजना के महल में आई। सखी वसन्ततिलका के साथ अंजना निर्दोष आमोद प्रमोद कर रही थी कि केतुमती का कठोर स्वर उसके कानों से टकराया। केतुमती महल की परिचारिका से पूछ रही थी।

'कहाँ है वह सती अंजना?' सास की आवाज सुनते ही अंजना धीरे से बाहर आई और उसने केतुमती को प्रणाम किया। केतुमती तो आँखें फाड़कर अंजना के शरीर को देख ही रही थी कि क्रोधाग्नि भभक उठी।

'अरे! तूने यह कैसा काला कुकर्म किया? तूने अपने पिता के और मेरे दोनों कुलों को कलंकित किया। कर्कशतापूर्वक केतुमती बोली।

'परन्तु माताजी सुनो भी तो....'

'क्या सुनूं, तेरा सिर? तेरे काले कारनामे मुझे नहीं सुनने। बाईस बाईस वर्षो से मेरे पुत्र ने तेरी ओर झांका तक नहीं तो तेरे यह गर्भ रहा किससे?'

'माताजी....' अंजना का हृदय भर आया।

'कुलटा, आज मालूम हुआ कि तू ही ऐसी है। अब तक मैं तुझे पवित्र समझती थी और मेरे पुत्र को दोष देती थी....'

'मैं निर्दोष हूँ। मेरा तनिक भी दोष नहीं.......आपके पुत्र जिस दिन लंका की ओर प्रयाण कर गए थे उसी रात लौटे थे....' अंजना ने एक ही सांस में कह दिया।

'हां माताजी, मैं भी उस समय उपस्थित थी' वसन्ततिलका ने अपनी स्वामिनी की बात का समर्थन किया।

'बैठ बैठ, अधिक होशियारी न दिखा। चोर का भाई घंटी चोर। तूने साथ रहकर क्या क्या धंधे किये हैं, भेद अब छिपे नहीं हैं, समझी ? केतुमती ने वसन्ततिलका को भी आड़े हाथों लिया।

'परन्तु मैं उनके आगमन का प्रमाण दूं तो ?'

'ओ हो ! देखो न बड़ा प्रमाण दिखाने चली है। दिखा क्या प्रमाण है ?'

अंजना ने पति द्वारा दी गई मुद्रिका केतुमती को दे दी।

'कुलटाएँ अन्य जनों को बनाने में भी निपुण होती हैं। मेरा पुत्र तुझे आँख उठाकर भी देखना नहीं चाहता तो फिर तेरे साथ संयोग कैसा ? तेरी साहूकारी की बातें मुझे नहीं सुननी।

केतुमती की क्रोधभरी आवाज सुनकर महल की दासियां इकट्ठी हो गईं।

'इसी समय मेरे घर से निकल जा। चली जा अपने बाप के घर। तेरे स्वच्छंदाचार यहाँ नहीं निभेंगे। स्वच्छंदाचारियों के लिए मेरा घर नहीं है।'

मानो विजली टूट पड़ी। क्रूर प्रहारों और धिक्कारों को अंजना का कमल-कोमल हृदय कहाँ सहन कर सकता था? अंजना भूमि पर मूर्छित हो गिर पड़ी। पीछे ही खड़ी हुई वसन्ततिलका ने अंजना को सम्हाल लिया। शीतल जल छिड़क कर, पंखे की वायु डालकर अंजना को होश में लाया गया परन्तु उसे तो आज दुनिया घूमती हुई दीखने लगी। उसकी आँखों में से आँसुओं की धारा वह चली। करुण क्रन्दन करती हुई अंजना पति को याद करने लगी।

'हे नाथ! आप कब पधारेंगे? आपको मैंने जाते समय ही निवेदन किया था। मेरा हृदय आपको न जाने के लिए कह रहा था·······परन्तु आप शीघ्र ही लौटने की शर्त पर पधारे··· अभी तक लौटे नहीं·······मेरी इस दुर्दशा का आपके सिवाय कौन निवारण करेगा?'

केतुमती तो करुण क्रन्दन करती हुई अंजना को छोड़कर सीधी पहुँची राजा प्रह्लाद के पास।

'कुल में आग लग गई'—एक ओर पड़े हुए भद्रासन पर वैठती हुई केतुमती ने कहा।

'कुछ भी समझ में नहीं आया।'

'अंजना ने आज अपना पोत प्रकाशित कर दिया। आज दिन तक हम लोग अंजना को निर्दोष, निरपराध मानते थे, परन्तु जात कुजात निकली·······उसके गर्भ रह गया है।'

'हैं? गलत सर्वथा गलत' प्रह्लाद सिंहासन पर से खड़े हो गए। केतुमती की बात वज्रप्रहार सी लगी। बात मानने में न आई। राजा महेन्द्र की पुत्री और अपनी पुत्रवधू कभी भी ऐसा अधम कृत्य नहीं करेगी, उनका मन बोल उठा।

मैं स्वयं देखकर आई हूँ—वह गर्भवती हुई है और कहती है कि तुम्हारे पुत्र से ही मैं गर्भवती हुई हूँ। परन्तु मेरे लाड़ले ने तो इस कुलटा का मुँह तक नहीं देखा; मुँह देखने को वह सहमत ही नहीं था तो उससे भला गर्भ रहे भी तो कैसे? साथ ही प्रपंची भी कैसी है! पवनंजय के नाम की मुझे अंगूठी दिखाई।

राजा प्रह्लाद गहरे विचारों में डूब गए। बाईस बाईस वर्षों तक कभी भी अंजना के विरुद्ध उसने अनुचित सुना नहीं, देखा नहीं……उस अंजना के लिए आज जब स्वयं केतुमती को शिकायत करने के लिए आई देखी तो प्रह्लादराज के मन में उथल पुथल मच गई।

'आप क्या सोच रहे हैं? ऐसी कुलटाओं के लिए अपने घर में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। इसे अपने बाप के घर निकाल दीजिये। मैंने तो उसे चली जाने के लिए कह दिया है।' केतुमती का आवेश बढ़ता जाता है।

'बिना पूर्ण जांच पड़ताल के इस प्रकार हम इसे नहीं निकाल सकते। राजा महेन्द्र के साथ मेरे सम्बन्ध पर विचार करना चाहिए। किसी भी जीव के प्रति अन्याय न हो जाए, इस बात का उत्तरदायित्व हमें समझना चाहिए।'

प्रह्लाद ने एक सुज्ञ एवं ठण्डे दिमाग वाले राजवंशीय की भाँति कहा।

'तू निश्चित रह, मैं उचित सब कुछ कर देता हूँ।' केतुमती को समझाकर विदा करके प्रह्लाद ने प्रतिहारि को आवाज दी। स्वामी की आवाज आते ही प्रतिहारि ने आकर नमस्कार किया।

'महामन्त्री शीलरत्न को बुला लाओ।' राजा ने महामन्त्री को बुला लाने की आज्ञा दी। प्रतिहारि पुनः नमस्कार कर बाहर चला गया।

समाचार मिलते ही महामन्त्री राजमहल में आ पहुँचे। राजा प्रह्लाद ने महामन्त्री को आसन दिया।

'महाराजा! सेवक को अचानक कैसे याद करना पड़ा?'

'महामन्त्री! एक गम्भीर घटना घटित हुई है....' महामन्त्री मौन रहे।

'अंजना गर्भवती बनी है। केतुमती स्वयं देखकर आई है।' राजा ने बात की गम्भीरता बताई।

'फिर आपने क्या सोचा?' बिना सोचे महामन्त्री ने प्रश्न किया।

'मुझे तो कुछ नहीं सूझता....अंजना की पवित्रता के विषय में मेरे मन में अभी तक शंका उत्पन्न नहीं होती। पर दूसरी ओर अंजना के गर्भवती होने की बात भी इतनी ही सच्ची है। हम सभी जानते हैं कि बाईस वर्षों से पवनंजय ने अंजना के सामने आँख उठाकर भी नहीं देखा, तो फिर गर्भ किससे रहा?' राजा ने अपनी परेशानी व्यक्त की।

'अंजना इस संबंध में क्या कहती है, आपने पता लगाया?' मन्त्री ने सर्वांगीण जानकारी प्राप्त करने हेतु दूसरा प्रश्न किया।

'केतुमती को तो उसने यही कहा कि जिस दिन पवनंजय ने लंका की ओर प्रयाण किया उसी रात को वह अंजना के पास लौटा और एक रात उसके साथ बिताई, अपने नाम की मुद्रिका दी, वह वापस गया और उसके गर्भ रहा।'

महामन्त्री सोचने लगे। वाईस वाईस वर्षों की अवधि में उन्होंने अंजना के सतीत्व के विषय में बहुत सुना है। पवनंजय ने उसका त्याग कर दिया पर कभी भी अंजना के मुँह से पवनंजय के विषय में अनुचित बात नहीं सुनी। पवनंजय की अनुपस्थिति में अंजना अपने शील की कैसी उच्च कोटि की रक्षा करती है, यह बात भी सारा शहर जानता है। ऐसा एक स्त्री रत्न आज कलंकित हो रहा है, यह सोच कर महामन्त्री क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गए।

साथ ही उन्होंने सोचा, 'क्या मनुष्य के जीवन में भूल होना सम्भव नहीं है? क्या सागर को तैरकर पार करने वाला तैराक किनारे आते आते डूबता नहीं? इस प्रकार भले ही वाईस वर्षों तक अंजना ने अपने शील की रक्षा की, परन्तु क्या वह आज भूल न कर सकती? क्या अपनी भूल को छिपाने के लिये झूठ भी नहीं बोल सकती....?'

'महाराजा! इस संबंध में अभी का अभी कोई निर्णय करने में हम कोई अन्याय कर बैठेंगे, अतः मुझे आज के दिन और रात का अवसर दें। मैं इस संबंध में आवश्यक जाँच कर कल प्रातःकाल आपसे मिलूँगा।' महामन्त्री ने प्रह्लाद से कहा।

'परन्तु केतुमती ने तो अंजना को तत्काल चली जाने के लिए कह दिया है....।'

'क्षमा करें महाराज! परन्तु महादेवी को ऐसी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।'

'पर अब क्या करना?'

'आप महादेवी को आज आज प्रतीक्षा करने के लिए

समझाएँ। कल प्रातःकाल तो हमें आवश्यक निर्णय लेना ही है।'

'परन्तु न समझे तो?' राजा केतुमती के जिद्दी स्वभाव से परिचित था।

'तो प्रजा में असंतोष व्याप्त हो जायगा, क्योंकि प्रजा में अंजना के प्रति मान है। लोग उसे सती मानते हैं और यकायक यदि उसे निकाला गया तो परिस्थिति बिगड़ जाएगी।'

'बात सच्ची है, क्योंकि प्रजा को कहाँ पता है कि पवनंजय की अनुपस्थिति में अंजना गर्भवती हुई है?' राजा को महामंत्री की बात ठीक लगी।

किसी भी प्रकार से केतुमती को समझा बुझा कर कल तक राह देखने के लिए मनाने का निश्चित कर महामन्त्री महाराजा की अनुमति ले अपने निवास स्थल पर आए।

अपने गुप्त मन्त्रालय में जाकर तुरन्त ही अपने विश्वासपात्र गुप्तचर जयनाद को बुलाया। जयनाद महामन्त्री का स्वामी-भक्त, चतुर और सजग गुप्तचर था। अनेक विकट प्रसंगों में भी इसने अपनी चतुराई और सजगता दिखाकर महामन्त्री का चित्त हरण किया था।

जयनाद आकर प्रणाम कर महामन्त्री के निकट बैठ गया। महामन्त्री ने उसे सारे प्रसंग से परिचित कराया और इस संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी लाने के लिये आज्ञा दी। जयनाद ने आज्ञा शिरोधार्य की और वहाँ से चल पड़ा।

दोपहर के बारह बजे, फिर भी जयनाद नहीं लौटा। पाँच, छः, सात बजने पर भी जयनाद नहीं दीखा। महामन्त्री चिंता-

तुर हो गए, क्योंकि जयनाद की सूचना पर तो इन्हें सोच कर निर्णय लेना था और कल प्रातः राजा से मिलना था।

रात्रि का प्रारम्भ हुआ। लगभग दस बजे और महामन्त्री के गुप्त मन्त्रणालय के द्वार पर खटखटाहट हुई। महामन्त्री लपक कर द्वार के पास गए और उसे खोलते ही जयनाद ने अंदर प्रवेश किया। द्वार बन्द कर दोनों यथास्थान बैठे।

'क्यों सम्पूर्ण सूचना प्राप्त हुई ?'

'जी हाँ। सम्पूर्ण सूचना लेकर ही आया हूँ। यहाँ से मैं सीधा अंजना देवी के महल पर गया। महल का दासी परिवार अत्यन्त शोकातुर था। किसी किसी की आँख में तो आँसू भी दीखते थे। उनके पारस्परिक वार्तालाप पर अनुभव हुआ कि उनकी अंजना के प्रति पूर्ण सहानुभूति है। महादेवी ने अंजना देवी को निकाल देने के लिए जो आज्ञा दी है, उससे उनमें भारी असंतोष है।'

'उनके वार्तालाप की कोई मुख्य बातें....?'

'एक दासी बोली—'मैं तो बाईस वर्षों से इस महल में हूँ। किसी भी पुरुष को मैंने इस महल की सीढ़ियों पर चढ़ता नहीं देखा।' इतने में तो दूसरी दासी बोली—'यदि ऐसा कुकर्म करना ही हो तो इतने अधिक वर्षोपरांत क्यों ? ऐसी वासनाएँ मन में हों तो उसके लक्षण दीखे बिना रह नहीं सकते।' तीसरी दासी बोली—'और पुरुष का मन कब फिर जाए यह कोई कह सकता है क्या ? युद्ध-यात्रा पर गए, बीच में कोई निमित्त मिल गया हो, मन में परिवर्त्तन आ गया हो और सम्भव है रात ही रात आकर लौट गए हों।'

चौथी दासी बोली—'उस समय वसंततिलका स्वामिनी के

साथ ही थी। उसने पवनंजय और प्रहसित दोनों को देखा है ....ऐसा वह छाती ठोककर कहती है।'

जयनाद ने दासियों के बीच हुए वार्तालाप की थोड़ी सी रूपरेखा दी। 'फिर मैं पृष्ठ भाग में गया। वहाँ महल के मुख्य चौकीदार इकट्ठे हुए थे। उनमें से एक ने जो पहिले स्वयं महाराजा के महल का चौकीदार था और जब से अंजनादेवी आई तबसे उनके महल की चौकीदारी करता है, अपना अभिप्राय अपने साथियों को बताया, 'भाईयो! अंजनादेवी पर वास्तव में यह झूठा कलंक मढ़ा गया है। इतने वर्ष हुए......मैंने किसी दिन इस सती को किसी पुरुष के साथ हँसती, बोलती अथवा बैठती नहीं देखी। शृङ्गार करती नहीं देखी, गीत सुनती नहीं और सिर पर महारानी ने जो आरोप लगाया है, उसके लिये हमें तो बड़ा खेद है; परन्तु सत्ता के आगे समझदारी....! ऐसा कहकर इस वयोवृद्ध एवं प्रधान चौकीदार ने कपड़े से अपनी आँखें पोंछी।

'फिर तो मैं सीधा सातवीं मंजिल पर ही पहुँच गया।'

'तुझे किसी ने रोका नहीं?' महामंत्री ने बीच में प्रश्न किया।

'नहीं, क्योंकि महल का प्रत्येक व्यक्ति गहरे शोक में डूबा हुआ था और दूसरी ओर अंजनादेवी कल जाने वाली है इस ख्याल से किसी का लक्ष्य मेरी ओर आकर्षित नहीं हुआ। मैं ऊपर गया। वहाँ तो भारी करुण-हृदय द्रावक चित्र देखने को मिला।'

'देवी अंजना की आँखों में से आँसू सूखते नहीं....रोते-रोते उनकी आँखें सूज गई हैं। उनकी सखी वसंततिलका ही अकेली

उनके पास बैठी हुई भारी हृदय से आश्वासन दे रही है। उसके शब्द बड़े ही महत्वपूर्ण लगे, क्योंकि जो व्यक्ति शंकास्पद लगता हो, उसी का निकटतम व्यक्ति उसे गुप्त रूप से जो कुछ कहता हो, बोलता हो, उस पर बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।'

जयनाद ने गुप्त जाँच की प्रणाली बताई।

वसंततिलका के स्वर में दर्द था, साथ ही क्रोध भी था। उसने अंजना से कहा, 'वास्तव में यह जगत् धिक्कार योग्य है। केतुमती इतना भी समझ नहीं सकती कि तुमने बाईस २ वर्षों तक किस प्रकार जीवन बिताया है। तेरे स्थान पर यदि वह होती तो बताती कि किस प्रकार युवावस्था में पति के विरह में बाईस-बाईस वर्ष बीतते हैं। इसने आज भले ही तुझ पर आरोप लगाया परन्तु जब पवनंजय आएंगे और जानेंगे कि 'अंजना को कलंकित कर निष्कासित करदी है' तब वे क्या करेंगे इसका पता तो तभी चलेगा। वास्तव में यदि वे उस रात को जब आकर लौटे तब पिताजी, महामन्त्री अथवा माताजी को मिलकर लौटे होते तो यह परिस्थिति खड़ी नहीं होती······· परन्तु खैर, अन्त में तो सत्य की ही विजय होगी।'

ऐसा लगता था कि दुःख के दिन बीत गए—परन्तु दुर्भाग्य अभी भी कसौटी कर रहा है। वसंततिलका की आँखों में आँसू उमड़ पड़े। परन्तु उसने अंजना से छिपाते हुए उन्हें पोंछ लिया।'

महामन्त्री ने जयनाद की बात बड़ी एकाग्रता से सुनी। जयनाद को जाने की अनुमति दी और स्वयं गम्भीर विचार में डूब गए।

'अंजना निर्दोष है....पवनंजय से ही गर्भ रहा है—यह वात सच्ची है पर अब केतुमती को किस प्रकार समझाना—यह एक वड़ा विकट प्रश्न है।' महामन्त्री ने खूब सोचा, मध्यरात्रि हो गई परन्तु नींद नहीं आती....अंजना की असहाय स्थिति पर गौर करते-करते महामन्त्री काँप उठे। स्वयं यदि केतुमती को समझा न सके तो क्या होगा?

श्री नवकार मन्त्र का स्मरण करते-करते महामन्त्री निद्राधीन बने। एक आध प्रहर नींद ली, न ली कि प्रभात हो गया। प्रातःकालीन कार्यों से निवृत्त होकर महामन्त्री राजप्रासाद जाने के लिये निकल पड़े।

राजा प्रह्लाद और रानी केतुमती महामन्त्री की प्रतीक्षा में ही बैठे थे। राजा को नमन कर महामन्त्री ने अपना आसन ग्रहण किया।

मौन छा गया।

इतने में केतुमती ने बात शुरू की।

'महामन्त्रीजी, आज ही अंजना को इस शहर से निष्कासित कर देनी चाहिये।' क्रोध और आवेश में केतुमती उत्तेजित हो रही थी।

'यदि अंजना दोषपूर्ण हो तब तो यह सुझाव उचित है।' ज्योवृद्ध महामन्त्री ने उत्तर दिया।

'तो क्या आपको निर्दोष लगती है?'

'मैंने वारीकी से छानवीन की है। मुझे अंजना दोषित नहीं लगती।'

'दोषिता ही है। छानवीन और क्या करनी रही? दीपक समान स्पष्ट है कि मेरा पुत्र बाईस वर्षों से इसकी ओर देखता

तक नहीं, तो इसके साथ संयोग तो हो ही कैसे सकता है।'

'क्या बाईस वर्षों में भी अंजना के प्रति सद्भाव पैदा नहीं हो सकता ?'

'होता होगा, परन्तु मुझे तो अपने कुल को कलंकित नहीं करना। दुनिया क्या जानती है ? वह तो जानती है कि पवनंजय अंजना को बुलाता तक नहीं और पवनंजय के लंका जाने के पश्चात् अंजना सगर्भा हुई है। तब हमारी प्रतिष्ठा धूल में ही मिलती है—अथवा और कुछ।'

'लोगों को हम सच्ची बात से सूचित कर सकते हैं, फिर प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं उठता।'

'महामन्त्रीजी आप इसका बचाव न करें। मुझे पहले भी लगता था कि पवनंजय अंजना के प्रति ऐसी तीव्र उपेक्षा वृत्ति किसी गम्भीर कारण के बिना नहीं रख सकता। उसने भले ही अंजना के दुराचरण हमें न कहे हों, परन्तु उसे गुप्त रूप से इसकी चालढाल का पता लग गया होगा और इसीलिये वह इससे सख्त नाराज है। अन्तिम बार जब लंका जाने के लिये रवाना हुआ तब भी इसकी उपेक्षा करके गया है और वह लौट कर, रात रह कर चला जाय ? बिल्कुल असम्भव बात है।'

केतुमती दृढ़तापूर्वक अपनी बात पर अड़ी रही।

'तो क्या इसे गर्भिणी अवस्था में ही यहाँ से निष्कासित कर दें, इसमें अपनी अपकीर्ति नहीं होगी ? पवनंजय लौटा न हो, ऐसा हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते। मनुष्य का मन किस समय बदल जाए, हम कहने के लिये शक्तिमान् नहीं हैं। मैंने जो छानबीन की है, उसके आधार पर मुझे तो दृढ़ निश्चय हो चुका है कि पवनंजय लौटकर, रात रहकर, लौट गया है

और जब वह लौटेगा, तभी हम इस बात का निर्णय ले सकेंगे।'

अब तक प्रह्लाद मौन थे। रानी और महामन्त्री की बातें उन्होंने सुनीं, सोचीं और बोले—'अंजना दोषिता है अथवा निर्दोषिता है, इस बात का निर्णय आज लेने में हम बड़े जल्दबाज हैं। पवनंजय के आगमन के पश्चात् ही हम कोई निर्णय ले सकते हैं। परन्तु इस स्थिति में केतुमती के चित्त का भी समाधान हो जाय और अंजना के प्रति भी कोई बड़ा भारी अन्याय न हो जाय इसके लिये मुझे एक उपाय सूझता है।'

'क्या ?' केतुमती बोल उठी।

'हम अंजना को उसके मायके भेज दें। वहाँ वह सुख से दिन काट सकेगी और इस अवधि में पवनंजय भी लौट आएगा।'

केतुमती सहमत हुई, जबकि महामन्त्री मौन रहे। तुरन्त ही सेनापति को बुलाकर अंजना को वसंततिलका के साथ रथ में बिठाकर महेन्द्रनगर छोड़ आने की राजा ने आज्ञा दी।



२२ ऐसा है संसार

अपने धड़कते हृदय के साथ जीवन की आशाओं और आकाँक्षाओं को निराशा के काले आँचल में समेट कर इस महासती ने रथ में पाँव रक्खे। दो आंसू टपके—थोड़ी सी आह निकली और इस भव्य जीवन प्रभात का सुनहरा आकाश छिन्न-भिन्न हो गया।

संसार के लिए मानव जीवन मानो एक खेल है। संसार मनुष्य के जीवन को मनोरंजन का एक खिलौना समझता है और इस प्रकार वह मानव जीवन के साथ खिलवाड़ करता है। केतुमती ने अंजना के जीवन के साथ खिलवाड़ करना शुरू किया।

सेनापति ने रथ को गति दी। वसन्ततिलका को आज अपनी स्वामिनी का सर्वस्व लुटता दीखा। उसने अपने हाथों से मुख को ढक दिया। आँसू पोंछती सखी स्वामिनी के चरणों में लुढ़क पड़ी।

पति का मिलन हुए पूरे नौ महिने भी नहीं हुए थे कि अंजना की समस्त आशाओं पर, सारी उमंगों और सम्पूर्ण उत्साह पर मानो हिमपात हो गया था। क्या-क्या उम्मीदें होंगी। कैसे-कैसे अरमान होंगे? जब समय आया, इन

उम्मीदों और अरमानों के पूर्ण होने की जब आशा प्रकट हुई ठीक तभी पति को घर छोड़कर जाना पड़ा।

ज्ञानी कहते हैं कि यह संसार असार है.........मानव जीवन पानी के बुलबुलों की भाँति विनश्वर है। आगे चलकर वे ऐसा भी कहते हैं कि संसार में क्या संयोग और क्या वियोग ! समुद्र की लहरें ऊँची उछलती हैं—इन लहरों की मछलियाँ आकाश में एक दूसरे को मिलती हैं और क्षण भर में अलग हो जाती हैं.... ऐसा ही यह जीवन है। पर क्या यह बात किसी प्रेम संतप्त हृदय को शांति दे सकती है भला ! ये भावनायें चिरकाल से प्रेमाग्नि में झुलसते हुए हृदय को तत्काल सान्त्वना दे सकती हैं भला ? वह तो कुछ स्थिर होकर किसी महा प्रभाविक योगी पुरुष की शरण प्राप्त करे तो ही हृदय की शांति और सुख पा सकता है।

अंजना का सर्वस्व लुट गया था फिर भी उस स्तब्ध रात्रि को पति के प्रिय मिलन के समय दिये हुए वचन को वह भूली नहीं थी। उसका अन्तःकरण साक्षी दे रहा था कि पवनंजय अवश्य एक दिन मिलेगा और मुरझाये हुए हृदय पुष्प पर प्रेम वारि का सींचन करेगा।

भले ही बाईस वर्षों तक सतत रहे हुए निराशा के घोर अंधकार के बीच यह बिजली चमक गई थी और उतने ही वेग से वह विलीन भी हो गई थी परन्तु इस चमक में अंजना ने भावी सुखद चिन्ह देखे थे।

रथ ग्राम और नगर पार करता हुआ वेग से दौड़ता चला जा रहा था। रथ के सारथि और सेनापति दुःखद मौन धारण किये हुए थे। अंजना और वसन्ततिलका श्री पंच-परमेष्ठि

भगवन्त के स्मरण में लीन बनी हुई थी। वन के पशुओं की आवाज और आकाश के पक्षियों के कलरव सिवाय कुछ भी सुनाई नहीं देता था। बीच बीच अश्व हिनहिनाते थे और कभी कभी सारथि का वेदनापूर्ण निःश्वास भी सुनाई देता था।

सूर्य अस्ताचल पर पहुँचा और रथ महेन्द्रपुर के जंगल में आकर रुका। सेनापति रथ से नीचे उतरा। मस्तक झुकाकर काँपते हाथों से उसने अंजना को प्रणाम किया। आँखें उष्ण आँसुओं से भर गई—निश्वास की भट्टी में सिक कर दो आँसू भूमि पर लुढ़क पड़े।

अंजना वसन्ता के कंधे पर हाथ टिका कर रथ से नीचे उतरी।

'माता……हमारा अपराध क्षमा—' सेनापति का गला भर आया।

'तुम्हारा अपराध नहीं, सेनापति! मेरे दुष्ट प्रारब्ध का ही अपराध है।'

दो घड़ी मौन छा गया। सेनापति ने रथ मोड़ दिया। जंगल में इन दो निराधार स्त्रियों को छोड़कर लौटने के लिए निष्ठुरता के पाषाण को हृदय पर रखकर सेनापति रथारूढ़ हुआ।

सूरज डूब गया। उससे अंजना जैसी महासती का दुःख देखा न गया। सज्जन व्यक्तियों पर जब सितम ढाते हैं तब सज्जन वृन्द उन्हें देखने के मिए समर्थ नहीं होते।

'रात हम यहीं रुकें। प्रातःकाल नगर में जाएँगी,' अंजना ने वसन्ततिलका से कहा।

'परन्तु यहाँ निर्जन—,' वसन्ता को कुछ भय सा लगा।

'डरने का कोई कारण नहीं।' नवकार महामन्त्र अपने पास है तो फिर डरना क्यों?' अंजना का निर्भीक हृदय देखकर वसन्ता निश्चित हुई।

थोड़ी देर हुई कि अंजना को एक बात याद आई।

'वसन्ता! चल खड़ी तो हो।'

'कहाँ चलना है?'

'यहाँ निकट में भगवान श्री ऋषभदेव का मन्दिर है। मैंने देख रक्खा है। चल, दर्शन कर आएँ।'

रात अँधेरी थी परन्तु यह प्रदेश अंजना के लिए परिचित था। दोनों सखियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़कर धीरे धीरे चलने लगीं। कुछ दूर चलने पर सामने ही मन्द मन्द मन्दिर दीखने लगा। अंजना का हृदय पुलकित हो उठा। दोनों मंदिर के पास पहुँची। 'नमो जिणाणं' कहकर मन्दिर में प्रवेश किया। त्रैलोक्यनाथ परमात्मा जिनेश्वरदेव की करुण रस भरी प्रतिमा देखने से मन मयूर नाच उठा। दीपक का प्रकाश कुछ मन्द हुआ था परन्तु मन्द प्रकाश में भी प्रतिमाओं का दर्शन दिल को मोहित कर दे, ऐसा हुआ था।

परमात्मा के समक्ष दोनों सखियाँ बैठ गईं। परमात्मा की मनोरम मुखमुद्रा पर दृष्टि स्थिर कर स्तवना प्रारम्भ की।

सब का करो कल्याण, कृपानिधि !
निरखो तन-मन के दुःख मेरे
दूर करो भगवान—कृपानिधि !
नाभिनंदन ! तुम्हें हो वंदन
अंतर में धरूँ ध्यान—कृपानिधि !
सब का करो कल्याण—कृपानिधि !

मधुर एवं दर्दभरी आवाज ने वातावरण में परिवर्तन कर

दिया। दीपक की ज्योति अधिक चमक उठी और परमात्मा की आँखें मुस्करा उठीं। वसन्ततिलका ने स्तवन को आगे बढ़ाया।

पापों में लयलीन बनी मैं
पाई ना कुछ भी ज्ञान—कृपानिधि
दुखियारी मैं भवोभव भटकूँ
लाओ आतम भान— कृपानिधि

दोनों सुर साथ मिले

सबका करो कल्याण—कृपानिधि
सबका करो कल्याण—कृपानिधि

अंजना की आँखों में आँसू उमड़ पड़े। उसने स्तवना आगे बढ़ाई।

प्रभु भक्ति के पुण्य प्रभाव से
प्रकटो केवलज्ञान—कृपानिधि !
दर्शन दो प्रभु····कष्ट मिटा दो
शरण है तू ही भगवान—कृपानिधि।
सबका करो कल्याण—कृपानिधि !

स्तवना पूर्ण की। आँखें बन्द कर परमात्मा की अचिन्त्य कृपा की वर्षा में स्नान कर दोनों सखियाँ उलटे पाँव मन्दिर से बाहर निकलीं। मन्दिर के आसपास दृष्टि दौड़ाने पर एक पर्ण कुटि दिखाई दी। दोनों पर्णकुटिया के पास गई। अन्दर कोई नहीं था। साथ ही कोई रहता हो ऐसा भी नहीं लगा। दोनों ने पर्णकुटिर में ही रात्रि बिताने का निर्णय लिया। वसन्ततिलका आसपास मालूम करके वृक्ष के पत्तों का एक टोकरा भर लाई। उसका बिछौना कर अंजना को उस पर सुलाया और स्वयं पास में सो गई।

अंजना को नींद नहीं आती। कहाँ से आए ? अपनी आशाओं और कामनाओं को निष्ठुर संसार द्वारा रूंदती देख कर वह रो रही थी। उसका सजीव कोमल हृदय फटकर टुकड़े टुकड़े हो रहा था। हृदय के टुकड़ों को परमात्मा ऋषभदेव के स्मरण द्वारा जोड़ने का प्रयत्न करती थी, परन्तु हाय ! दुर्भाग्य और क्रूर काल का सामना करने में वह असफल रही।

प्रातःकाल वह पिता के द्वार पर जाएगी—तब लज्जा के मारे उसकी स्थिति कैसी होगी ? माता, भाई सभी उसे सहानुभूति से सत्कार देंगे क्या ? उसके चित्त में संशय पैदा हुआ और वह अकुला उठी। पुनः भगवान् के नाम स्मरण में चित्त को जोड़ने का उसने प्रयत्न किया।

अन्तिम प्रहर में उसे कुछ नींद आई। प्रातःकाल वह जागी। वसन्ता को जगाया। दोनों धीरे धीरे कदमों से पर्णकुटिर में से बाहर आईं। भगवन् श्री ऋषभदेव के दर्शन कर नगर के द्वार पर आकर रुकीं। महेन्द्रपुरी को देखते ही अंजना का चित्त अपने शैशवकाल की ओर मुड़ा। भूतकाल का स्मृतिलोक उसके हृदय में अनन्य भाव पैदा कर गया। परन्तु आज इस स्मृतिलोक में दीर्घकाल तक विचरण किया जा सके ऐसी स्थिति कहाँ थी ?

राजप्रसाद के द्वार पर प्रतिहारी चौकीदारी कर रहा था। अचानक अंजना को एकमात्र सखि के साथ नंगे पांव और खाली हाथ आकर खड़ी देखकर प्रतिहारि का चित्त शंकाशील बना।

'बहिन ! क्यों इस प्रकार अचानक ? अकेली ?'

अंजना की दृष्टि तो भूमि पर पड़ गई। वह कोई भी उत्तर

न दे सके ऐसी नहीं थी। प्रतिहारि के प्रश्न का उत्तर वसन्ततिलका ने दिया। आदि से अन्त की सारी बात कह सुनाई। प्रतिहारी दोनों को द्वार के सामने ही अपनी कुटिया में बिठाकर राजा महेन्द्र के पास गया।

राजा को प्रणाम कर प्रतिहारि ने अंजना के आगमन की सूचना दी। जिस प्रकार वसन्ततिलका ने कहा था उसी प्रकार प्रतिहारि ने राजा को सारी घटना से अवगत करवाया। राजा बात सुनकर स्तब्ध हो गए। उनका चित्त उद्विग्न बन गया। उनके मन में अनेक अशुभ विचार उमड़ने लगे।

'वास्तव में स्त्रियों का चरित्र न समझ में आने जैसा गहन होता है। इस मेरी पुत्री ने मेरा कुल कलंकित किया। हम भी जानते हैं कि बाईस वर्षों से पवनंजय ने अंजना का मुंह तक नहीं देखा। पवनंजय की अनुपस्थिति में इस दुष्टा ने कुटिल कार्य किया।'

महेन्द्र की आँखों में कुल कलंक का भय नाचने लगा। मुखाकृति पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आईं। पास ही बैठा हुआ युवराज प्रसन्नकीर्ति पिताजी की परेशानी समझ गया। प्रतिहारि ने आकर बात कही थी वह सब युवराज ने सुनी थी। वह बोल उठा—'पिताजी! इस कुलटा को फौरन निकाल दो।'

'परन्तु ?'

'अंगुली को साँप ने डस लिया हो तो क्या उसे काट कर दूर फेंकना नहीं पड़ता? फिर भले वह अपनी स्वयं की ही अंगुली क्यों न हो।'

प्रसन्नकीर्ति न्यायनिष्ठ कहलाता था। विचक्षण बुद्धिशाली था; परन्तु अंजना के विषय में उसने जो निष्कर्ष निकाला वह महामन्त्री को जरा भी रुचिकर नहीं लगा। महामन्त्री ने महेन्द्र को करबद्ध निवेदन किया—

'महाराजा ! कन्या पर जब सुसराल में कष्ट आते हैं तब उसके लिए शरणभूत पिता ही होता है।'

'महामन्त्री ! शरण किसे दिया जाता है ? ऐसी पापिनी को ? प्रसन्नकीर्ति कुछ उग्र बना।

'युवराज ! आपने कैसे मान लिया कि यह पापिनी ही है ? क्या अंजना निर्दोष नहीं हो सकती ? क्या नहीं सुना कि अंजना की सास केतुमती का स्वभाव क्रूर है ? उसने गलत प्रकार से अंजना को कलंकित की हो, ऐसा सम्भव नहीं है क्या ? अतः मेरा तो नम्र निवेदन है कि कृपा कर अंजना को यहाँ गुप्त रूप से रखकर उसका पालन करें, क्योंकि वह अपनी कन्या है।'

युवराज ने मौन धारण कर लिया; परन्तु राजा महेन्द्र के चित्त को शांति न मिली।

'महामन्त्री ! सास तो सभी ऐसी ही होती हैं, परन्तु पुत्र वधुओं का ऐसा चरित्र कहीं सुना नहीं। फिर यह गर्भ पवनंजय का हो ही नहीं सकता, क्योंकि हमने सुना है कि बाईस वर्षों से पवनंजय का अंजना पर एक सा द्वेष रहा है। अतः केतुमती ने जो दण्ड दिया है वह उचित ही है।'

महेन्द्र के हृदय में सदाचार का कितना उच्चकोटि का मूल्य अंकित होगा ? सदाचार का पक्षपाती हृदय अपनी पुत्री के प्रति भी शिथिलता नहीं आने देता। माना कि अंजना दोषित नहीं है फिर भी इस पर जो आरोप आ पड़ा है उसे सुनकर महेन्द्र कांप उठते हैं और पुत्री को भी शरण न देने का निर्णय कर बैठते हैं।

परन्तु महेन्द्र का यह एकांगीपन है। सदाचार का तीव्र पक्षपात अवश्य है, परन्तु वह अपने लिए ही होना चाहिए।

दूसरे के प्रति सदाचार का ऐसा तीव्र पक्षपात नहीं होना चाहिए कि जिसमे सामने वाले व्यक्ति के साथ अन्याय हो जाने वाले व्यक्ति का जीवन खतरे में पड़ जाए। सम्पूर्ण छानबीन किये विना किसी के कहने पर अपना अपने ही मनमाने अनुमानों पर दूसरे की आत्मा को नीचा दिखाना न्यायसंगत नहीं है, और इस प्रकार किसी के कहने पर, उड़ती वातें सुनकर, मनमाने अनुमान लगाकर अन्य आत्माओं को जो वदनाम करते हैं, वे जीव ऐसे कठोर पापकर्म वांधते हैं कि जिनके विपाक भवांतर में आँखों से रक्त के आँसू प्रवाहित करवाने वाले होते हैं।

यद्यपि यहाँ अंजना का ही दुष्ट प्रारब्ध महेन्द्र को सच्ची सूझ नहीं होने देता परन्तु इतने मात्र से महेन्द्र का निर्णय निर्दोष नहीं ठहरता। कर्मों की सजा तो उसे भोगनी ही पड़ेगी।

'महाराजा ! अंजना के रक्त में आपके सुसंस्कार डाले हुए हैं। वर्षों तक उसने अपने घर में रहकर शील और सदाचार की उच्च शिक्षा प्राप्त की है। हमने वर्षों तक अपनी आँखों के सामने उसे देखी है। एक छोटा सा भी काला दाग उसमें देखने को नहीं मिला। अंजना पवित्र है, सुशीला है,' महामन्त्री ने गम्भीर होकर ऊँची आवाज से मतानुसार सच्ची वात कह दी। परन्तु राजा महेन्द्र पर उस वात का जरा भी प्रभाव नहीं हुआ। वह तो अपने ही विचारों पर दृढ़ रहा। तुरन्त द्वारपाल को वुलाकर आज्ञा दी।

'मुझे तो इसका मुँह भी नहीं देखना। इस पापमुखी को अभी ही यहाँ से निकाल बाहर करो और सेनापति को यहाँ वुला लाओ।'

'"रन्तु महाराज ! जरा........'

'जरा भी नहीं महामन्त्री, अब आप इसका गलत बचाव न करें। मैं आपकी बात मानने के लिए तनिक तैयार नहीं हूँ।' महेन्द्र का चेहरा क्रोधाग्नि से तमतमा उठा।

द्वारपाल का हृदय धग्धग् करने लगा। भूखी और प्यासी अंजना को निकाल बाहर करने का पापकार्य करने के लिए कदम उठाते उसके अंग अंग काँप उठे, फिर भी राजा की आज्ञा-जो आज्ञा। अंजना कहाँ जाएगी? इसे किसका सहारा? अकेली, असहाय कितनी दुःखी हो जाएगी? द्वारपाल की आँख में आँसू छलक पड़े। वह दबे कदमों से दरवाजे से आगे बढ़ा। वसन्ततिलका कभी से प्रतीक्षा में बैठी थी। द्वारपाल को दबे कदमों और आँखें पोंछते आता देखकर उसने अनुमान लगा लिया। इतने में द्वारपाल आकर खड़ा हुआ। दोनों हाथ जोड़कर उसने अंजना को प्रणाम किया और मौन खड़ा रहा।

'क्यों, महाराज ने क्या कहा!' वसन्ता ने पूछा।

द्वारपाल क्या उत्तर देता? वह मौन रहा।

'मौन क्यों हो? निःसंकोच कह दो, क्या हुआ?' अंजना ने कहा।

'महाराज ने आदेश दिया है कि आपको यहाँ से सत्वर....'

'चला जाना चाहिये, यही न! अंजना ने द्वारपाल को अटकता देखकर वाक्य पूरा किया।

'हाँ....देवी....' द्वारपाल रो पड़ा। दोनों हाथों से उसने अपना मुँह छिपा लिया।

अंजना ने वसन्ततिलका का हाथ पकड़ लिया और वह चलने लगी।

सूर्य शर्म के मारे वादलों की ओट में छिप गया। आकाश धूल से ढक गया।

कैसा वदनसीव यह दिन ! कौन सहृदय नागरिक इस दिन रोया नहीं होगा ? किस भावुक आत्मा ने इस दिन दुष्ट आत्मा को कोसा न होगा ? किस साधु पुरुष ने इस दिन संसार की असारता का दर्शन न किया होगा ?

लड़खड़ाते पाँवों अंजना ने महेन्द्रपुरी के राजमार्ग काटे और जंगल की राह ली। उसने न तो खाया और न पीया। उसका हृदय भर गया, आँखों से आँसुओं की धारा वहने लगी। वह चीखकर रो पड़ी और एक शिला पर वैठ गई।

अरण्य के पशु खड़े रह गये। आकाश के पक्षी स्तम्भित हो गए। अंजना के करुण क्रन्दन से ये पशु-पक्षी भी व्याकुल हो उठे। वसंततिलका भी रो रही थी। आज अंजना को आश्वासन देने के लिए उसके पास शव्दों का अभाव था, हृदय भी नहीं था।

पुनः उठकर चलना प्रारम्भ किया। नंगे पांवों में नुकीले काँटे चुभने लगे। कोमल चरणतल में से रक्त की धारायें प्रवाहित होने लगीं।

मध्याह्न हुआ। सूर्य वादलों की ओट से वाहर निकला। दोनों सखियाँ एक वड़े शहर की सीमा पर जा पहुँची। एक घने छायादार वृक्ष के नीचे जाकर दोनों ने विश्राम किया।

'हम इस नगर की किसी धर्मशाला में रुकें तो ?' वसंततिलका ने कहा, क्योंकि दोनों ने कुछ भी खाया-पीया न था। धर्मशाला में रुकने पर कुछ व्यवस्था सम्भव थी। अंजना ने सहमति प्रकट की; अतः दोनों ने शहर की राह ली। नगर के

द्वार पर ही दो चौकीदार खड़े थे। दोनों सखियाँ ज्यों ही शहर में घुसने लगीं त्यों ही चौकीदारों ने उन्हें रोक दीं।

'आप इस नगर में नहीं जा सकतीं ?'

'क्यों ?' वसंता ने उग्रता के साथ प्रश्न किया।

'राजा महेन्द्र की आज्ञा है कि आपको उनके राज्य के किसी भी ग्राम या नगर में प्रवेश न दिया जाए।'

अंजना को निकालने के बाद राजा महेन्द्र ने सेनापति को बुलाकर आज्ञा दी थी कि अपने राज्य के किसी भी गाँव या शहर में अंजना का प्रवेश न होने दिया जाए। तदनुसार सेनापति ने स्थान-स्थान पर अपने व्यक्ति नियुक्त कर दिये थे।

अंजना को कुछ कहना ही नहीं था। वह तुरन्त ही लौट गई। पुनः वनमार्ग पर प्रयाण शुरू कर दिया। भटकती हुई दोनों एक बड़ी अटवी में आ पहुँची। वहाँ उन्होंने एक विशाल वृक्ष के नीचे विश्राम किया।

'कैसी मैं अभागिनी कि गुरुजनों ने बिना सोचे पहिले दण्ड दिया और अपराध का निर्णय फिर करेंगे ? अरे केतुमती ! तुमने भी ठीक ही किया। मुझे बदनाम कर अपने कुल की रक्षा की। पिताजी ! आपने भी उचित ही अपने सम्बन्धियों के मन रक्खे। मुझ अभागिनी ने सोचा था कि दुःखी स्त्रियों के लिए माता ही आश्वासन का स्थान होती हैं, परन्तु माँ तूने अपना पतिव्रता धर्म उचित ही निभाया। तुझे तो पिताजी के चरण कदमों पर ही चलना चाहिये न ? प्रसन्नकीर्ति ! तू भी क्या कर सकता है ? तेरा क्या दोष ? पिताजी की मौजूदगी में तू कर ही क्या सकता है ? और नाथ····पतिदेव····आप तो दूर हैं।

आप यदि होते····पर हाय ! आपकी अनुपस्थिति में सभी मेरे शत्रु बन बैठे हैं।'

उसका विलाप जारी रहा। उसकी आँखों में होकर संसार का प्रत्येक स्वजन निकला। जिस-जिस ने अंजना को एक दिन भी प्रेम से कृतार्थ किया था, उन सबने अंजना को कुसमय में धोखा दिया।

यह तो संसार की विशेषता है। संसार नाम ही इसका है कि तुम इसके प्रति प्रेम धारण करो और यह तुम्हें धोखा दे।

'वास्तव में मेरे समान अन्य कोई अभागिनी स्त्री नहीं होगी। इतने-इतने वर्षों तक पति का विरह होने पर शायद ही कोई स्त्री जीवित रह सकती होगी जबकि मैं अभी तक जी रही हूँ।'

प्रातःकाल से कुछ भी खाया-पीया नहीं था, वसन्ततिलका ने कहा—

'तू यहीं बैठ, मैं आसपास पता लगाती हूँ; थोड़े से फल लाती हूँ और पानी की भी खोज कर आती हूँ।' अंजना को बिठाकर वसंततिलका वन के अन्दर गई। वस्त्र में फल भरकर आसपास पानी की खोज करने लगी। कुछ आगे बढ़ी। एक पर्वत की तलहटी में एक सुन्दर सरोवर देखा। निकट ही एक सुन्दर गुफा देखी। चारों ओर रमणीय वृक्ष लतिकाएँ देखीं और चित्त प्रसन्न हो गया। अब आगे कहीं न जाकर इसी स्थान पर रहने का ख्याल आया। वह लपककर अंजना के पास आई।

'अंजना ! चल खड़ी हो। यहाँ थोड़ी ही दूर पर एक रमणीय स्थल है, वहाँ हम चलें। मुझे तो वह प्रदेश बहुत ही

पसन्द आया है। यदि तेरी इच्छा हो तो हम वहीं रुक जाएँ।'

अंजना को लेकर वसंततिलका पर्वत की तलहटी में आई। प्रदेश देखकर अंजना को आनन्द हुआ। गुफा के द्वार पर ही बैठकर दोनों सखियों ने फलाहार किया और सरोवर का पानी पीया।

'अब हम कहीं भी आगे न चलकर यहीं रुक जाएँ, ऐसा मुझे लगता है', अंजना ने अपना अभिप्राय व्यक्त किया।

दोनों सखियों ने वहाँ आराम किया। सूर्य पश्चिम दिशा में ढलने लगा। मन और तन की थकान कम हुई। वसंततिलका खड़ी हुई।

हम इस गुफा के अन्दर चलें। देखें तो सही कि अन्दर रहने योग्य है अथवा नहीं? दोनो सखियाँ दवे पाँवों गुफा में प्रविष्ट हुईं।

गुफा में अभी अधिक दूर गई भी न थीं कि सामने एक महामुनि को ध्यानस्थ खड़े देखकर दोनों सखियाँ वहीं खड़ी रह गईं। दोनों ने महामुनि को सिर झुकाकर करबद्ध प्रणाम किया और विनय-मर्यादापूर्वक वहाँ बैठ गईं।

महामुनि ने ध्यान पूर्ण किया। दाहिना हाथ ऊँचा उठाया और 'धर्मलाभ' की शुभाशीष दी।

पुनः दोनों सखियों ने भक्तिपूर्वक हृदय से वंदना की। वसंततिलका ने सविनय बात शुरू की और लगा कि 'ये कोई महान् ज्ञानी साधु पुरुष हैं। सखी के दुःख की बात करूँ। अवश्य कृपासिंधुसम ये महापुरुष कोई सुन्दर मार्ग बतायेंगे।'

'कृपानिधि! मेरी सखी पर इतनी अधिक आपत्तियाँ क्यों

लक्ष्मीवती मानती थी कि मुझे इस महान् राज्य सुख की प्राप्ति परम कृपालु परमात्मा की कृपा से ही हुई है। अतः इन राज्य सुखों का त्याग कर मुझे इन परमात्मदेव के चरणों में ही ये सुख भेंट कर देने चाहियें। उन्होंने अपना जीवन त्यागमय एवं तपोमय बनाया। परमात्मा की भक्ति में उन्होंने अपना चित्त लगा दिया। नित्य प्रातः सायं उन्होंने भगवान् की भव्य पूजा करना शुरू किया।

बड़े-बड़े संगीतकारों को बुलाकर उन्होंने भगवन् के समक्ष भक्तिरस का ठाठ जमा दिया। नगर की स्त्रियाँ भी धीरे-धीरे लक्ष्मीवती के साथ प्रभु भक्ति में जुड़ने लगीं। राजा कनकरथ भी लक्ष्मीवती का भक्त हृदय देखकर प्रसन्न होते थे। उन्होंने रानी को प्रभुभक्ति में आवश्यक सभी अनुकूलतायें देना शुरू किया।

लक्ष्मीवती का महल मानो भक्तों का धाम हो गया। नगर में लक्ष्मीवती का रानी के रूप में ही नहीं, परन्तु परम-श्राविका के रूप में बहुत-बहुत मान और गुणानुवाद होने लगा।

लक्ष्मीवती के द्वार पर आया हुआ कोई भी दुःखी जीव खाली हाथ नहीं लौटता था। लक्ष्मीवती के पास आया हुआ कोई भी जीव हताश होकर नहीं लौटता था। प्रसन्न मुख तथा समतायुक्त हृदय से वे सभी जीवों का सत्कार करतीं और परमात्मा की अचिन्त्य महिमा समझातीं।

परन्तु यह सब कुछ ऐसा था जो ईर्ष्यालु जीव के हृदय में आग लगादे। कनकोदरी लक्ष्मीवती का यह उत्कर्ष सहन न कर सकी। कहाँ से सहन कर सके? तलवार के घाव सहन करना सरल है, उग्र तपश्चर्या के कष्ट भी सहन करना सरल

है, भूख और प्यास के दुःख भी सहन किये जा सकते हैं परन्तु अन्य जनों का उत्कर्ष सहन करना दुष्कर है।

जब दूसरों का उत्कर्ष असह्य होता है तब मनुष्य उनके दोष देखने को प्रेरित होता है और छद्मस्थ आत्माओं में दोष तो देखें उतने मिलेंगे। ईर्ष्यालु मनुष्य दूसरे का दोष देखकर फिर उसे नीचा दिखाने का अधम कार्य शुरू करता है। स्वयं को सज्जन और अच्छा मानता हुआ वह मनुष्य फिर सीधा ही अधःपतन की खाई में गिर पड़ता है।

कनकोदरी लक्ष्मीवती को नीचा दिखाने के लिये लालायित हुई। उसने दासियों द्वारा लक्ष्मीवती के लिये अनुचित बातें फैलानी शुरू कीं। परन्तु सूर्य के सामने धूल उड़ाने जैसी उसकी स्थिति हो गई। लोगों के हृदय में लक्ष्मीवती के लिये वह निश्चित स्थान था कि वे उसके विषय में जरा भी हल्का सुनने को तैयार नहीं थे, बल्कि वे हल्के बोलने वाले के प्रति घृणा करने लग गए।

कनकोदरी ने काफी प्रयत्न किये परन्तु लक्ष्मीवती का यश सूर्य तनिक भी मन्द नहीं हुआ। इसके विपरीत दिन प्रतिदिन उसके महल में भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। कनकोदरी का द्वेष बहुत ही अधिक बढ़ गया, किसी भी प्रकार से लक्ष्मीवती की लोकप्रियता मिटाने के लिये वह योजनायें सोचने लगी। सोचते सोचते उसे एक योजना सूझी। उसने अपनी एक सखी सुलेखा को बुलाया।

कनकोदरी के विचारों से सुलेखा परिचित थी। उसे भी लक्ष्मीवती के प्रति अरुचि थी। लक्ष्मीवती के अहित की प्रत्येक प्रवृत्ति में वह कनकोदरी की सहायता करती थी। कनकोदरी को भी सुलेखा पर बड़ा गर्व था।

'सुलेखा, अब एक उपाय सूझता है'····कनकोदरी ने सुलेखा के कान में बात कही।

'क्या'

'लक्ष्मीवती के तागड़ धिन्ना किस पर हैं ?'

'नहीं समझी।'

'इतना भी नहीं समझी ? इसके भगवान की मूर्ति की तो यह सब लीला····यह मूर्ति ही·······'

'हाँ-हाँ समझ गई। बस, अब सब कुछ पटा लूँगी।'

'नहीं, इसमें तेरा काम नहीं। यह काम मैं ही करूँगी। तुझे तो एक ही काम करना है।'

'क्या ?'

'युक्तिपूर्वक यह मूर्ति यहाँ उड़ा लाना।'

'स्वीकार है।'

महामुनि; अंजना और वसन्ततिलका को उनके भूतकाल के चित्रपट पर ले जाते हैं। दोनों सखियाँ दत्तचित्त होकर महामुनि की वाणी का श्रवण करती हैं।

सुलेखा ने नित्य लक्ष्मीवती के मन्दिर में जाना शुरू किया। लक्ष्मीवती के भक्ति प्रसंगों में वह उपस्थिति देने लगी। धीरे-धीरे उसने त्रिकाल पूजन शुरू किया। एक भक्त श्राविका की भाँति उसने आचरण शुरू किया। इस प्रकार उसने लक्ष्मीवती के मन्दिर में आने वाली प्रत्येक स्त्री का प्रेम सम्पादन करना शुरू किया।

सुन्दर-सुन्दर पुष्पों की टोकरियाँ ले जाकर उसने परमात्मा की अपूर्व अंगरचना करनी शुरू की। नैवेद्य के थाल भर-भरकर

लाकर परमात्मा की अपूर्व भक्ति करने लगी। अल्पकाल में लक्ष्मीवती के नाम के साथ-साथ सुलेखा का नाम भी लोक-जिह्वा पर नाचने लगा। लक्ष्मीवती के मन में भी सुलेखा के प्रति प्रेम जाग्रत हुआ। वह सुलेखा की प्रशंसा करने लगी।

सुलेखा को अपनी योजना की सफलता के लक्षण दिखे। कनकोदरी को उसने कह भी दिया कि 'अब बस दो चार दिन में कार्य की सिद्धि समझें।' एक दिन दुपहरी के बारह बजे हाथ में पुष्प की टोकरी लेकर पूजा के वस्त्र पहिनकर वह मन्दिर में पहुँची।

मध्याह्न के समय मन्दिर में प्रायः कोई भी नहीं होता। अतः यह समय सुलेखा को अपने कार्य के लिए अनुकूल जँचा।

उसने मूर्ति के आसपास पुष्प बिखेर दिये और मूर्ति को टोकरी में डाल दी। उस पर थोड़े से पुष्प ढँक कर, टोकरी लेकर मन्दिर से बाहर निकल गई। महल के मुख्य द्वार के चौकीदारों के सम्मुख नित्य की भाँति हल्की मुस्कान कर लपक कर कनकोदरी के महल में पहुँच गई। झरोखे में कनकोदरी प्रतीक्षा में बैठी थी। त्वरित गति से सुलेखा को आती देखकर कनकोदरी नाच उठी।

सुलेखा ने संकेत द्वारा कनकोदरी को अनुसरण करने की सूचना दी। महल के किसी एकान्त भाग में दोनों पहुँची।

'कार्य सफल!' सुलेखा ने आँखें मटकाकर कनकोदरी की ओर देखा।

'मेरी सखी जो भी काम हाथ में लेती है, वह सफल ही होता है।' कनकोदरी ने सुलेखा की पीठ थपथपाई।

'अरे, अभी तो कैसा नाटक होता है जो तू देखना।'

'अब कैसा नाटक।'

'पहिले से नाटक की बात कह दूँ तब तो फिर मजा ही क्या आयगा ?'

'फिर भी........'

'नहीं! नाटक कहने का नहीं होता है, देखने का होता है।'

\+ + +

'फिर क्या हुआ, प्रभु ? एकाग्रता से सुनती हुई अंजना और वसन्ततिलका ने बीच में प्रश्न किया।

शाम हुई। लक्ष्मीवती सन्ध्याकालीन पूजन करने के लिए मन्दिर में प्रविष्ट हुई। सिंहासन पर दृष्टि गिरते ही पेट में बड़ा भारी भय लगा। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई परन्तु परमात्मा की प्रतिमा दिखाई न दी। हाँफती हुई मन्दिर से बाहर आई। वह चिल्लाई 'चोरी....चोरी.....' सामने से ही नीची दृष्टि एवं अनभिज्ञ सा चेहरा लिये सुलेखा आ रही थी। लक्ष्मीवती की चिल्लाहट सुनते ही वह दौड़कर आई।

'क्या हुआ देवि ?' आकृति पर भय की रेखाएँ खींचकर सुलेखा ने पूछा ?

'परमात्मा की प्रतिमा को ही कोई उठा ले गया है,' लक्ष्मी वती की मुखाकृति पर क्रोध और वेदना के भाव अंकित हो गए।

'अरे अरे.......किस पापी को ऐसी कुबुद्धि सूझी ! और कुछ न सूझा जो भगवान की प्रतिमा ही उठा ले गया ?' सुलेखा ने भी अपना कृत्रिम खेद प्रकट किया।

महल की दासियाँ एकत्रित हो गईं। चौकीदार दौड़े आए। सभी 'चोरी कैसे हुई?' इसी सोच और पूछताछ में डूब गए। किसी को कोई निश्चित बात नहीं सूझती थी। लक्ष्मीवती का चित्त खिन्न हो गया। जब तक प्रभु की प्रतिमा न मिले तब तक उसने अन्न जल का त्याग का संकल्प कर दिया। मन्दिर में जाकर परमात्मा के ध्यान में वह बैठ गई।

× × × ×

सुलेखा के साथ संध्या के समय कनकोदरी प्रतिमा को एक टोकरी में छिपाकर नगर के बाहर के उद्यान से पहुँची। किसी को जरा भी गन्ध न आए इस प्रकार दोनों उद्यान के पृष्ठ भाग में चली गईं। सुलेखा को वहाँ बिठाकर कनकोदरी पृष्ठ मार्ग से बाहर निकली और लपक कर थोड़ी दूर पर जहाँ गाँव का कूड़ा जमा करने का स्थान था वहाँ पहुँचीं।

पाँवों से उस गन्दी भूमि में एक ओर खड्डा खोदकर उसने प्रतिमा उसमें छिपा दी। दिल में घबराहट के साथ उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई कि वहीं वह काँप उठी।

अपने पीछे ही उसने एक साध्वीजी महाराज को देखा। उनका नाम था जयश्री।

सौम्य मुखाकृति....करुणा भरे नयन....यौवन पर योगिनी के वस्त्र।

'भद्रे! तूने यह क्या किया?' वात्सल्यपूर्ण शब्दों में साध्वीजी ने कनकोदरी से पूछा। कनकोदरी मौन रही। क्या उत्तर दे? उसका तो अङ्ग अङ्ग सिहर उठा।

परमकृपालु परमात्मा की प्र[illegible] ने मल के

स्थान में छिपाकर कैसा भयानक पापोपार्जन किया है, इस बात को जरा तू सोच । इस जीवन में भी इसके दुष्परिणाम भोगने पड़ेंगे, साथ ही परलोक में तो इसका जो परिणाम निकलेगा वह सहा भी नहीं जा सकेगा ।

कनकोदरी का मुख लज्जा के मारे उतर गया । अंगूठे से वह जमीन को कुरेदने लगी । वह निरुत्तर थी । उसके पास बोलने का साहस न था, शब्द भी न थे । साध्वीजी के शब्दों ने उसकी मलीन वृत्तियों को धो डालीं । उसका हृदय कोमल बन गया । उसे अपनी भूल समझ में आई । तुरन्त उसने उस कूड़े कर्कट वाले स्थान में छिपाई हुई मूर्त्ति निकाल ली और उसे टोकरी में रखकर वह लौट पड़ी । साध्वीजी महाराज को वंदन कर वह उद्यान की ओर मुड़ी ।

सुलेखा भय और उत्सुकता के साथ कनकोदरी की प्रतीक्षा कर रही थी । ज्योंही उसने कनकोदरी को आती देखी, तुरन्त वह वेग के साथ उसके पास गई ।

'क्यों कार्य सफल हुआ ?' सुलेखा ने पूछा । कनकोदरी मौन रही । उसने बिना एक शब्द भी कहे नगर का मार्ग पकड़ा । सुलेखा कुछ भी समझ न सकी । अनेक शंका कुशंकाएँ करती हुई वह कनकोदरी के पीछे पीछे चलने लगी ।

राजमहल में दीपक जगमगा उठे थे । कनकोदरी अपने महल में न जाकर सीधी लक्ष्मीवती के महल में पहुँची । वहाँ तो सभी विह्वल थे । चौकीदार, दासियाँ, राजा....सभी चिंतातुर थे । प्रतिमाजी की प्राप्ति न होने तक लक्ष्मीवती ने खाना पीना त्याग दिया था और मन्दिर में श्री पंचपरमेष्ठि भगवंत के ध्यान में लीन थी ।

कनकोदरी ने मन्दिर में प्रवेश किया। टोकरी में से प्रतिमा जी को निकालकर उसने सिंहासन पर आरूढ़ किया और लक्ष्मीवती की गोद में सिर रखकर विलख विलख कर रोने लगी।

लक्ष्मीवती ने आँखें खोलीं। सिंहासन पर प्रतिमाजी देखीं। गोद में कनकोदरी को अविरल अश्रु धार से रोती देखी।

'वहिन! यह क्या कर रही हो?' लक्ष्मीवती ने अपने दोनों हाथों में कनकोदरी के मुँह को लेते हुए कहा। कनकोदरी बोलने में असमर्थ थी। उसका हृदय पाप के पश्चात्ताप में दारुण रुदन कर रहा था। उसके मुख पर शोक-ग्लानि और खेद की रेखाएँ उभर आई थीं। उसकी आँखों में से अश्रु धारा वह रही थी।

'परन्तु....इतना अधिक दुःख क्यों?' लक्ष्मीवती ने कन-कोदरी को अपने सामने बिठाई और रोती हुई आँखों की ओर एकटक देखती हुई उसने पुनः प्रश्न किया। कुछ क्षण मौन में ही बीत गए।

'मैंने घोर पाप किया है....' कनकोदरी ने सिसकियाँ भरते कहा। लक्ष्मीवती मौन रही।

'प्रतिमाजी का हरण मैंने करवाया था और....'कहते कहते वह जोर से फूट पड़ी।

राजा, अमात्य, दास-दासियाँ सभी जमा हो गए थे। लक्ष्मीवती ने राजा के सिवाय सबको चले जाने का इशारा किया। सभी चले गए। लक्ष्मीवती सारी परिस्थिति समझ गई। उसने बात को यहीं बन्द करते हुए कहा—'वहिन, तुम्हारा दोष नहीं। कर्माधीन जीव ऐसा कभी भी कर बैठता है।'

'मेरी ही गम्भीर भूल है। मुझसे तुम्हारा उत्कर्ष सहन नहीं हुआ। तुम्हारे यहाँ चल रहा ठाट वाट मुझसे सहन नहीं हुआ। मैंने तुम्हें वदनाम करने के प्रयत्नों में कमी नहीं रक्खी ....परन्तु मैं उनमें सफल नहीं हुई और अन्त में मैंने ऐसा हीन प्रयत्न किया।' कनकोदरी ने हृदय खाली कर दिया।

'वहिन, जो भावी था, वह हो गया। अब खेद न कर। छद्मस्थ आत्मा यदि भूल नहीं करेगी तो कौन करेगा? भूल होना गुनाह नहीं है, परन्तु भूल को छिपाना गुनाह है। तुम सरल हो। तुम्हें अपनी भूल समझ में आई, यही तुम्हारी योग्यता है, यही तुम्हारी महानता है।'

'नहीं, मेरी कोई योग्यता नहीं, मेरी कोई महानता नहीं। उपकार है उन साध्वीजी महाराज का। यदि वे मुझे नहीं मिली होतीं, उन्होंने कृपा कर यदि मुझे रोकी न होती, तो मैं इस कुकृत्य में से पीछे नहीं मुड़ती।'

'कौन थी वे साध्वीजी महाराज?' लक्ष्मीवती ने उत्साहपूर्वक पूछा।

'मैंने उनका नाम तो नहीं पूछा था परन्तु अभी भी उनकी सौम्याकृति, करुण भीगे लोचन मेरी आँखों के सामने चित्रित हैं। उनके हितकारी वचन अभी भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं।' मन ही मन कनकोदरी ने साध्वीजी को वंदन किया।

'तब तो हमें उनके पास अवश्य चलना चाहिये। वे इस नगर में ही आई हैं न?'

'हाँ, वे नगर में ही प्रविष्ट हुई हैं।'

कनकोदरी का हृदय मृदु बन गया। आज उसे किसी भव्य जीवन का आरम्भ होता दीखा। लक्ष्मीवती के प्रति उसके

अंतःकरण में सद्भाव जागा। परमात्मा श्री जिनेश्वरदेव के प्रति उसकी आत्मा भक्ति-भीगी हो गई।

रात्रि का प्रारम्भ हो चुका था। महल में सर्वत्र आनन्द की लहर लौट आई थी....परन्तु अभी तक एक आत्मा को चैन नहीं मिली थी।

वह थी सुलेखा।

सुलेखा के चित्त में अनेक प्रकार से उथल पुथल मच रही थी। कनकोदरी के दुष्कृत्यों में स्वयं सहयोगी बनी थी। इसका दुःख उसके हृदय को सता रहा था। उसे यह भी लगा कि कनकोदरी क्षमायाचना द्वारा विशुद्ध बन चुकी थी जब कि वह अभी तक पाप की मलीनता को धो नहीं सकी थी।

वह अपने कक्ष में चक्कर काटती है....पलंग पर लेटती है.... कुछ गाने का प्रयत्न करती है....इस प्रकार अपना पाप भूलने का प्रयत्न करती है, परन्तु जैसे जैसे वह भूलने का प्रयत्न करती है वैसे वैसे पाप के प्रचण्ड शोले उसे अधिक सताते हैं, उसके चित्त में कई विकल्प उठते हैं।

'क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मैं भी लक्ष्मीवती के पास जाऊँ? उससे क्षमा याचना कर आऊँ? पर वह क्या सोचेगी? मैंने श्राविका का वेश सजकर उसे ठगी है....वह मुझे कैसी समझेगी? नहीं, नहीं, पर कनकोदरी ने मेरा वृत्तांत कह तो दिया ही होगा? अब कुछ भी छिपा है नहीं और जब तक मैं पाप को छिपाने का प्रयत्न करूँगी तब तक मेरी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी।'

मध्य रात्रि हो चुकी थी। वह अपने कक्ष से बाहर निकली। दबे पांवों वह लक्ष्मीवती के महल के द्वार पर आई।

'कौन है ?' चौकीदार ने सुलेखा को टोका।

'मैं सुलेखा।' दबी हुई आवाज में सुलेखा ने उत्तर दिया।

'इस समय कहाँ ?'

'महादेवी के महल में जाना है।' निकट आए हुए चौकीदार को सुलेखा ने कहा। चौकीदार सुलेखा को जानता था। लक्ष्मीवती के साथ यदा कदा सुलेखा को प्रभु भक्ति में उसने देखा था और कनकोदरी की यह सखी है, यह भी उसके ध्यान में था। उसने सुलेखा को जाने दिया।

सुलेखा सरसर करती हुई महल की सीढ़ियों पर चढ़ गई। लक्ष्मीवती के शयन कक्ष पर पहुँची और उसने दरवाजे को धीरे धीरे खटखटाया।

शयन कक्ष में लक्ष्मीवती जागती ही थी। आज उसे निद्रा नहीं आ रही थी। कनकोदरी की सरलता और पाप की स्वीकृति ने उसका चित्त हर लिया था। सज्जन आत्माओं की यह विशेषता है। कोई छद्मस्थ आत्मा भूल कर बैठे तो उसकी गाँठ बाँधकर न रक्खे, परन्तु वह आत्मा भूल की स्वीकृति—प्रायश्चित्त करे उस गुण को ही स्मृति में रक्खे। लक्ष्मीवती कनकोदरी के दुष्कृत्य को याद नहीं करती परन्तु उसके गुणों को याद करती हुई सो नहीं पाती। द्वार पर खटखटाहट होते ही उसने द्वार खोला।

'कौन ?'

'मैं सुलेखा ?'

'इस समय।'

'हाँ—' सुलेखा अन्दर प्रविष्ट हुई। लक्ष्मीवती का हाथ

पकड़कर उसे अन्दर ले गई और उसके चरणों से लिपट गई। उसने अविरल अश्रु वर्षा की।

'अरे....पर है क्या ? इतनी अधिक व्यथा कैसी,' सुलेखा की पीठ पर हाथ फेरती हुई लक्ष्मीवती के शब्दों ने तो सुलेखा के रुदन को और बढ़ा दिया।

'अरे, पर अभी कोई सुनेगा तो ?'

'भले ही सुने.......मुझे रो लेने दो माता.......' रोती रोती सुलेखा बोली।

'तुझे क्या दुःख है यह तो कह ?'

'दुःख नहीं, पाप का डंक है।'

'पाप ? कैसा पाप ?'

'चोरी का.......द्रोह का.......परमात्मा की अशातना का।'

'सुलेखा ! इसमें तेरा दोष नहीं था।'

'आप उदार हैं, आपको मेरा दोष नहीं लगता, परन्तु मैंने आपके साथ धोखा किया है.......देवी,' सुलेखा की आँखों में से आँसू बह रहे थे और वह कह रही थी।

'देवी कनकोदरी को मैंने साथ न दिया होता, तो ऐसा कुछ भी नहीं होता।'

'जो होने योग्य होता है उसे कौन मिथ्या कर सकता है, सुलेखा अब शोक न कर। मनुष्य के जीवन में ऐसी भूलें तो होती ही रहती हैं। इन भूलों को दूर करने के लिए ही परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। परमात्मा की शरण स्वीकार करनी चाहिए। मुझे अपने पापों का प्रायश्चित करने दो।'

'प्रायश्चित देने का अधिकार मुझे नहीं है, पगली कल प्रातः

हम सबको एक ज्ञानी साध्वीजी महाराज के पास चलना है। उनके पास प्रायश्चित ले लेना। जा इस समय काफी देर हो चुकी है, जाकर सो जा।'

द्वारपाल ने तीन टंकोर बजाये।

सुलेखा दबे कदमों वहाँ से निकली और अपने स्थान पर आ गई। उसका चित्त उद्विग्न था वह शान्त हो गया परन्तु उसकी नींद तो उड़ ही गई। लक्ष्मीवती की करुण दृष्टि पर पर वह मुग्ध हो गई।

थोड़ी देर लक्ष्मीवती के विषय में, थोड़ी देर कनकोदरी के विषय में, तो थोड़ी देर परमात्मा के विषय में सोचती सोचती उसने रात बिताई।

प्रभात होने पर कनकोदरी सुलेखा के खंड की ओर आई।

'सुलेखा........' द्वार खटखटाया।

'आई........' कहते ही सुलेखा ने द्वार खोला।

'वस्त्र बदल ले। हमें साध्वीजी महाराज के पास जाना है।'

सुलेखा ने तुरन्त वस्त्र पहिने और कनकोदरी के साथ वह लक्ष्मीवतीजी के महल पर पहुँची।

'चलो, मैं भी तैयार ही हूँ, परन्तु हमें थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मैंने द्वारपाल को पता लगाने भेजा है कि साध्वी जी महाराज कहाँ उतरी हैं ?'

इतने में तो महाराज श्री भी तैयार होकर आ गये। थोड़ी देर में द्वारपाल भी आ गया। महाराज श्री को प्रणाम कर उसने कहा :—

'महाराज ! साध्वीजी महाराज विशाल परिवार के साथ

उत्तर दिशा में सुनन्द सार्थवाह की अश्वशाला में विराजमान हैं।'

रथ तैयार थे। एक रथ में महाराजा आरूढ़ हुए और दूसरे रथ में लक्ष्मीवती, कनकोदरी और सुलेखा बैठीं। रथ सुनंद सार्थवाह के महालय की ओर बढ़ने लगा।

कनकपुर में सुनंद सार्थवाह महान् धनाढ्य गिना जाता था। इतना ही नहीं परन्तु उसके उदारता, जनप्रियता और अतिथि सत्कार के गुण भी एक ही आवाज से गाये जाते थे। आर्या जय श्री सपरिवार इस सुनंद सार्थवाह की अश्वशाला में ठहरी हुई थी। सुनंद ने अति सम्मानपूर्वक आर्या जयश्री को ठहरने की अनुमति दी थी। सुनंद को पता चल गया था कि महाराजा सपरिवार उसके यहाँ पधार रहे हैं। अतएव महाराजा का स्वागत करने के लिए वह तैयार होकर ही खड़ा था।

रथ सुनंद के महालय के आंगन में आकर रुके।

'महाराजा की जय हो,' सुनंद ने सोने चाँदी के पुष्पों से महाराजा का स्वागत किया। महाराजा ने भी स्मितपूर्वक सुनंद का सत्कार स्वीकार किया। सुनंद राज परिवार को लेकर अपनी विशाल और भव्य अश्वशाला की ओर चला।

अश्वशाला में से प्रातःकालीन स्वाध्याय की मधुर ध्वनि सुनाई दे रही थी। परिवार के साथ सुनंद ने अश्वशाला में 'निसीहि....' कहकर प्रवेश किया।

सामने ही अनेक आर्याओं के बीच आर्या जयश्री को विराजमान देखीं। सभी ने 'मत्थएण वंदामि' कहकर आर्या को वंदन किया। आर्या जयश्री ने भी 'धर्मलाभ' की शुभाशीष दी।

सभी ने पुनः वंदना कर योग्य स्थान ग्रहण किया।

२५ हनुमानजी का जन्म

दोनों सखियाँ महामुनि के पास अपना पूर्व भव सुनकर स्तब्ध हो गई। चित्त में अनेक विचार उत्पन्न हुए और शांत हुए। इतने में वसन्ततिलका ने हाथ जोड़कर विनम्र भाव से पूछा :

'भगवन् ? मेरी इस सखी के गर्भ में कौनसा जीव है, कृपया कहें ?'

महामुनि ने स्वस्थ होकर कहा—'हे सुशीले ! अंजना के गर्भ में एक उत्तम जीव आया हुआ है। उसके पूर्व भव का वृतान्त वहुत ही वड़ा है, परन्तु यहाँ मैं संक्षिप्त में ही कहूँगा।'

मन्दर नाम का नगर।

प्रियनंदी नामक वहाँ एक वणिक रहता है।

जया नाम की उसकी शीलवती पत्नी।

कालक्रम से जया ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम दमयन्त।

गुण की खान, कला निधान।

एक दिन दमयन्त उद्यान में सैर करने गया। वहां उसने साधुओं को देखा। अध्ययन में लीन और ध्यान में मस्त।

दमयंत ने उनके पास धर्म सुना, समकित ग्रहण किया, नियम लिये।

बस, दमयंत श्रद्धावंत श्रावक बना।

दान देता है।

तपस्या करता है।

शील-पालन करता है।

मृत्यु हुई। दूसरे देवलोक का तेजस्वी देव हुआ।

देवलोक में भी कहाँ स्थाई रहना होता है! वहाँ से उसका च्यवन हुआ।

मृगांक नगर में हरिचन्द्र नामक राजा।

उसको प्रियांगुलक्ष्मी रानी की कोख से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ।

उसका नाम सिंहचन्द्र।

परमात्मा श्री जिनेश्वर भगवन् का धर्म आराधन कर उसने जीवन पूर्ण किया।

मरकर वह देवलोक में गया।

वहाँ से लौटा।

वैताढ्य पर्वत पर 'चारण' नामक नगर में सिंहवाहन नाम का राजपुत्र हुआ।

उस समय तेहरवें तीर्थंकर श्री विमलनाथ का धर्म शासन चलता था।

सिंहवाहन का 'लक्ष्मीधर' नामक महामुनि से मिलन हुआ।

सिंहवाहन को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने चारित्र्य ग्रहण किया। चारित्र्य लेकर उसने तीव्र तपश्चर्या करना शुरू किया। मृत्यु होने पर वह देवलोक में गया।

वहाँ से च्यवन होने पर तेरी सखी की कोख में अवतरित हुआ, महामुनि ने पूर्ण विराम रक्खा।

'प्रभु ! इस पुत्र का भविष्य', अंजना ने पूछा ?

'गुणनिधान, शक्ति का अपूर्व प्रवाह, विद्याधरों का अधिपति····चरम शरीरी,' महामुनि ने चार विशेषतायें बताकर पुत्र का सम्पूर्ण भविष्य बता दिया।

'भगवन् ! अब हमें इस प्रकार कहाँ तक········'

'अब तुम्हारे पूर्व का यह पाप कर्म करीब-करीब समाप्त हो चुका है। अब दुःख के दिन चले गए हैं। अतः परमात्मा श्री जिनेश्वर देव के धर्म को हृदय में स्थापित कर उन्हीं की आराधना में लीन रहो। अंजना के मामा यहाँ आयेंगे और तुम्हें घर ले जायेंगे। फिर अल्पकाल में ही अंजना का इसके पति के साथ मिलन होगा।'

बस, इतना कहकर ये विद्या सम्पन्न महामुनि वहाँ से आकाश मार्ग पर चल दिये। दोनों सखियाँ आकाश की ओर देखती रहीं और मुनि तो बहुत दूर निकल गए।

'वसन्ते ! मरुभूमि में भी भाग्यशाली आत्मा को कल्पवृक्ष की प्राप्ति हो जाती है वह इसी का नाम।' अंजना के हृदय में आनन्द उमड़ गया।

'कैसे करुणा सिंधु समान ये महात्मा थे ! वास्तव में, अपना पूर्वभव सुनकर मैं तो आश्चर्य चकित हो गई। जन्म-जन्मान्तरों तक भटकते जीव ने अज्ञानता में ऐसे तो कई पाप किए होंगे, उनके दारुण परिणाम भी भोगे होंगे ?'

'इसीलिये तो संसार त्याज्य है। जब तक इस संसार की मोहमाया के बन्धन में रहेंगे वहाँ तक पाप होंगे ही और पाप होंगे अर्थात् उनके कटु विपाक भी सहन करने पड़ेंगे,' अंजना का हृदय संसार के स्वरूप को पहचानने लगा।

दोनों सखियाँ वैराग्यरस में मस्त हो रही थीं कि उन्हें सिंह की भयंकर गर्जना सुनाई दी। दोनों काँप उठीं। गुफा के द्वार की ओर दृष्टि की तो एक भीषण सिंह देखा।

पृथ्वी में जिससे दरार हो जाय इस प्रकार वह अपनी पूंछ को पछाड़ रहा था। खून से उसका मुंह लिपटा हुआ था। गर्जना से दिशायें गूंजायमान कर रहा था। लोहे के अंकुश समान तीक्ष्ण उसके नख थे। दोनों ने आँखें बन्द कर दीं। पूर्ण श्रद्धा से श्री नमस्कार महामन्त्र का ध्यान करने लगी……कि इतने में एक नया ही चमत्कार हुआ।

गुफा में एक विकराल 'अष्टापद' प्रकट हुआ। अष्टापद अर्थात् सिंह का भयंकर शत्रु। अष्टापद ने छलांग भरी, सिंह पर टूट पड़ा। क्षण भर में सिंह के प्राण पखेरू उड़ गए।

अष्टापद अंजना की ओर मुड़ा। अंजना तो आँखें बन्द कर नमस्कार महामन्त्र में लीन थी। अष्टापद अंजना के निकट आया, खड़ा रहा, उसके शरीर में परिवर्तन होने लगा। थोड़ी देर में तो अष्टापद के स्थान पर मनोहर आकृति वाला एक देव उपस्थित हो गया। फिर थोड़े क्षण बीते…एक दिव्य देहधारी देवी वहाँ प्रकट हुई।

देव और देवी ने अंजना को हाथ बाँध कर प्रणाम किया।

'आप कौन हैं और क्यों

'मेरा नाम मणिचूल। मैं गन्धर्व देव हूँ और इस गुफा का स्वामी हूँ, देव ने अपना परिचय दिया।

'अपने घर आई हुई महासती पर विपत्ति देखकर मैंने अष्टापद का रूप धारण कर सिंह को समाप्त किया....' अपने प्रकट होने का कारण बताया।

'अब आप निश्चिन्त रहें। इस गुफा में सुख से रहें। मैं आपकी रक्षा करूँगा।'

प्राणों की भी बाजी लगाकर की गई शील की रक्षा! उसके चरणों में देव भी नमस्कार करें, इसमें आश्चर्य कैसा? मणिचूल अवधिज्ञानी देव था। अंजना के सतीत्व के प्रति उसके हृदय में पूर्ण अनुराग पैदा हुआ। अंजना को अपनी गुफा में रहने की अनुमति देकर उसने अंजना के दुःखी हृदय का रंजन करने हेतु एक सुन्दर कार्यक्रम का आयोजन किया।

मणिचूल गन्धर्व देव था। गाने और बजाने में त्रिभुवन प्रसिद्ध। पति-पत्नी ने गीतगान शुरू किया। परमात्मा श्री जिनेश्वर भगवन् की स्तवना शुरू की। न राग में अभाव न ताल में त्रुटि, न गाने में कमी, न वाद्ययन्त्र वादन में न्यूनता।

थोड़ी देर पूर्व के भीषण वातावरण को देव-देवी ने क्षणभर में बदल डाला। सूखी हुई हरियाली खिल उठी। मुरझाए हुए ठूंठ पर पुष्प खिले। जंगल के निर्दोष पशु-पक्षी भी गुफा के द्वार पर जमा हुए। गुफा के पाषाणों में वाणी प्रकट हुई।

अंजना का दिल डोल उठा। देव-देवी की प्रभु स्तवना पर वह प्रसन्न हो गई। दुःख विस्मृत हो गया....सुख उमड़ आया।

अंजना को प्रसन्न वदना देखकर मणिचूल गन्धर्व ने स्तवना पूर्ण की, महासती को पुनः प्रणाम किया और जाने की अनुमति माँगी।

मणिचूल के चले जाने के बाद अंजना ने वसन्ततिलका की ओर देखा। वसन्ततिलका गुफा के द्वार की ओर अनिमेष दृष्टि से देख रही थी। वह किसी गहन विचार में डूबी हुई थी।

'बड़े गहन विचार में खो गई है क्या,' वसन्ता के कन्धे पर हाथ रखकर अंजना ने पूछा?

'ऐसा तो विशेष कुछ नहीं, परन्तु मेरी समझ में कुछ नहीं आता·······'

'क्या?'

'यह सब परिस्थिति।'

'कौन सी परिस्थिति?'

'जबकि देवता तेरे सतीत्व का महान् मूल्यांकन करते हैं तब स्वजन कहलाने वाले लोग सतीत्व का मूल्यांकन तो दूर ऊपर से बदनाम करते हैं!'

'यही तो प्रारब्ध की लीला है न बहिन।'

'फिर क्षण भर में सुख की छाया और क्षण भर में दुःख की तीव्र गर्मी—यह भी विचित्रता समझ से परे है।'

'वसन्ते! इसमें समझ से परे कुछ नहीं है। पल में हम पुण्य कार्य और पल में पापाचरण नहीं करते? इसमें भी पुण्य कार्य की पलें कम, पापाचरण की पलें अधिक। इसका परिणाम यही होता है कि सुख के क्षण कम—दुःख का काल दीर्घ' अंजना ने सुख-दुःख के कारण समझाये। 'फिर तू कैसे भूल रही है?' थोड़ी देर पहिले ही ज्ञानी गुरु महाराज ने अपने पूर्वभव का वृतान्त सुनाया था, क्या वह हमारे चित्त का समाधान करने के लिये पर्याप्त नहीं?' अंजना ने वसन्ता के संशय का निवारण किया।

'अब हमें यहीं रहना है, अतः तदनुसार गुफा को व्यवस्थित कर देनी चाहिए,' वसन्ततिलका ने गुफा में दृष्टि घुमाई। परन्तु उसे कुछ भी व्यवस्थित करने जैसा नहीं लगा। मणिचूल गन्धर्व गुफा को व्यवस्थित करके ही गया था।

'और तो सब कुछ व्यवस्थित है वसंते! एक ही कमी है।'

'क्या?'

'परमात्मा के पूजन के लिए प्रतिमाजी नहीं हैं।'

'ओह! यहां प्रतिमाजी कहाँ से मिलें?' वसंता बोली।

'यदि चिकनी मिट्टी मिल जाए तो हम प्रतिमाजी वना लें।'

'मैं पता लगाती हूँ....' वसंततिलका गुफा से वाहर निकली। सरोवर के तट पर जाकर पता लगाने पर मिट्टी मिल गई। हृदय से सविनय मिट्टी लेकर वह अंजना के पास आई। अंजना शिल्प कला में प्रवीण थी। मिट्टी से उसने सुन्दर सुडौल प्रतिमाजी का सृजन किया। श्री नमस्कार महामन्त्र के ध्यान-पूर्वक प्रतिमाजी उसने उचित स्थान पर स्थापित की।

वस! अब तो वसंततिलका नित्य सरोवर में से खिले हुए कमल ले आती है और दोनों सखियाँ भावपूर्वक परमात्मा का पूजन करती हैं।

कई दिन वीत जाते हैं। अंजना के गर्भ में वृद्धि होती रहती है। एक दिन अंजना ने पुत्र को जन्म दिया। वसंत-तिलका ने प्रसूति कर्म किया। पुत्र को अपनी गोद में लेकर अंजना रो पड़ी। उसका हृदय भर गया। पुत्र की ओर देखकर उसने विलाप करना शुरू किया।

'महात्मा! इस जंगल में मैं तेरा जन्मोत्सव कैसे मनाऊँ?'

मैं पुण्यरहित अभागिनी हूँ', वसंततिलका की आँखें आँसुओं से भर गई। उसका दिल कह रहा था, 'यदि इस पुत्र का जन्म राजमहल में हुआ होता तो आज सम्पूर्ण राज्य हर्ष ध्वनि से गूँज उठता। अंजना का उमंग आकाश को भी भेद देता। परन्तु दुर्भाग्य के फल कितने कटु होते हैं? जिसका भावी महान् है, जिस आत्मा का इस संसार में अन्तिम भव है, उसका जन्म ऐसे निर्जन अरण्य में होता है।

अंजना पुत्र को लेकर गुफा के द्वार पर बैठी थी। आँखों से अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी। अंजना का दुःखी स्वर सुनकर जंगल के निर्दोष पशु पक्षी भी वहाँ एकत्रित हो गए थे—लगता था अंजना के दुःख में वे भी सहानुभूति व्यक्त कर रहे थे।

उधर आकाश मार्ग से एक विमान उड़ा जा रहा था। उसमें बैठे हुए विद्याधर ने नीचे का दृश्य देखा। उसने विमान नीचे उतारा। वेग के साथ वह गुफा के द्वार पर आया।

'बहिन तू कौन है और क्यों रुदन कर रही है?' आगंतुक विद्याधर ने मधुर वाणी से अंजना से पूछा। अनजान व्यक्तियों को गुफा के द्वार पर आए देख कर अंदर काम करती हुई वसंततिलका भी अंजना के पास आकर खड़ी हो गई। विद्याधर के प्रश्नों का उत्तर देने के लिये अंजना तो समर्थ ही कहाँ थी? वसंततिलका ने आगंतुक पुरुषों को घास के बनाए हुए आसन पर बैठने के लिए कहा और अंजना के व्याह से लगाकर पुत्र-जन्म तक का सारा इतिहास गद्गद् कंठ से कह सुनाया।

जैसे जैसे आगंतुक विद्याधर सुनता गया वैसे वैसे उसकी आँखें भीगती गई। मुख पर ग्लानि छाने लगी, श्वासोच्छ्वास

में उष्णता आने लगी और बात पूर्ण हुई कि वह गला फाड़कर रो दिया।

'राजन् ! इस समय तुम्हें रोना नहीं चाहिए, परन्तु दोनो के दुःख दूर करने के उपाय जुटाने चाहियें', विद्याधर के साथ आए हुए दूसरे विद्याधर निमित्तज्ञ ने कहा।

'हे पुत्रियो ! मैं हनुपुर नगर का राजा हूँ। मेरी माता का नाम सुंदरीमाला और पिता का नाम चित्रभानु है। हे अंजना ! तेरी माता का मैं सगा भाई हूँ। मेरा नाम है मानसवेग।'

'हें !' दोनों सखियाँ आश्चर्य से राजा को देखने लगीं। हाँ, तुझे जीवित देखकर मेरी आत्मा को शांति मिली है।' मानसवेग ने कहा। अंजना को पता चला कि ये मेरे मामा हैं तब तो उसका रुदन और भी अधिक बढ़ गया। सिसकियाँ भर भरकर वह रोने लगी। स्वजन को देखकर प्रायः विस्मृत दुःख पुनः ताजा हो गया।

मानसवेग ने अंजना को आश्वासन दिया।

'पुत्री, अब रोने की आवश्यकता नहीं है। तेरे दुःख के दिन बीत गए हैं।'

कर्मों के घनघोर बादल कब बिखर जायें, यह कहना अज्ञानी मनुष्यों के लिए अशक्य है। किसे पता था कि ऐसे अरण्य में अंजना के मामा का मिलन होगा ? किसे अनुमान था कि अब अरण्यावास का अन्त आएगा ?

मानसवेग विद्याधर राजा ने अपने साथ आए हुए निमित्तज्ञ से पूछा—'हे दैवज्ञ ! इस नवजात पुत्र का भविष्य कैसा है, कृपया कहें ?'

निमित्तज्ञ ने अंजना के पुत्र का भविष्य कहना शुरू किया। 'महाराज ! क्या कहूं ? हम यहां आए तभी से मैं तो इस बालक के भविष्य के विषय में ही सोच रहा हूं और मैंने इसकी जन्म कुंडली भी बना दी है।

इस बालक का जन्म चैत्र कृष्णा अष्टमी को हुआ है। श्रवण नक्षत्र है। दिन का स्वामी सूर्य है। मेष राशि में उच्च स्थान पर सूर्य का भवन है। मकर में चन्द्र रहा हुआ है। वृक्ष के मध्य मंगल का स्थान है। मीन राशि में शशि पुत्र है, कर्क राशि के मध्य बृहस्पति उच्च भवन में स्थित है। मीन राशि में शनि और दैत्यों का गुरु श्रेष्ठ स्थान पर विद्यमान हैं। राजन् ! मीन लग्न का उदय है और ब्रह्म योग है। इसका फलादेश यही है कि इस बालक का सब कुछ शुभ है, कल्याणकारी है।'

'पुरोहितजी ! यह सब तो ठीक, परन्तु क्या आप कोई निश्चित् बात कह सकते हैं ?'

'जी हां। यह शिशु युवावस्था में प्रविष्ठ होते ही राजा होगा, परन्तु राज्य पर इसे ममत्व नहीं होगा। यह इसका अन्तिम भव है। यहां से यह सीधा सिद्धगति प्राप्त करने वाला होगा।' दैवज्ञ ने शिशु के भावी जीवन पर प्रकाश डाला।

अंजना तो यह सब सुनकर प्रसन्न हो गई। उत्संग में क्रीड़ा करते हुए बालक को देखती है और निनिमेष प्रेम का अनुभव करती है।

'अंजना ! चलो अब तुम दोनों पुत्र को लेकर विमान में बैठ जाओ।' मानसवेग खड़ा हुआ और गुफा को देखने के लिए अन्दर प्रविष्ट हुआ। वहां उसने एक कोने में श्री जिनेश्वर भगवान की मूर्ति देखी।

'यहाँ यह मूर्ति तुम कहाँ से लाई ?' पीछे चलती हुई वसंता से राजा ने पूछा।

'यह प्रतिमा तो अंजना ने बनाई है। हम दोनों नित्य त्रिकाल परमात्मा की पूजा करती हैं।' वसंता ने उत्तर दिया।

'मामाजी ! इन परमकृपालु परमात्मा के ही अनन्य प्रभाव से आज आप यहाँ आ पहुँचे हैं और हमारे अरण्यवास का अंत आ चुका है। वास्तव में जिनेश्वर भगवान की कृपा की थाह पाना असम्भव है।'

अंजना के हृदय में गूँज रही परमात्म-भक्ति की सरिता वाहर प्रवाहित हो चली। मानसवेग अंजना के भक्त हृदय पर प्रसन्न हो गया।

'हमें ये प्रतिमाजी साथ लेनी हैं।' अंजना ने वसंततिलका को सूचना दी। वसंततिलका ने अतिमानपूर्वक प्रतिमाजी दोनों हाथों में लेकर विमान में विराजमान किये। फिर अंजना पुत्र को लेकर विमान में प्रविष्ट हुई। उसके पीछे वसंततिलका ने विमान में अपने कदम रक्खे। मानसवेग ने विमान में जहाँ अंजना बैठी थी उसके ऊपर के भाग में रत्न घँटिकाएँ लटकाईं। अंजना का पुत्र तो घँटिकाओं की झनकार सुनकर नाच उठा। उनके नेत्र घँटिकाओं पर केन्द्रित हो गए। दोनों हाथ उन्हें लेने के लिए ऊँचे उठे।

विमान आकाश में ऊँचा उठा। हनुपुर नगर की ओर त्वरित गति से उड़ने लगा। अंजना की दृष्टि पृथ्वी पर की रमणीयता देखने में लीन थीं, दूसरी ओर अंजना पुत्र उन घँटिकाओं में लीन था और उन्हें पकड़ने के लिए उछल रहा था।

अंजना पुत्र यकायक अंजना की गोद में से उछला। अभी यह घँटिका को पकड़े इसके पूर्व ही विमान आगे बढ़ गया और अंजना पुत्र पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इतने वेग से यह सब हुआ कि अंजना या वसंततिलका को पता तक न चला। परन्तु दूसरे ही क्षण अंजना ने हृदयविदारक चीत्कार की। दोनों हाथों से वह छाती पीटने लगी।

'मामाजी !, पुत्र तो गिर पड़ा।' अंजना ने मानसवेग का ध्यान आकर्षित किया। मानसवेग ने विमान रोक दिया। अंजना को आश्वासन देकर स्वयं नीचे आया। अंजना पुत्र जहाँ गिरा था वहाँ तो एक महान् चमत्कार घटित हुआ था।

पुत्र एक पर्वत पर गिरा था परन्तु इन्द्र के वज्र से जिस प्रकार पर्वत भिद जाता है वैसे ही इस पुत्र की पछाड़ से पर्वत चूर चूर हो चुका था और पुत्र तो सकुशल एक ओर वनस्पति पर पड़ा हुआ था। मानसवेग तो आँखें फाड़कर देखता ही रहा। अंजना के सपूत के पराक्रम ने उसे दिङ्मूढ़ कर दिया। राजा ने पुत्र को आलिंगन देकर तुरन्त उठा लिया। पुत्र तो खिल खिलाकर हँस रहा था।

अंजना ने तो ऐसा रुदन प्रारम्भ किया कि सभी काँप उठे। ज्योंहीं मामाजी पुत्र को सकुशल लेकर लौटे कि अंजना उछलकर खड़ी हो गई और मामाजी के हाथों से पुत्र को लेकर गले लगा दिया।

'मेरे पुत्र को कहीं चोट तो........' सिसकी भरती अंजना पुत्र को देखती है।

'अरे ! तेरे पुत्र को तो कहीं भी चोट नहीं आई पर इसने

तो चोट अवश्य पहुँचाई है।' मामाजी ने पुत्र के पराक्रम का उल्लेख किया। अंजना हर्ष से पुलकित हो गई।

विमान हनुपुर नगर में जा पहुँचा। परिजनों ने मंत्री वर्ग तथा राजा का स्वागत किया। सभी अंजना और वसन्ततिलका की ओर देखने लगे। राजा ने दोनों का परिचय दिया। मिलकर सबको प्रसन्नता हुई।

इतने में अंत:पुर से महारानी आई। मानसवेग ने अंजना का परिचय दिया और उसके पुत्र का जन्म महोत्सव मनाने की तैयारियाँ शुरू की।

दूसरी ओर अंत:पुर में अंजना और उसके पुत्र का बहुत २ सम्मान होने लगा। अंजना और वसन्ततिलका ने अंत:पुर का प्रेम सम्पादित कर लिया। पुत्र तो अंजना के हाथ ही नहीं आता। जो देखता है, वही गोद में उठाता है और खिलाता है।

सारे अंत:पुर में अंजनापुत्र का जन्म महोत्सव मनाया गया। ऐसा करते करते पुत्र का नामकरण करने का दिन आया। मामाजी अंजना के पास आये।

'अंजना! पुत्र का क्या नाम रक्खें,' मामाजी ने अंजना से प्रश्न किया।

'आपने ढूँढ निकाला होगा न।'

'मैंने ढूँढ निकाला है,' वसन्ता ने बीच में उत्तर दिया।

'तू ही कह दे। कौन सा नाम चुना है?' मानसवेग ने पूछा?

'कह दूँ? वसन्ता ने अंजना की ओर देखा।

'कह दे।' अंजना ने हँस कर कहा।

'नयनानंद।'

'नाम तो अच्छा ढूँढ निकाला है,' मामा ने कहा।

'तो फिर।'

'पर मेरा विचार जरा भिन्न है,' मामाजी बोले।

'क्या?' अंजना ने पूछा।

'यह बालक चरमशरीरी है। यह शीघ्र से देर से कभी भी संसार का त्याग कर चारित्र्य लेगा। उस समय यह हमें भूल न जाए इसलिए इसका नाम ऐसा रक्खें कि इस नगर को कभी न भुलाया जा सके।'

'विचार तो सुन्दर है,' अंजना बोली।

'पर वसन्ता का मन भी तो मानना चाहिए न,' मामाजी वसन्ततिलका की ओर देखकर हँसे।

'नहीं नहीं, मुझे भी आपका विचार पसन्द है। आप कहिए,' वसन्ता ने अपनी सहमति प्रकट की।

'नगर का नाम हनुपुर है। पुत्र का नाम 'हनुमान' रक्खें।'

'नाम उत्तम है,' अंजना ने स्वीकार किया।

'राजा ने अंजना पुत्र का नाम हनुमान रक्खा, परन्तु इतने में पुरोहितजी आ पहुँचे। उनका और ही मन था।

'महाराजा! यह तो आपने ऐसा नाम रक्खा कि यह हमें न भूल सके, परन्तु दूसरा नाम ऐसा रखना चाहिए कि हम इसे न भूलें।

'सच्ची बात.......सच्ची बात.......दूसरा नाम ऐसा ही रक्खो,' वसन्ता बोल उठी। महाराजा भी हँस दिये। महारानी भी हँस दी। महारानी पुरोहित जी के मंतव्य से सहमत हुई।

'दो तब दूसरा नाम, पुरोहितजी' वसन्ता बोली।

'श्री शैल।' पुरोहितजी ने दूसरा नाम रक्खा।

'सुन्दर नाम !' वसन्ता तो हनुमान को लेकर नाचने लगी।

सारे नगर में मिठाई बांटी गई। सबके मुख से 'हनुमान....' 'श्री शैल' नामोच्चारण होने लगा। दिन प्रतिदिन बीतते चले। अंजना सुन्दरी सकुशल जीवन यापन करने लगी। वसन्ततिलका और अंतःपुर की अन्य रानियों के साथ उसने आत्म कल्याण की कथाएँ करना आरम्भ किया।

अब जैसे जैसे उसके दिन बीतते गए वैसे वैसे उसे पवनंजय की याद अधिक सताने लगी। पुत्र को देखती है कि पवनंजय की याद आती है।



१२ पवनंजय लौटता है

'अंजना ! एक बात पूछूं ?'

'पूछ।'

'यहाँ मामाजी के घर आने के बाद सब बातों का सुख है, मामाजी दिल से हमारा ध्यान रखते हैं, सब कुछ है, फिर भी·······?'

'क्या अभाव है ?'

'अभाव और तो कुछ भी नहीं, पर तेरा मन अभी तक प्रफुल्लित नहीं दीखता। तू हँसती है, पर तेरी आँखों में गहरी वेदना प्रतिबिम्बित होती है।' वसन्ततिलका ने एक दिन अंजना से पूछा। मामा के घर आने के बाद अंजना का दुःख काफी घट गया था। मामा की पुत्रियाँ और परिवार के साथ अंजना का हृदय हिलमिल गया था। उसमें भी छोटा सा हनुमान तो अंजना के विषाद को चूर ही डालता था, फिर भी जब अंजना अकेली होती थी तब वह गहरी चिंता में डूब जाती थी। कभी कभी तो उसकी आँखें अश्रु भीगी भी हो जाती थीं। अचानक वहाँ वसन्ततिलका पहुँच जाती और अंजना की व्यथा को देख लेती। यद्यपि अंजना अपनी व्यथा छिपाने का प्रयत्न करती थी परन्तु नित्य सहचारिणी वसन्ता से कोई चीज छिप

ही कैसे सकती थी ? अतः एक दिन अंजना के पास कोई न था, हनुमान को मामियाँ ले गई थीं और अंजना अकेली वैठी थी तव वसन्ता ने उससे प्रश्न किया। अंजना ने हँस कर कहा–

'वसन्ते ! अब वेदना कैसी ? यहाँ किस बात का दुःख है ?'

'यह मुझे न पूछ। तू ही कह दे।'

'कह दूँ।'

'मुझे कहने में इतना संकोच ?'

'संकोच नहीं, पर व्यर्थ विस्मृत दुःख को याद कर तुझे भी दुःखी क्यों करूँ ? इसी लिये कहने में संकोच होता है। वाकी मेरी प्राणप्रिया सखी से मुझे कुछ भी नहीं छिपाना।'

'तव अंजना ! सुन। मैं तो तेरे सुख में सुखी हूँ। तेरा मन विषादमय होता है तव मेरा मन प्रसन्न कैसे रह सकता है ?'

'और तो कोई दुःख नहीं है। दुःख तो है केवल एक वात का कि सास द्वारा आरोपित कलंक कब हटेगा ? जव तक कलंक-मुक्त न वन सकूँ तव तक चित्त की प्रसन्नता कहाँ से हो सकती है ?'

'अव यह चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञानी गुरू महाराज ने कहा है वह तू भूल गई क्या ? दुःख के दिन अव अधिक नहीं और जहाँ पवनंजय नगर में लौटे नहीं कि कलंक मिटा नहीं।'

'तेरी वात सच्ची है, मुझे लगता है कि वे लौट आए होंगे।'

'तव तो केतुमती की वन आई।' वसन्ता ने भावी की कल्पना की।

'परन्तु....'

'परन्तु क्या'

'उनकी स्थिति कैसी होगी ? वे हमें ढूँढने....' अंजना की आंखें सुदूर क्षितीज की ओर जम गईं। रक्तवर्ण सूर्य अस्ताचल में विलीन हो गया।

× × ×

अंजना को अपनी नामांकित मुद्रिका देकर पवनंजय प्रहसित के साथ मानसरोवर के तट पर शिविर में आ पहुँचा। प्रभात हो चुका था। सेना को प्रयाण का आदेश दिया। आकाशमार्ग से ससैन्य पवनंजय लंका के जंगल में उतरा।

सेना को वहीं छावनी डालने का कहकर पवनंजय प्रहसित को लेकर लंकापति की सभा में पहुँचा। लंकापति को प्रणाम कर खड़ा रहा। रावण ने पवनंजय को गले लगा लिया और प्रेमपूर्वक अपने पास विठाया।

'पवनंजय! तूने जान लिया होगा कि पाताल लंका में वरुण ने दुष्टता की हद कर दी है। अपने पराक्रमी सेनापति खर और दूषण को उसने पकड़कर जेल में डाल रक्खे हैं।'

'जी हाँ। दूत द्वारा वरुण के साथ युद्ध के समाचार मिले थे।'

'तो अब हमें एक क्षण भी विलंब किये विना यहाँ से प्रयाण करना चाहिए। अब तो मैं स्वयं ही इस वरुण और उसके अभिमानी पुत्रों की खबर लूँगा।'

रावण ने पाताल लंका की ओर पवनंजय के साथ विराट सेना लेकर प्रयाण किया।

दूसरी ओर पवनंजय ने सोचा कि यदि रावण युद्ध में उतरेगा तो मानवजाति पर क्रूर काल टूट पड़ेगा। रक्त की नदियाँ बहेंगी। अतः रावण को तो युद्ध में उतरने ही नहीं दिया जाय। परन्तु यह तभी शक्य हो सकता है जब कि वरुण समझ जाए; पर वरुण को समझाएँ कैसे? खर और दूषण जैसे पराक्रमी सेनानियों को जीवित पकड़कर जेल के सींखचों में बन्द करने वाले वरुण और उसके पुत्रों को समझाना अति दुष्कर है।'

पवनंजय ने बहुत सोचा। उसकी कुशाग्र बुद्धि ने उपाय ढूँढना शुरू किया। रावण के मन को संतोष हो और वरुण का मान भी रह जाए, ऐसा मार्ग पवनंजय ने ढूँढ निकाला।

इस ओर रावण ने युद्ध की व्यूह रचना करदी थी। सेनापति के रूप में उसने पवनंजय का चयन किया था, अतः पवनंजय को बुलाकर प्रथम दिन के युद्ध की व्यूह रचना उसे समझा दी।

'व्यूह रचना बड़ी ही सुन्दर है,' पवनंजय ने रावण की प्रशंसा की। रावण मुस्करा दिया। पवनंजय की पीठ पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—'व्यूह रचना की सफलता सेनापति पर निर्भर है।'

'इस बात का विश्वास तो आपको कल ही होगा।'

'शाबाश! एक वीर के योग्य ही तेरे शब्द हैं, मुझे तुझ में पूर्ण श्रद्धा है। तू यश का भागी बनेगा।'

'पर····मैं कुछ और ही सोचता हूँ।'

'क्या?'

'जीवसंहार भी न हो और कार्यसिद्धि भी हो जाए।'

'वह कैसे ?'

'वरुण को मूर्ख बनाकर कार्य सिद्धि करना।

'बात समझ में नहीं आई।'

'खर दूषण को एक बार मुक्त कर अपने पास ले लेना, फिर अन्य बात।'

'परन्तु यों सीधे हाथ खर-दूषण को हमें सौंप दे ऐसा नादान तो नहीं है वरुण।'

'बस, उसे नादान बनाने का कार्य मेरा।'

'तो क्या, हमें भीख माँगनी ?'

'हर्गिज नहीं। हमें तनिक भी सिर झुकाना नहीं और खर-दूषण को वह हमें लौटा दे, इस प्रकार हो तो ?

'अशक्य।'

'मुझे आज रात प्रयत्न कर लेने दो।'

'ठीक है तो।'

रावण ने पवनंजय की बात एक मजाक समझी। पवनंजय को अपने प्रयत्न की सफलता लगी। वह रावण को प्रणाम कर अपने शिविर में आया। शिविर में प्रहसित चक्कर काट रहा था। पवनंजय आकर प्रहसित को अपने व्यक्तिगत मन्त्रणालय में ले गया।

'तुझे अभी नगर में जाना है।'

'तैयार।'

'जाकर तुझे सीधा वरुण से मिलना है और मेरा व्यक्तिगत सन्देश देना है।'

'क्या ?'

'कहना यह है कि एक मित्र के रूप में प्रह्लाद पुत्र पवनंजय आपको तत्काल मिलना चाहता है ।'

'फिर ?'

उत्तर लेकर तुरन्त लौट आना ।'

प्रहसित तैयार हो गया। उसने राजदूत का वेष धारण किया और आकाश मार्ग से उसने वरुण की नगरी में प्रवेश किया। नगर में युद्ध की जोर-शोर से तैयारियाँ होती उसने देखीं। एक-एक स्त्री-पुरुष को उसने सैनिक के उत्साह में देखा। एक के वाद एक राजमार्ग पर प्रयाण करता हुआ वह वरुण के राजमहालय के सामने आ पहुँचा। परन्तु वहाँ तो एक चींटी के लिये भी प्रवेश कठिन था। महालय का विशाल पटाँगन सैनिकों से भर गया था। महालय के द्वार पर यमदूत के समान सैनिक शस्त्र सज्ज वन कर पहरा लगा रहे थे। महालय की अटारी में वरुण के पुत्र पुंडरिक और राजीव उत्साहवर्धक वाणी में सैनिकों को प्रोत्साहित कर रहे थे।

'प्यारे नरवीरो ! आज हमारी स्वतन्त्रता को छीनने के लिये राक्षस अपना द्वार खटखटा रहा है। आज अपना पुरुषत्व कसौटी पर है, परन्तु चिन्ता का कोई कारण नहीं, क्योंकि धर्म अपने पक्ष में है। अन्यायी रावण प्रदेश लालसा से और सत्ता लोलुपता से हम पर चढ़ आया है, परन्तु जैसे हाल-वेहाल आप लोगों ने खर-दूषण के किये वैसे ही हाल-वेहाल रावण के भी करके ही चैन लेनी है। इस अधम राक्षस को यह वता दो कि वरुणपुरी का एक-एक नागरिक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा का इच्छुक है, वरुण राज को चाहता है।'

सैनिकों ने गगनभेदी गर्जना की 'वरुणराज की जय हो।'

प्रहसित सैनिकों के असीम शौर्य को देखकर दिङ्मूढ़ हो गया। उसने द्वारपाल से कहा, 'मित्र ! मैं लंकापति के सेनापति पवनंजय का दूत हूँ। मुझे तत्काल वरुणराज से मिलना है।'

द्वारपाल क्षण भर प्रहसित को देखता रहा। उसे विश्वास हुआ कि यह कोई कृत्रिम नहीं परन्तु दूत ही लगता है। उसने एक सैनिक को इशारा किया और स्वयं चला गया। वह सैनिक प्रहसित के पीछे आकर खड़ा हो गया, प्रहसित को वह पैनी दृष्टि से देखने लगा।

द्वारपाल गुप्त मार्ग से वरुणराज के आवास में जा पहुँचा।

'महाराजा की जय हो' द्वारपाल ने नमन किया।

'क्यों, जयमंगल ?'

'महाराजा, लंकापति के सेनापति पवनंजय का व्यक्तिगत दूत आपसे तत्काल मिलना चाहता है। जयमंगल ने वरुणराज के मुख पर देखा। वरुणराज ने कुछ देर सोचकर कहा, 'ठीक है, उसे ले आ।'

द्वारपाल द्रुतगति से चला गया। प्रहसित को लेकर पुनः वह वरुणराज के पास आया। प्रहसित को वहाँ पहुँचाकर वह पुनः अपने कार्य पर चला गया।

'अचानक कैसे आना हुआ ?' वरुणराज ने पूछा।

'महाराज ! आप जानते ही होंगे कि लंकापति ने प्रह्लाद-नंदन पवनंजय को अपना सेनाध्यक्ष बनाया है।'

'हाँ, समाचार मिले हैं।'

'उनका मैं निजी मित्र हूँ। मेरा नाम है प्रहसित। मुझे उन्होंने एक सन्देश देकर आपके पास भेजा है।'

'क्या है सन्देश ?'

'वे आपसे तत्काल मिलना चाहते हैं।'

वरुणराज चौंक उठे। ऐसे भयानक युद्ध के समय रावण का महान् सेनापति शत्रु राजा से मिलना चाहता है, इसमें उसे कुछ रहस्य लगा। उन्होंने पुंडरिक और राजीव को बुलवाया। उनके साथ मंत्रणा की और प्रहसित को उत्तर दिया 'भले सेनापति पवनंजय आएँ।'

प्रहसित आकाश मार्ग होकर वहाँ से अपनी छावनी में पहुँच गया। पवनंजय के शिविर में जाकर समाचार दिए। पवनंजय को हर्ष हुआ।

प्रहसित को साथ लेकर पवनंजय वरुणपुरी में पहुँचा। वरुणराज पुंडरिक और राजीव के साथ मंत्रणा करते हुए पवनंजय की प्रतीक्षा में बैठे थे। इतने में द्वारपाल ने आकर पवनंजय के आगमन के समाचार दिये। पुंडरिक और राजीव सामने गए। पवनंजय का उन्होंने स्वागत किया। पवनंजय का मोहक व्यक्तित्व देखकर दोनों भाई प्रभावित हो गए।

पवनंजय को लेकर दोनों भाई वरुणराज के खंड में प्रविष्ट हुए। वरुणराज ने मुस्कराहट के साथ पवनंजय का स्वागत किया, पवनंज़य ने भी उचित प्रत्युत्तर दिया और वरुणराज के सम्मुख आसन ग्रहण किया।

कुछ देर तक मौन छाया रहा।

'कहिये सेनापतिजी ! इस समय आने का कष्ट कैसे करना पड़ा ?' वरुणराज ने हँसकर वात का श्रीगणेश किया।

'लाखों जीवों की हत्या को रोकने के लिये,' पवनंजय ने स्मितपूर्वक कहा।

'तब तो इतने विराट सैन्य के साथ आने की आवश्यकता ही नहीं थी। फिर हत्याकांड स्वतः ही रुक जाता....'

'आप जानते हैं कि लंकापति वैर का बदला लिये बिना चैन लेने वाले नहीं। उनका स्वभाव ही ऐसा है। खर और दूषण को बन्दी बनाकर लंकापति के क्रोध को विशेषतः प्रज्ज्वलित किया गया है।'

'भले ही प्रज्ज्वलित हो। हम तो युद्धभूमि पर शांत करने के लिए तैयार ही हैं।'

'तो क्या आप मानते हैं कि लंकापति को आप पराजित कर सकेंगे? लंकापति के एक-एक बांधव को पराजित करने के लिए भारी शौर्य की आवश्यकता है। लंकापति के साथ आए हुए एक-एक विद्याधर राजा को परास्त करने के लिए रक्त की गंगा सिंधु बहानी पड़ेगी और स्वयं लंकापति को पराजित करने के लिए तो.......'

'तो क्या समझते हैं हम सब चूड़ियां पहिन कर बैठे हैं, सेनापतिजी?' पुंडरिक आगबबूला हो गया।

'नहीं। तनिक नहीं। आप लोग भी वीर हैं, शौर्यवान् हैं, पर ऐसे युद्धों में आप जैसे रत्नों का बलि पर चढ़ना? आप जैसे पराक्रमी-जनों का उपयोग मानव-जाति के संहार में करना? मैं इसीलिए यहां आया हूं? कोई भी उचित मार्ग ढूंढकर इस युद्ध को रोक देना चाहिए।'

'उचित मार्ग यही है कि लंकापति ससैन्य लौट जाएं।' पुंडरिक बोल उठा।

'यह मार्ग सम्भवतः उचित हो पर शक्य नहीं है।'

'तो क्या आप हमें शरणागत बनाने आए हैं ?' पुंडरिक ने पूछा।

'नहीं, आप जैसे पराक्रमी शरण स्वीकार न करेंगे यह मैं भली प्रकार समझता हूँ।'

'तो फिर ?'

'मित्र बन सकते हैं।' पवनंजय ने समाधान की भूमिका प्रस्तुत की।

'पर जहाँ लंकापति स्वयं को ही मित्र न बनना हो तो क्या हो ?'

'इस समय यह भी शक्यता है। मैं इसे निपटा लूँगा।'

'तब तो आप लंकापति की सहमति लेकर ही आए हैं।' वरुणराज ने पवनंजय के पेट की थाह लेने के लिए 'मीटर' रक्खा।

'ऐसी बात मानने की भूल वरुणराज न करें। यदि लंकापति को इस प्रकार गम खाना होता तब तो लंका से ही किसी दूत को भेजकर काम पटा देते। फिर तो इतनी समुद्र जितनी सेना लेकर स्वयं नहीं आते। यह तो भावी युद्ध के भीषण मानवसंहार से मेरा हृदय काँप उठा और ख्याल आया कि यदि किसी मध्यम् मार्ग से समाधान हो जाए, तो प्रयत्न करूँ। इस आशय से ही रात के इस समय मैं यहाँ आया हूँ।'

'सेनापतिजी ! आपके आशय के साथ मैं भी सहमत होता हूँ। जीवों का संहार मुझे भी इष्ट नहीं, परन्तु राष्ट्र के स्वातंत्र्य के रक्षार्थ कभी कभी हिंसक मार्ग भी अपनाना पड़ता है।' वरुणराज ने अपनी नीति स्पष्ट की।

'आपकी स्वतन्त्रता अखण्डित रहे और शांति भी स्थापित हो जाए, ऐसा मार्ग भी मुझे दीखता है।' पवनंजय ने कहा।

'तो वह मार्ग बताओ।'

'खर और दूषण को लौटाना। एक मित्र के रूप में लंकापति को मिलना और लंकापति के एक पराक्रमी सहयोगी राष्ट्र का स्थान प्राप्त करना।'

वरुणराज ने पुंडरिक-राजीव की ओर देखा। दोनों भाई भी पवनंजय के निवेदन पर सोचने लगे। निवेदन में उन्हें स्वमानहानि जैसा उन्हें कुछ भी नहीं लगा। युद्ध के भयानक संहार में से जीवों के बच निकलने का मार्ग दीखा। साथ ही पवनंजय का हृदय भी उन्हें साफ लगा।

'किसी भी भाँति की शंका न रक्खें। आपके साथ यह कोई षडयंत्र नहीं हो रहा है, परन्तु जीवों के जीवन के साथ मृत्यु के खिलवाड़ का अन्त लाने का यह उपाय है।' पवनंजय ने विचार मग्न वरुणराज को स्पष्टीकरण दिया। पुंडरिक और राजीव ने सहमति प्रकट की। वरुणराज ने भी पवनंजय के प्रस्ताव को मान्यता दी।

'महाराजा! मुझे बड़ा ही हर्ष हुआ। आपकी शुद्ध हृदयता और गहरी सूझ के प्रति बड़ा आदर प्रकट हुआ।

'परन्तु सेनापतिजी! एक बात का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए', राजीव ने कहा।

'क्या?'

'लंकापति से हम उनकी छावनी में मिलने आने में असमर्थ हैं।'

'देखिए ! आपको न तो लंकापति की छावनी में आना है और न लंकापति को यहाँ आना है। नगर के पूर्व की ओर के उद्यान में दोनों का मिलन आयोजित हो।'

'बिल्कुल ठीक !' राजीव सहमत हुआ।

'तो फिर, अब मुझे अवकाश दें। अब मुझे लंकापति से मिलना होगा। फिर प्रहसित के साथ आपको शुभ संदेश भेजूँ।'

वरुणराज ने पवनंजय को जाने की अनुमति दी। पवनंजय तीनों के सामने मधुर मुस्कान कर खड़ा हुआ और प्रहसित के साथ आकाश मार्ग होकर लंकापति की छावनी में पहुँचा।

प्रहसित को अपने शिविर में भेजकर पवनंजय लंकापति के शिविर की ओर मुड़ा। मध्य रात्रि हो चुकी थी, फिर भी छावनी में कोई भी निद्राधीन नहीं हुआ था। प्रत्येक सैनिक अपनी अपनी तैयारी में व्यस्त था।

पवनंजय ने लंकापति के शिविर पर पहुँच कर द्वार रक्षक को इशारे से दूर कर शिविर में प्रवेश किया। शिविर में रावण और विभीषण कोई बात कर रहे थे। पवनंजय ने जाकर प्रणाम किया।

'क्यो इस समय कुछ........' रावण ने पवनंजय को बैठने का संकेत कर प्रश्न किया ?

'महाराजा ! कार्य सिद्ध हो चुका है।'

'कैसे ?'

'खर और दूषण हमें सम्मानपूर्वक पुनः प्राप्त हो जाएँगे।'

'असम्भव। अभिमानी वरुण इस प्रकार सहज में ही सौंपे ऐसी वात मेरे मानने में नहीं आती।'

'पर अब तो मानने का समय आ चुका है। हम कल प्रातः काल पूर्व दिशा के उद्यान में चलें। वहाँ वरुणराज खर और दूषण को हमें सौंपेंगे और आपके अनेक पराक्रमी मित्र राजाओं में एक की वृद्धि होगी। वरुणराज आपके मित्र बनेंगे।

रावण के दिल में वैसे भी पवनंजय के प्रति प्रेम था। पवनंजय की बात को वह नकार नहीं सका। जिस प्रकार खर दूषण को मित्र राजाओं के रूप में मान दिया था उसी प्रकार वरुणराज को भी मित्र राजा के रूप में स्वीकार करने की बात उनके गले उतरी। विभीषण को भी बात पसन्द आई।

'जा तो कुंभकरण को बुला ला।' रावण ने कुंभकरण को बुला लाने के लिए विभीषण से कहा। विभीषण कुंभ-करण को बुला लाया। पवनंजय ने सारी बात कुंभकर्ण को कह सुनाई। कुंभकर्ण को भी योजना जँची।

पवनंजय युद्धविराम की अनुमति लेकर तुरन्त अपने शिविर में लौटा। प्रहसित को कई निर्देश देकर वरुणराज की ओर रवाना किया और छावनी में युद्ध विराम की पताका फहरा दी।

अचानक दोनों पक्षों में युद्ध विराम के ध्वज लहराते देख कर सबको आश्चर्य हुआ। प्रातःकाल लंकापति कुंभकर्ण, विभीषण, पवनंजय आदि को लेकर पूर्व दिशा के उद्यान में पहुँचे। दूसरी ओर प्रहसित वरुणराज को उनके पुत्रों एवं खर दूषण के साथ लेकर उद्यान में आ पहुँचा।

दोनों राजा मिले। वरुणराज ने खर और दूषण रावण को सौंप दिये। दोनों राजाओं के बीच मित्रता की स्थापना हुई।

+ + +

रावण पवनंजय पर बड़ा प्रसन्न हुआ। अपने साथ लंका आने के लिए उसने पवनंजय को सहमत करने के प्रयत्न किए परन्तु पवनंजय की इच्छा तत्काल घर लौटने की थी। उसने रावण से अनुमति माँगी। रावण ने अनेक भेंट देकर उसे विदा किया।

अपनी सेना के साथ पवनंजय आकाश मार्ग होकर नगर की ओर लौटा। मानसरोवर के तट पर होकर ज्योंही वह निकला कि अंजना की स्मृति हरी भरी हो गई। महिनों पूर्व की वह रात उसके सामने प्रत्यक्ष हो गई। प्रहसित को उसने कहा :

'अंजना का क्या हुआ होगा ?'

'क्यों ऐसी शंका करता है ?'

'नहीं, नहीं, शंका नहीं करता, परन्तु जिज्ञासा होती है।'

'अब हम कहाँ दूर हैं ? इस नगर में पहुँचने जितनी देर।'

देखते ही देखते नगर के बाहर विमान आ पहुँचे। नगर में भी वायुवेग से पवनंजय के आगमन के समाचार पहुँच गए। राजा प्रह्लादादि ने पवनंजय का स्वागत करने के लिए तैयारियाँ कीं।

नगरजनों ने महोत्सवपूर्वक पवनंजय का स्वागत किया, परन्तु पवनंजय का चित्त नगरजनों के स्वागत में नहीं था। वह तो अंजना से मिलने के लिए आतुर था। अपने महल में आकर, प्रहसित को अन्य सब कार्यभार समझा कर वह तो पहुँचा माता-पिता के पास। माता पिता को प्रणाम कर वहाँ से सीधा पहुँचा अंजना के आवास पर, परन्तु वहाँ तो बिल्कुल सुनसान था। न तो था वहाँ कोई पहरेदार, न थी कोई दासी।

पवनंजय ने वहाँ सब कुछ अस्त व्यस्त देखा, तो वह महल में गया ।

'कोई है क्या ?' उसने आवाज लगाई ।

'कौन है ?' एक धीमी आवाज अन्दर के कमरे से आई । पवनंजय उधर गया । वहाँ उसने एक स्त्री को देखा ।

'अंजना कहाँ है ?' बड़ी आतुरता के साथ पवनंजय ने पूछा ।

स्त्री पवनंजय की ओर देखती रही । थोड़ी देर बाद पूछा 'आप कौन हैं ?'

'मैं पवनंजय....अंजना कहाँ है ?'

स्त्री की आँखों में से आँसू टपक पड़े । उसकी मुखाकृति रक्तवर्ण हो गई ।

'उत्तर क्यों नहीं देती ? अंजना....मेरी प्रिय अंजना कहाँ है ?' पवनंजय आकुल हो उठा । उसका हृदय धड़कने लगा ।

'क्या उत्तर दूँ, कुमार ?'

'तू जल्दी कह, क्या हुआ ?'

'अंजना देवी को आपकी माताजी ने यहाँ से निकाल दिया ।'

'हैं ?' पवनंजय की आँखें फट गईं । उसके होंठ फड़कने लगे ।

'अंजनादेवी गर्भवती बनीं....माताजी ने उन पर कलंक

आरोपित किया....और लोगों द्वारा वसंततिलका के साथ देवी को महेन्द्र नगर के सीमा वन में छुड़वा दिया।'

'पवनंजय की आँखों में अन्धेरा छा गया। वह वहीं बैठ गया।



२६. सती की खोज में

पवनंजय ने अपनी स्वप्नसृष्टि के स्वर्ग को वीरान बनता देखा……प्रेम की इस करुण कथा की स्मृति करते करते न जाने उसकी आँख में आँसू उमड़ पड़े। वह अंजना के खंडहर जैसे महल में घूमा……दिल में तूफान जागा……आँसू टपक पड़े। स्मृतियों का तूफान आया और दिमाग होश खो बैठा।

हृदय की वेदना को……वेदना के दर्द को वह भूल नहीं सकता था। उनका वह अस्थायी मिलन, गिनेचुने घंटों के वे सुखद क्षण और उनका चिर वियोग—परस्पर एक दूसरे के लिए विरही आत्माएँ अपनी छाती पर पत्थर रखकर शांत करने की मिथ्या चेष्टा कर रही थीं।

मानव जीवन सुख दुःख के संमिश्रण से कैसा बेढंगा बना हुआ है। उल्लास और विश्वास, ऐश्वर्य और दारिद्रय, उन्नति और अवनति, सुख दुःख के इस संमिश्रण से मनुष्य चितकबरे रंगों से अपने मुँह को रंगने वाले बहुरूपिये से भी अधिक कुरूप लगता है। कई आशाओं और उमंगों के साथ पवनंजय लौटा था। उसकी इन असीम आशाओं और उमड़ती उमंगों पर पानी फिर गया था।

वह लड़खड़ाते पाँवों से अंजना के महल से बाहर आया और सीधा ही केतुमती के आवास पर पहुँचा। थोड़े घंटों पूर्व ही आकर गए हुए पवनंजय को पुनः आया देखकर केतुमती ने पूछा :

'क्यों बेटे, पुनः कैसे आना हुआ ?'

'माँ तूने मुझ पर भारी अन्याय किया है। मेरे जीवन में आग लगा दी,' वेदना और क्रोध से पवनंजय काँप रहा था।

'पर हुआ क्या ? यह तो कह।'

'क्या कहूँ ? तूने कहने योग्य रक्खा ही क्या है ? निर्दोष ....निष्पाप अंजना को तूने कलंकित की। उस महासती को तूने दुःख के दावानल में झोंक दी।'

'पर.......तेरी अनुपस्थिति में वह........।'

'गलत बिल्कुल असत्य। वह मुझ से ही गर्भवती हुई थी। क्या उसने स्पष्टीकरण नहीं दिया था ! क्या उसने मुद्रिका नहीं बताई थी ?'

'उसने मुद्रिफा बताई थी पर मुझे विश्वास.......'

'बाईस बाईस वर्ष तक क्या तूने उसका जीवन देखा नहीं था ? मेरे सामने क्या तूने उसके कम गुणगान किये थे ? और यकायक ही क्या वह बिगड़ गई ? तूने जरा भी नहीं सोचा ? मेरे आगमन की राह तक नहीं देखी,' पवनंजय की आँखों में आँसू भर आए। अंजना का क्या हुआ होगा ? इस विचार ने उसके हृदय को दुःखी बना दिया।

'मैं जाता हूँ.......अंजना को ढूँढकर ही लौटूँगा.......मेरी प्रतीक्षा मत करना,' पवनंजय केतुमती के खंड से बाहर निकलने लगा, कि केतुमती ने उसका हाथ पकड़ लिया।

'तू क्यों जाता है? मैं यहाँ से चारों दिशाओं में सुभटों को खोज करने भेजती हूँ।'

'नहीं, तेरी भूल का प्रायश्चित मुझे ही करना पड़ेगा और वास्तव में तो भूल मेरी ही है। बाईस वर्षों तक मैंने उसे दुःखी करने में कोई कसर नहीं रक्खी। मैं ही उसके पीछे जाऊँगा।'

पवनंजय बाहर आ गया। प्रहसित को साथ लेकर आकाश मार्ग से सीधा वह महेन्द्रनगर के द्वार पर पहुँचा। दोनों मित्र सीधे राजा महेन्द्र के महल में पहुँचे। महल की सीढ़ियों पर ही युवराज प्रसन्नकीर्ति से मिलन हुआ।

'इस प्रकार अचानक...कुमार?' प्रसन्नकीर्ति ने पवनंजय का हाथ पकड़कर पूछा।

'अंजना यहाँ है?' पवनंजय ने सीधा ही प्रश्न किया।

प्रसन्नकीर्ति असमंजस में पड़ गया। वह जानता था कि अंजना को उसकी सास ने निकाला था, तब पवनंजय युद्ध में गया हुआ था और वहाँ से अभी आज ही वह लौटा था। साथ ही पवनंजय के चेहरे पर किसी आनन्द की रेखा भी नहीं थी। विषाद की गहरी छाया उसके मुख पर छाई हुई थी। 'तो कहीं अंजना के साथ अन्याय तो नहीं हो गया?' उसका चित्त अस्वस्थ हो गया। उसने कहा, 'हाँ, अंजना यहाँ आई थी।'

'कहाँ है?'

'पर आप महल में तो पधारें......फिर......।'

'पहिले मुझे उत्तर दो : अंजना कहाँ है?' पवनंजय की आवाज में गर्मी थी। उसकी आँख में क्रोधाग्नि भभक उठी।

परन्तु आवाज सुनते ही राजा मदेन्द्र और महामात्य भी वहाँ पहुँच गए।

'कुमार! कब पधारे? महल में पधारो.......वहाँ.......,' महेन्द्र ने कहा।

'मैं महल में बैठने के लिए नहीं आया। अंजना को ढूँढने आया हूँ। अंजना कहाँ है?' पवनंजय ने महेन्द्र की ओर देखा।

'उसका नाम क्यों लेते हैं? उसने आपके और मेरे कुल को.......'

'बस बस, उसने किसी को कलंकित नहीं किया। उसे आप लोगों ने कलंकित की है! वह महासती है.......।'

'हें?' महेन्द्र के होश हवाश उड़ गए। प्रसन्नकीर्ति की आँखें फट गईं।

'हाँ, वह निष्पाप है, निर्दोष है। अज्ञानतावश माता ने उस निर्दोष सती पर जुल्म ढाए हैं। वह यहाँ आई है ऐसा मैंने सुना है। वह है कहाँ?' पवनंजय की बात सुनने पर महेन्द्र की आँखों से टप टप आँसू गिरने लगे। प्रसन्नकीर्ति की आँखों में अँधेरा छा गया। वह भूमि पर गिर पड़ा। महामन्त्री ने अपनी भीगी आँखें उत्तरीय के छोर से पोंछी।

'तो क्या वह यहाँ नहीं? यहाँ आई ही नहीं?' पवनंजय का चित्त व्यथित हो उठा। हृदय गहन चिन्ता एवं कुशंकाओं में डूब गया।

'कुमार! क्या कहूँ? मैंने अपने ही हाथों इस सुशीला पुत्री के साथ अन्याय किया। दीन गाय समान निर्दोष पुत्री यहाँ आई थी, परन्तु कुलकीर्ति की पापी वासना से हमने यहाँ से उसे ढकेल दी, निकाल दी'.....रोती रोती आँखों, तुतलाती

जीभ और सिर पीटने के साथ महेन्द्र ने सत्य घटना कह सुनाई।

'न मालूम वह कहाँ गई होगी ? उसका क्या हुआ होगा ? अकेली भयंकर जंगलों में, दारुण अटवियों में कहाँ भटक गई होगी ? महामन्त्री ने उस समय सत्य कहा था कि 'यह निर्दोष हैं इसे न निकालो' परन्तु मुझ अभिमानी ने महामन्त्री की बात नहीं मानी—उसकी दुःखी स्थिति का ख्याल नहीं किया।' महेन्द्र राजा नीचे बैठ गए, सिसकियाँ भर भर कर रोने लगे।

'महाराजा, अब इस समय रोने धोने से तो हो गया। अब तो एक क्षण का भी विलंब किए बिना उस सती का पता लगाना चाहिये। चारों दिशाओं में सुभटों को भेजकर उसका पता लगवाना चाहिये।' महामन्त्री ने महेन्द्र को शांति दी।

'कुमार ! आप यहीं रुकें। अल्प काल में ही सुभट शुभ समाचार लेकर आ जायेंगे।' महामन्त्री ने पवनंजय से प्रार्थना की।

'नहीं, महामन्त्री ! जब तक अंजना न मिले तब तक महल कैसा ? आराम कैसा ? शांति कैसी ?' प्रहसित का हाथ पकड़ कर पवनंजय महल की सीढ़ियों से नीचे उतर आया। इतने में प्रसन्नकीर्ति दौड़ता हुआ आकर पवनंजय के सामने खड़ा हुआ।

'कुमार ! क्षमा करें। आप यहीं रुकें। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि बहिन को यहाँ लाकर ही अन्न जल ग्रहण करूँगा। तभी महल में प्रवेश करूँगा।' आँसू टपकती आँखों के साथ प्रसन्नकीर्ति ने पवनंजय को कहा।

'प्रसन्नकीर्ति ! तुम मेरे मार्ग में न आओ। मुझे जाने दो। मेरे चित्त को शांति नहीं। मेरी आत्मा आकुल हो उठी है।

जब तक अंजना को मैं सुख में नहीं देखूँ, तब तक चैन कर बैठ नहीं सकता।'

बाईस बाईस वर्षों तक अंजना के नाम पर भारी घृणा करने वाला पवनंजय आज अंजना के विरह में जल रहा है। यही तो इस संसार की विचित्रता है। एक दिन जिस पर अग्नि वर्षा की हो, एक दिन उसी पर प्रेम वर्षा की जाती है। एक दिन जिसके साथ चमन किया हो, दूसरे दिन उसी का दमन किया जाता है। किसी दिन जिसके अधरों का पान किया हो, दूसरे दिन उसी की कब्र खोदी जाती है। किसी दिन जिसके साथ भोग क्रीड़ा की हो, समय फिरने पर उसी का हृदय विदारण किया जाता है।

संसार अर्थात् ऐसी एक भीषण स्थिति है। इसलिए तत्व-द्रष्टा महर्षि मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देते हैं। जिस मोक्ष में जीव को किसी प्रकार के राग द्वेष की विडम्बना नहीं भोगनी पड़ती।

पवनंजय किसी से रुका नहीं। द्वार खड़े द्वारपाल ने भी भूमि पर आँसुओं का छिड़काव करके पवनंजय को नत मस्तक से प्रणाम किया। यह वही द्वार था जहाँ से एक दुर्दिन महासती अंजना माता-पिता और भाई से तिरस्कृत होकर आक्रन्द करती हुई मुड़ी थी। यह वही द्वार था जो राजा महेन्द्र और युवराज प्रसन्नकीर्ति के अधम कृत्य को मूक दृष्टि से देख रहा था। यहीं उस महासती का हृदय विदीर्ण हुआ था। विदीर्ण हृदय में से जो रुधिर का प्रवाह निकला था उसमें द्वार के पत्थर भी रंग गए थे। यदि आज उन पत्थरों में वाचा प्रस्फुटित हो, तो उस हृदय विदारक दिन का ऐसा वर्णन

प्रस्तुत करें कि पवनंजय को इस द्वार से बाहर कदम बढ़ाना भी कठिन हो जाय।

क्रूर दुर्भाग्य की क्रीड़ा पर पवनंजय के हृदय में क्रोध भभक उठा, परन्तु आँसुओं के द्वार से उसे दूर करने के सिवाय उसके पास और कौन सा मार्ग था? प्रहसित के साथ वह महेन्द्रपुर के बाहरी वन में आया। कहाँ जाना? कौन सा मार्ग लेना? वह कुछ देर असमंजस में पड़ा। उसने प्रहसित की ओर देखा।

'मित्र, अब तू लौट जा। अब मैं ऐसे अनजान, वीरान और विकट मार्ग पर जाऊँगा जहाँ तुझे भयंकर कष्ट सहन करना पड़ेगा....व्यर्थ मेरी वजह से....'

'कुमार! बस हो चुका। ऐसा न कह। तुझे छोड़कर मैं जाने वाला नहीं। तेरे सुख में सुखी और दुःख में दुःखी हुए बिना मेरा हृदय कोई भी बात स्वीकार करने वाला नहीं। तू निराश न हो। हम अंजना को ढूँढ़ निकालेंगे।'

'पर अब हम कहाँ जाएँगे? हमारे पास कोई निश्चित जानकारी नहीं।'

'हम एक-एक गांव, एक-एक नगर प्रत्येक गुफा और प्रत्येक पहाड़ रौंद डालेंगे, पर अंजना को प्राप्त करके ही चैन लेंगे।' प्रहसित का उत्साह पवनंजय के लिए प्रेरक बना। उसका हृदय श्रद्धालु हुआ। प्रहसित को उसने गले लगा लिया।

'मित्र! मेरे अन्दाज से तो अंजना किसी नगर में नहीं गई होगी। उसने निश्चित् रूप से किसी जंगल का मार्ग लिया होगा। किसी गिरि कन्दरा की [illegible] ली [illegible]र

वहाँ क्या वह विकराल जंगली पशुओं के पंजों में से....' पवनंजय के शरीर में से पसीना छूटने लगा। अंजना की स्थिति का ख्याल करते-करते उसका हृदय सिहर उठा।

'कुमार! ऐसी कुशंकाएँ न कर। अंजना महासती है। जंगली पशु उसका कुछ नहीं कर सकते। और तो और, भयंकर राक्षस या पिशाच भी उसके सामने शांत और उसके वश में हो जाएँगे। सतीत्व के चरणों में देवता भी सिर झुकाते हैं।' प्रहसित ने अन्तःकरण से अंजना के अद्भुत सतीत्व की पुष्टि करते हुए कहा। पवनंजय का मन कुछ हल्का हुआ।

दोनों मित्र वहाँ से आकाश मार्ग होकर आगे बढ़े। वैताढ्य पर्वत के एक ऊँचे शिखर पर पहुँचे। शिखर पर न था कोई मनुष्य और न था कोई पशु-पक्षी। शिखर पर दोनों मित्रों ने कोना-कोना छान लिया। अंजना न मिली। धीरे-धीरे शिखर पर से उन्होंने उतरना शुरू किया। वहाँ उन्हें बड़ी-बड़ी गुफायें और पाताल घाटियाँ दिखाई दीं। एक-एक घाटी देखली। एक-एक खाई रौंद डाली। चप्पा-चप्पा भूमि रौंद ली पर अंजना न मिली।

पैदल ही अब उन्होंने आगे बढ़ना शुरू किया। बड़े-बड़े जंगलों में शोध की। अंजना का पता न चला। दिन प्रतिदिन बीतने लगे। पवनंजय का जीव बेभान हो गया। उसका चित्त विह्वल हो गया। प्रहसित के मुख पर निराशा की रेखाएँ उभरने लगीं। मौन रूप से वह पवनंजय के साथ भटक रहा था। समझ में नहीं आता था अंजना को कहाँ ढूँढें।

इतना ही नहीं पवनंजय न खाता है न पीता है। इससे प्रहसित की चिन्ता बढ़ती जाती है। अब पवनंजय को आश्वा-

सन देने के लिये शब्द भी नहीं। पवनंजय को आशावादी बनाने के लिये अब उत्साह भी नहीं।

वैताढ्य पर्वत का कोई भी भाग छानने से उन्होंने शेष नहीं रक्खा फिर भी निराशा....।

ऐसा करते २ वे दोनों वैताढ्य की एक गहरी खाई में पहुँच गए। सूर्य भी अस्त हो चुका था। जंगली पशुओं के दारुण स्वरों के सिवाय और कुछ सुनाई नहीं देता था। पवनंजय ने प्रहसित की ओर देखा। प्रहसित का मुख निराशा के काले बादलों में छिप चुका था। उसने दीन आँखों से पवनंजय की ओर देखा और वह पास की एक शिला पर बैठ गया। पवनंजय उसके पास बैठा

'प्रहसित! तू अब आदित्यपुर जा। जाकर माता-पिता को कहना अंजना को ढूँढने के लिए सारी पृथ्वी पर भटक आए, फिर भी उसना पता न चला। अभी भी मैं वनों में भटकूँगा और अंजना खोजूँगा फिर भी वह तपस्विनी न मिली तो अंत में........।'

'अंत में क्या?', प्रहसित का हृदय काँप उठा।

'अंत में मैं अग्नि प्रवेश करूँगा।'

'नहीं-नहीं कुमार! मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा, हर्गिज नहीं जाऊँगा।' प्रहसित की आँखों से अविरल अश्रु धारा वह चली। वह पवनंजय के गले लिपट गया। उसके वक्षस्थल को आँसुओं से भिगो दिया।

'प्रहसित! तू समझ सकता है मेरे हृदय की स्थिति।

अंजना के बिना मैं एक क्षण भी जी नहीं सकता। उसे मैंने बाईस बाईस वर्षों तक कुम्हलाई है, उसका प्रायश्चित्त करने का आज अवसर मिला है। तू जा। माता पिता को समाचार पहुँचा — जिससे वे मेरी प्रतीक्षा न करें।

अपने प्राणप्रिय मित्र की कुंठा, उसकी भावनाओं और कामनाओं को निष्ठुर नियति के हाथों कुचली जाती देखकर प्रहसित सिसकियाँ भर भर कर फूट पड़ा। दुर्भाग्य और क्रूर काल का सामना करने में वह असमर्थ रहा।

आज उसे अपना जीवन साथी मित्र उससे दूर दूर जाता जाता दीखा। आशाओं और स्वप्नों के आकाशदीपों की बत्ती फिर एक बार किसी गहन अन्धकार में विलीन होता दीखा। उसने पवनंजय को रोकने का प्रयत्न किया, पर उस प्रयत्न में भी प्राण न रहा था। मित्र को ऐसी विकट परिस्थिति में अकेला जाते देखकर स्वयं नगर की ओर लौटना—उसे रुचिकर न लगा। उसके हृदय ने साफ इन्कार कर दिया।

'मित्र, तू कुछ भी कह। मैं तुझे छोड़कर जाने वाला नहीं। जो मार्ग तू अपनाएगा, वही मार्ग मेरे लिए।'

प्रहसित ने रोते हुए भी दृढ़तापूर्वक अपना निश्चय व्यक्त कर दिया। पवनंजय असमंजस में पड़ गया। वह समझता था कि प्रहसित किसी भी प्रकार उसे अग्नि-प्रवेश नहीं करने देगा, इतना ही नहीं शायद वह स्वयं भी उसके साथ अग्नि में कूद पड़ेगा। किसी भी प्रकार से प्रहसित को आदित्यपुर भेज ही देना चाहिए।

'प्रहसित ! तू सोच ले। यदि तू आदित्यपुर जाता है और

माता पिता से बात करता है तो उन्हें भी अंजना की शोध करने की बात सूझ सकती है और कहीं अंजना का पता लग सकता है।' पवनंजय ने प्रहसित की ओर देखा। प्रहसित विचार मग्न हो गया।

'तो तू भी मेरे साथ आदित्यपुर चल।' प्रहसित ने कहा।

'यह अब मेरे लिए अशक्य है। मैं तो अभी वनों में, जंगलों में भटकूंगा और अंजना को प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। फिर यदि मैं नहीं आऊँगा तो, माता पिता आदि अतिशीघ्र एवं सतर्कतापूर्वक शोध करेंगे।'

रात बहुत बीत गई थी। प्रहसित की आँखें थकान और निद्राभाव के कारण ढलने लगी थीं। पवनंजय भी थक तो गया ही था परन्तु उसकी नींद तो कभी की उचट चुकी थी। विरह की वेदना में वह व्याकुल ही बना रहता था। प्रहसित शिला पर भी करवट के बल लेटा। उसकी आँख लग गई। पवनंजय उसके पास बैठा रहा। घण्टों बीतते चले। पवनंजय को एक विचार आया और उ..ने प्रहसित की ओर देखा। वह उठ खड़ा हुआ। प्रहसित को वहीं निद्राधीन छोड़ कर चले जाने के लिये उसने कदम उठाए, परन्तु वह रुक गया। उसका हृदय आना-कानी करने लगा।

'तू यदि इस प्रकार मित्र को धोखा देकर चला जाएगा तो इसका क्या होगा? तेरे बिना इसकी क्या दशा होगी?' पवनंजय के अन्तःकरण में विचार उत्पन्न हुआ। वह रुक गया। विचार मग्न ही वह बैठ गया कि इतने में प्रहसित जाग उठा।

'कुमार !' प्रहसित ने आवाज लगाई । पवनंजय विचार निद्रा से जगा ।

'क्यों ?'

'मैं आदित्यपुर जाता हूँ....।'

'हें ?'

'हाँ, जाने पर बड़े पैमाने पर अंजना की शोध आरम्भ हो सकेगी । मेरा हृदय अभी तक कहता है कि अंजना मिलेगी । पर तू साहस न छोड़ना । तेरे खोजने पर भी अंजना न मिले, तो तू आदित्यपुर आ जाना ।'

पवनंजव मौन रहा । वह प्रहसित की ओर देखने लगा ।

'तुझे आश्चर्य होता होगा कि मैं यकायक आदित्यपुर जाने के लिए क्यों तैयार हो गया परन्तु मुझे नींद आ गई । निद्रा में मुझे ऐसा आत्मसंवेदन हुआ कि मुझे आदित्यपुर जाना और अंजना की शोध करवानी चाहिये ।'

पवनंजय सोचने लगा, 'क्या अंजना मिल सकेगी ?' उसके चित्त में अनेक विकल्प उथल पुथल करने लगे । परन्तु इतने में तो प्रहसित ने पवनंजय का हाथ पकड़ लिया ।

'मित्र ! अब मैं जाता हूँ । पुनः तुझे कहता हूँ कि तू जल्दबाजी में साहस न कर बैठना । अल्प काल में ही तुझे शुभ समाचार मिलेंगे ।'

दोनों मिले, गले लगे । आँसुओं से एक दूसरे के वक्षस्थल भीग गए । प्रहसित ने अनुमति माँगी और आकाश मार्ग से वह आदित्यपुर की ओर रवाना हुआ ।

पवनंजय आकाश मार्ग से प्रहसित को देखता रहा । जब तक उसके दृष्टिपथ से प्रहसित परे न चला गया, तब तक वह देखता रहा । उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली । उसका हृदय क्षुब्ध हो गया । उसे मूर्च्छा आ गई, वह नीचे गिर पड़ा ।

यहाँ कौन इस पर शीतल जल छिड़कने वाला था ? यहाँ कौन इस पर रत्न जटित पंखों से हवा डालने वाला था ? यहाँ कौन इसके सिर पर प्रेम पूर्वक हाथ फेरने वाला था ? जीवन की असारता....निःसहायता का इससे बढ़कर और कौन सा दृष्टाँत हो सकता है । परन्तु ऐसे दृष्टाँत जनता के समक्ष प्रस्तुत करके केवल कीर्ति कमाने की वृत्ति तो मानव हृदय को न समझ सकने वाले क्रूर हृदय में पैदा नहीं हो सकती । पवनंजय का भग्न हृदय—हृदय के टुकड़े-टुकड़े देखकर तो उसके प्रति समवेदना प्रकट करनी चाहिये । उसके हृदय के टुकड़ों को जोड़ने में यदि अपना हृदय काम आ सकता हो तो वह त्याग भी करना चाहिये ।

कहीं भूल से यह न समझ बैठें कि पवनंजय काम-व्यथा से पीड़ित था । कहीं पवनंजय को विषय लंपटता की अग्नि में जलता हुआ समझने की भूल न करलें । यदि ऐसा समझोगे तो इस महापुरुष के साथ अन्याय हो जाएगा । एक महान् आत्मा का अपमान किया गया कहलाएगा । पवनंजय के हृदय में अंजना के उच्च सतीत्व के प्रति आदर भाव प्रकट हुआ है । बाईस वर्षों तक अंजना जैसी सुशीला सन्नारी के प्रति किये गए घोर अन्याय की आग उसके हृदय में सुलग रही है । और उसी से वह आज उसे मिलने के लिए आकाश पाताल एक कर रहा

है। उसके न मिलने पर वह अग्नि प्रवेश कर राख होने तक को तैयार हो गया है।

महापुरुषों की यह एक विशेषता होती है । एक स्वभाव होता है कि किसी के प्रति उनसे अनुचित आचरण हो जाने के पश्चात् जब उन्हें अपनी भूल समझ में आती है, तब वे उस व्यक्ति के प्रति प्रबल गुणानुरागी बन जाते हैं।

पवनंजय होश में आया उसने वहाँ से चलना शुरू किया। खाइयाँ और घाटियाँ पार करता हुआ वह 'भूतवन' में जा पहुँचा। महा भयंकर उस वन में पवनंजय 'अंजना....अंजना! तू कहाँ है ?' आवाज देता हुआ भटकने लगा। रात दिन वह भटकता रहा, परन्तु अंजना न मिली । उसका चित्त उदास हो गया। उसने अंजना की आशा छोड़ दी।

वह मूढ बनकर एक वृक्ष के नीचे खड़ा रहा । जिन्दगी उसे जीने योग्य न लगी। जिन्दगी की अपेक्षा मौत उसे शांति-दायक लगी। उसने मृत्यु के साथ वरण करने का निर्णय किया। आसपास दृष्टि दौड़ाई । शुष्क पेड़ पौधो के सिवाय वहाँ कोई न था।



२७. सतीत्व की विजय

प्रहसित आदित्यपुर में आ पहुँचा ।

सीधा ही वह महाराजा प्रह्लाद के महल में पहुंचा । प्रह्लाद और केतुमती मंत्रणाखण्ड में चिंतातुर मुखाकृति से बातें कर रहे थे । इतने में प्रहसित ने प्रवेश किया । केतुमती की दृष्टि प्रहसित पर गिरी । वह यकायक खड़ी हो गई ।

'पवनंजय कहाँ ?' केतुमती ने विह्वल वदन के साथ पूछा ।

'मैं अकेला ही आया हूँ,' प्रहसित ने जमीन पर दृष्टि रख कर उत्तर दिया ।

'पवनंजय आया नहीं और शायद कभी भी नहीं आएगा', प्रहसित की आँखों में आँसू उमड़ पड़े ।

'हैं ?'

'हाँ, हमने अंजना को ढूँढने के लिए ग्राम, नगर, पर्वत, सभी छान लिये, परन्तु अंजना न मिली । आखिरकार मुझे यहाँ भेजकर पवनंजय अंजना को खोजता हुआ जंगल में भटक........।'

केतुमती रो पड़ी । करुण क्रन्दन करने लगी । राजा

प्रह्लाद भी रुदन को वश में नहीं कर सके। 'पर मेरे पुत्र को अकेला छोड़कर तू क्यों आया? उसका जंगल में कौन? वह कहाँ जाएगा? तुझे तो साथ रहना था,' केतुमती ने प्रहसित को उपालम्भ देना शुरू किया।

'माता जी, अब रोने के बजाय तो काम करना चाहिये।'

'अब क्या करूँ? हाथों किये हृदय में लगे—मुझ पापिनी ने उस निरपराधी बेचारी अंजना को कलंकित कर निकाल दी ....सती को दुःखी किया, उसका फल मुझे यहीं मिल गया। मेरा पुत्र गया........।'

'चिंता न करें। अब भी पवनंजय मिल सकता है। हमें अंजना का पता लगाना चाहिये। यदि अंजना के समाचार शीघ्र नहीं मिले, तो पवनंजय अग्नि में प्रवेश कर लेगा।'

केतुमती मूर्छित हो गई। राजा प्रह्लाद आपा खो बैठे।

राजमहल का सारा ही परिवार इकट्ठा हो गया। वयोवृद्ध महामन्त्री भी आ गए। शोक के गहरे वातावरण में सब डूब गए।

ऐसे हैं इस संसार के घटनाचक्र। इष्ट के संयोग में हर्ष और इष्ट के वियोग में विषाद। संसार में क्षण में इष्ट की प्राप्ति होती है और क्षण में वह लुट जाता है। अर्थात् जीव हर्ष और विषाद में ही परेशान होता है। संसार त्याग इसी लिए करना चाहिए। साधु होकर भी पुरुषार्थ यह करने का है कि इष्ट अथवा अनिष्ट संयोग में आत्मा हर्ष-विषाद के द्वन्द्व में न फँसे। इष्ट प्राप्ति में न प्रसन्न होना चाहिये और अनिष्ट योग में न रोना चाहिये।

प्रहसित ने गम्भीर स्वर में राजा प्रह्लाद से कहा, 'महाराजा ! अब तुरन्त चारों ओर सुभटों को भेजकर अंजना की खोज करवानी चाहिये, और पवनंजय को भी सम्हालना चाहिये ।'

राज्य के मन्त्रीगण, सेनापति, मुख्य मुख्य चर पुरुष, सभी उपस्थित थे । राजा प्रह्लाद ने मुख्य सेनापति को आज्ञा दी ।

'सेनापति जी, आप वैताढ्य की उत्तर श्रेणी के एक एक नगर में अंजना की खोज करें ।'

प्रहसित ने कहा, 'और यदि अंजना मिल जाए तो यहाँ न लौटना; परन्तु सीधे विमान में महेन्द्रनगर से ५०० योजन दूर पूर्व दिशा में जो वैताढ्य की गिरिमाला है वहाँ आएँ । संभवतः वहाँ हमारा मिलन होगा ।'

प्रधान सेनापति को सैंकड़ों चतुर सुभटों के साथ तुरन्त रवाना करके राजा प्रह्लाद ने दूसरे सेनापति को आज्ञा दी :

'आप दक्षिण दिशा में जाएँ । प्रत्येक गाँव, नगर में अंजना की शोध करें और हमसे आकर मिलें ।'

'जैसी महाराजा की आज्ञा ।' सेनापति महाराजा को प्रणाम करके रवाना हुए; और कई चुने हुए राजपुरुषों को लेकर प्रयाण किया ।

'महाराजा ! एक सुभट को तत्काल महेन्द्रनगर में भेजकर राजा महेन्द्र को भी अंजना की खोज करने के लिए कहलवाना चाहिये,' प्रहसित ने कहा ।

'हाँ, यह बात भी सच्ची है.......,' एक सुभट को तुरन्त महेन्द्रपुर रवाना किया गया ।

अब हमें अविलम्ब पवनंजय से मिलना चाहिये।' प्रहसित ने महाराजा का विमान तैयार किया। राजा महेन्द्र, केतुमती और महामन्त्री को विमान में बैठाकर प्रहसित ने तत्काल वहाँ से विमान उठाया। देखते ही देखते प्रहसित ने विमान को वहाँ उतारा जहाँ से वह पवनंजय से अलग हुआ था।

'माताजी, यहाँ से मैं और पवनंजय अलग हुए थे। अतः यहीं आसपास उसकी खोज करनी चाहिए। वह यहाँ से अधिक दूर नहीं गया होगा।' केतुमती को विमान में ही छोड़कर राजा प्रह्लाद, महामन्त्री और प्रहसित ने आसपास खोज की, परन्तु वहाँ पवनंजय नहीं मिला। तीनों इकट्ठे हुए। अब किस ओर खोजें, इस पर विचार विमर्श करने लगे। इतने में महामन्त्री की दृष्टि एक ओर गई, वे चौंक उठे और ये चरणचिह्न पवनंजय के ही हैं।' प्रहसित ने जाँच की तो उसे भी वे चिह्न पवनंजय के ही लगे। प्रह्लाद को विमान लेकर अपने पीछे पीछे उड़ने का कहकर प्रहसित और महामन्त्री पदचिन्हों का अनुगमन करते करते आगे बढ़ने लगे। पदचिह्नों की स्पष्टता बढ़ती जाती थी। चार पाँच घण्टों तक सतत चलते चलते वे 'भूतवन' के किनारे जा पहुँचे। बस, यहाँ से पदचिह्न दिखने बन्द हो गए और वन में प्रवेश करना भी इन्हें ठीक न लगा। प्रह्लाद का विमान भी वहाँ आ पहुँचा। विमान नीचे उतार कर प्रह्लाद ने पूछा :

'क्यों ? अब किस ओर पदचिह्न दिखते हैं ?'

'अब पदचिह्न नहीं दिखते, परन्तु ऐसा लगता है कि इस भयानक वन में ही प्रवेश किया होना चाहिये।'

'तो हम अन्दर चलकर पता लगाएँ ?'

'इसमें अपनी कार्यसिद्धि होने में संशय है, क्योंकि यह वन अति भयानक माना जाता है। पवनंजय किस ओर गया हो और हम किसी विपरीत दिशा में पहुँच जाएँ तो ?'

सभी सोच में पड़ गए। थोड़ी देर सोचकर प्रहसित ने कहा :

'हमें धीरे धीरे और वन में देख सकें इतनी ऊँचाई पर विमान उड़ाना चाहिये और इस प्रकार हम सारे वन को छान सकेंगे।'

'हाँ, यह बात ठीक है,' महामन्त्री ने प्रहसित की बात का समर्थन किया। प्रहसित ने विमान तैयार किया। सभी विमान में बैठ गए और विमान भूतवन पर गतिशील हुआ।

मुख्य सेनापति ने उत्तर श्रेणी के एक एक ग्राम, नगर में बड़ी सतर्कता के साथ छानबीन शुरू की और प्रत्येक नगर में सेनापति को ऐसे चतुर पुरुष भी मिलने लगे जिनकी सहायता से छानबीन बड़ी शीघ्र और सावधानी से होने लगी। घंटों पर घंटे बीतते चले। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन बीतते चले। सेनापति का धैर्य छूटने लगा। उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति और बुद्धि से आगे बढ़ना शुरू किया। सिपाही भी पूर्ण उत्साह के साथ आगे बढ़ने लगे। होते-होते वे सूर्यपुर नगर में आ पहुँचे।

नगर के किनारे सेनापति ने विमान नीचे उतारा। सिपाहियों को गुप्त वेश में उसने नगर में रवाना किया और स्वयं ने भी वेष परिवर्तन कर नगर में प्रवेश किया।

एक के बाद एक राजमार्ग पार करता हुआ सेनापति नगर

के मध्य भाग में पहुँचा। वहाँ उसने एक दुकान में पाँच-छः व्यक्तियों को जोर-जोर से बातें करते सुना। वह दुकान के पास खड़ा हो गया।

'जब से हनुपुर के राजा मानसवेग के यहाँ उनकी भानजी आई है, तबसे दिन प्रतिदिन उसके राज्य का विस्तार होता जा रहा है,' एक वृद्ध से पुरुष ने कहा।

'भाई, पुण्यशाली आत्मा के घर में आगमन पर सुख-सम्पत्ति में वृद्धि होती ही है।'

'और तुमने सुना ?' एक व्यापारी ने प्रश्न किया।

'क्या ?'

'इनकी भानजी का पुत्र अभी तो तीन चार वर्ष का हुआ है, पर सारे नगर का प्रिय पात्र हो चुका है। कहते हैं कि एक बार विमान में से गिर गया था। उसके तो चोट तनिक नहीं आई, पर पर्वत चकनाचूर हो गया था।'

'पर मेरी समझ में तो तुम्हारी बात नहीं आती,' एक मौन बैठे हुए व्यापारी ने कहा।

'क्यों ?'

'तुम कहते हो कि मानसवेग की भानजी पुण्यशाली है, परन्तु साथ ही मैंने सुन रक्खा है कि उसके पति ने उसे निकाल दी है! पुण्यशाली को पति निकाले भी भला ?'

'अरे भाई, तुमने तो सब कुछ आधा ही सुना है। इसके पति ने नहीं बल्कि इसकी सास ने इसे निकाली है। मेरी पुत्री हनुपुर गई थी उसने वास्तविक एवं विस्तृत बात सुनी थी। उसी ने मुझे कहा है।'

'किसी ने भी निकाली हो, किंतु पुण्यशाली को कोई निकालेगा भी भला ?' उस व्यापारी ने गम्भीर प्रश्न पूछा। सभी सोच में पड़ गये। इतने में दुकान के अन्दर बैठा हुआ एक युवक बाहर आया और व्यापारी के पास बैठा।

'मामाजी ! तो क्या पुण्यशाली आत्मा पर आपत्ति नहीं आती ? इस संसार में तो पुण्यशाली आत्मा पर भी कभी-कभी विपत्ति के पर्वत टूट पड़ते हैं।'

'तब तो फिर उसे पुण्यशाली कैसे कह सकते हैं ?'

'आप पुण्यशाली की व्याख्या क्या करते हैं ? लोग जिसकी वाहवाही करें, जिसके पास धन सम्पत्ति हो""वही पुण्यशाली, क्यों ?

'और नहीं तो कौन ?'

'नहीं, जैन धर्म में मात्र उसी को पुण्यशाली नहीं कहते। जिसके पास ज्ञान दृष्टि है, जिसके पास क्षमा-नम्रता है, जिसके हृदय में परमात्मा का वास है, वही पुण्यशाली है।' युवक ने पुण्यशाली की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की।

'ऐसी आत्मा फिर मुसीबत में फँसे भी भला ?' मामाजी ने भानजे से प्रश्न किया।

'बिल्कुल ! पूर्व भवों के पापोदय से दुःख आता है, पर ये पुण्यशाली आत्माएँ उसे दुःख नहीं मानतीं। वे उसे समतापूर्वक सहन करती हैं। इससे उनके दुःख दूर हो जाते हैं और उन्हें सुख की प्राप्ति होती है।'

सेनापति व्यापारियों की बातें [illegible] आनन्द [illegible] हो गया। उसे अंजना का पता लग [illegible] ापारि [illegible]

से उसे अंजना के विषय में जानकारी प्राप्त हो गई। तुरन्त वह गाँव के बाहर आ गया। अन्य सिपाही भी जो खोज करने गए थे, वे आ गए। सभी ने सेनापति को आज हँसता हुआ देखा।

'प्यारे सिपाहियों! हमारा कार्य सफल हो चुका है। अंजना का पता लग गया है।' सेनापति ने कहा।

'क्या बात करते हैं? कहाँ हैं महासतीजी?' सिपाही आश्चर्य और आनन्द से नाच उठे।

'हमें यहाँ से हनुपुर नगर की ओर प्रयाण करना है। वहाँ अंजना और उसका पुत्र सकुशल हैं।'

'अंजना सती की जय हो', सिपाहियों ने जयजयकार किया।

सभी ने विमान में आसन ग्रहण किये। सेनापति ने विमान को गति दी। थोड़ी ही देर में हनुपुर के गगनचुम्बी जिनालय दृष्टिगोचर होने लगे। सेनापति ने नगर के बाहर विमान नीचे उतारा और वेग से सिपाहियों के साथ उसने नगर में प्रवेश किया। नगर की अपूर्व रचना और शोभा देखकर सेनापति प्रसन्न हो गया। राजमार्ग पार करते हुए वे राजमहालय के द्वार पर पहुँच गए। द्वार पर सशस्त्र सैनिक पहरा लगा रहे थे। सेनापति वहाँ खड़ा रह गया। द्वार रक्षक से उसने कहा:

'हमें महाराजा मानसवेग से मिलना है।'

'आपका शुभ परिचय?' द्वारपाल ने पूछा।

'हम आदित्यपुर से आए हैं। राजा प्रह्लाद का संदेश लाए हैं।'

एक द्वार रक्षक राजमहल में गया । महाराजा मानसवेग के पास पहुँचा और प्रणाम कर निवेदन किया ।

'आदित्यपुर से महाराजा प्रह्लाद के लोग आपसे मिलने के लिए आतुर हैं ।'

'उन्हें फौरन आने दो ।' मानसवेग के चित्त में अनेक विचार उमड़ पड़े । उसने दासी को भेजकर अंजना को समाचार दिये । दूसरी ओर सेनापति ने खण्ड में प्रवेश किया ।

'महाराजा मानसवेग की जय हो ।' सेनापति ने मानसवेग को प्रणाम किया । मानसवेग ने खड़े होकर सेनापति का हर्ष के साथ स्वागत किया । सेनापति को बैठने के लिए आसन दिया । इतने में वसंततिलका के साथ अंजना भी आ पहुँची । पीछे पीछे दौड़ता हुआ हनुमान भी आ पहुँचा । अंजना को देखते ही सेनापति खड़ा हो गया और करबद्ध प्रणाम किया ।

'तुम्हारा कल्याण हो' आशीर्वाद देकर अंजना ने उचित आसन ग्रहण किया । हनुमान ने अंजना की गोद में अपना आसन जमाया । वह आगन्तुक सेनापति की ओर दृष्टि जमा कर देखने लगा ।

'कहिए ! आदित्यपुर में सभी सकुशल तो हैं न ?' मानसवेग ने पूछा । प्रत्युत्तर में सेनापति की आँखों में से आँसू लुढ़क पड़े । उसका गला भर आया । युद्ध भूमि में शत्रुओं पर सिंह की भाँति टूट पड़ने वाला सेनापति....उसका वज्र समान हृदय द्रवित हो उठा । अंजना को देख देख कर वह फूट पड़ा ।

'महानुभाव ! क्या बात है ? सभी सकुशल तो हैं न ?' मानसवेग ने पुनः पूछा । अंजना के हृदय की [illegible] गई ।

'महाराजा ! आदित्यपुर आज शोक के अंधकार में डूब गया है। जब से महासती को कलंकित कर निकाला गया है, तब से आदित्यपुर की प्रजा अशांत बन गई है।'

'क्या पवनंजय लंका से लौट आए ?'

'जी हाँ। मैं भी युद्ध यात्रा में उनके साथ ही था। हम लोग लौट आए। पवनंजय सती के महल में गए। महल में कौन मिलता ? उन्होंने सती के प्रति हुए घोर अन्याय की दुःखद कहानी सुनी। वे व्याकुल हो उठे। प्रहसित के साथ वे घर से निकल गए। देवीजो को ढूँढ़ते हुए वे गाँवों, नगरों, पर्वतों, गुफाओं, कन्दराओं, खानों में भटक लिए पर देवीजी न मिलीं। प्रहसित को उन्होंने आदित्यपुर भेजा····पर····'

'फिर क्या हुआ ?' अंजना व्यग्र हो उठी।

'प्रहसित के साथ उन्होंने सन्देश भेजा', सेनापति का श्वास बढ़ गया। अंजना का प्राण निराधार लटकने लगा।

'मैं अभी भी अंजना को ढूँढ़ने के लिए जंगलों में भटकूँगा, फिर भी यदि अंजना न मिली तो········'

'तो क्या ?' अंजना की आँखें भय से फट गई।

'तो मैं अग्नि में····' सेनापति वाक्य पूरा करे इसके पूर्व ही अंजना फूट पड़ी। मूर्छित होकर लुढ़क गई। छोटा सा हनुमान गुमसुम हो गया। माता को रोती देखकर वह भी रो पड़ा और अंजना से लिपट गया। दास-दासियाँ और सारा राज्य परिवार इकट्ठा हो गया। शीतल जल का छिड़काव कर अंजना होश में लाई गई, परन्तु उसकी आँखों से तो सावन और भादों बरस रहे थे। उसने करुण क्रन्दन करना प्रारम्भ किया।

'पतिव्रता स्त्रियाँ तो पति के विरह में अग्नि प्रवेश करती हैं....पति के विना पत्नी को जीवन सारहीन लगता है, परन्तु आप जैसे महापुरुषों के लिए स्त्रियों की कहाँ कमी है ? मुझ जैसी तो हजारों स्त्रियाँ आपको मिल सकती हैं। पुरुष के लिये प्रेयसी का विरह तो क्षणिक होता है, फिर आप अग्नि प्रवेश क्यों करें ? अफसोस ! मुझे धिक्कार है कि आपके चिरवियोग में भी मैं जीवित हूँ। आप में और मुझ में कितना अन्तर ? आप महान् सत्त्वशाली हैं—मैं कायर हूँ....निःसत्त्व हूँ....आप रत्न हैं....मैं काँचतुल्य हूँ....दोष आपका नहीं—दोष सास का भी नहीं—दोष माता-पिता का भी नहीं—दोष तो मेरे दुर्भाग्य का ही है।'

'अंजना ! अब विलाप करने का समय नहीं। अब तो तत्काल हमें पवनंजय को ढूँढ निकालना चाहिये।' मानसवेग ने अंजना को आश्वासन दिया।

'जी हाँ, अब तो हमें अविलम्ब यहाँ से प्रस्थान करना चाहिये।' सेनापति ने कहा।

'परन्तु हम कहाँ........?'

'आप इस वात की चिन्ता न करें। प्रहसित ने मुझे निशानी दे रक्खी है। हमें वहीं पहुँचना है, फिर हम देख लेंगे।'

'वस, तव तो हम तैयार हो जाते हैं। अंजना चलो, तुम सव तैयार हो जाओ।'

मानसवेग का विमान तैयार हो चुका था। अंजना, हनुमान, वसंततिलका, मानसवेग, अंजना की मामियों आदि ने विमान

में आसन ग्रहण कर लिये। सेनापति ने भी अपना विमान सज्ज-कर प्रयाण किया। दोनों विमान वैताढ्य पर्वत की ऊँची ऊँची गिरिमालाओं पर होकर उड़ने लगे। सेनापति का विमान आगे था और मानसवेग का विमान पीछे था।

+ + +

प्रहसित भूतवन पर होकर पूर्ण सजगता के साथ विमान चला रहा था। राजा प्रह्लाद और महामन्त्री इतनी ही साव-धानी के साथ भूतवन पर दृष्टि डालकर पवनंजय को ढूँढ रहे थे। एक चक्कर लगाया....दूसरा और तीसरा चक्कर भी लगाया परन्तु कोई पता न चला। तब महामन्त्री ने कहा :

'विमानों को वन में ही यदि कोई स्थान दिखाई दे तो वहाँ उतारें।'

'पर, जरा ठहरिये। हम लोग उत्तर की ओर तो अभी तक गए ही नहीं। उस ओर जा आएँ, फिर उचित स्थल पर विमानों को उतारेंगे।' प्रहसित ने कहा।

विमान उत्तर की ओर मुड़ा। कुछ आगे बढ़ा। इतने में उनके कानों में आवाज सुनाई दी।

'प्रहसित ! विमान रोक दे। कोई आवाज सुनाई दे रही है।' प्रह्लाद राजा ने विमान स्तंभित करने की आज्ञा दी और किस ओर से आवाज आ रही है, इस पर ध्यान लगाने लगे। आवाज निकट से ही आ रही हो, ऐसा लग रहा था। शांत वातावरण में शब्द भी स्पष्ट सुनाई दे रहे थे।

'हे वनदेवता ! आप मेरी हृदय व्यथा सुनें। मैं विद्याधर राजा प्रह्लाद का पवनंजय नामक पुत्र हूँ । महासती अंजना मेरी पत्नी है। वह निर्दोष होते हुए भी मुझ दुष्टबुद्धि ने व्याह होते ही उसका त्याग किया। उसे दुःख के दावानल में झोंक दी। उसका तिरस्कार—अवहेलना कर मैं युद्ध यात्रा में चला गया, परन्तु देववशात् मान सरोवर के तट पर मुझे अपनी भूल समझ में आई और उस रात को गुप्त रूप से मित्र प्रहसित को साथ लेकर मैं अंजना के महल में लौटा। रात वहाँ विताई। स्वतन्त्रता-पूर्वक उसके साथ भोग क्रीड़ा कर प्रभात होने पर उसे मेरे आगमन के स्मृति चिह्न के रूप में मुद्रिका देकर माता-पिता को भी मिले विना मैं रण यात्रा में चला गया।

हे वन देवता ! वह सती गर्भवती हुई। माँ ने उसे कलंकित कर निकाल दी। मेरी गम्भीर भूल के परिणाम-स्वरूप वह सती पुनः दुःख के गर्त में ढकेल दी गई। मेरे अज्ञानवश ....मेरी विचार-हीनता के कारण उस निर्दोष सती की दारुण स्थिति हुई। मैंने उसे पृथ्वी के कोने कोने में ढूँढा पर वह न मिली जो न मिली। कहाँ से मिले ? समुद्र में गिरा हुआ रत्न कहाँ से मिले ? अव जीवित रह कर उसके विरह का दुःख मुझसे सहन नहीं हो सकेगा। अतः मैं अपनी देह अग्नि में होम देता हूँ।

हे वन देवता ! यदि वह मेरी प्रिया आपको दिख जाए, तो उसे कहना कि तेरे वियोग में पीड़ित तेरा पति अग्नि में प्रवेश कर चुका है।'

चित्त में श्री नवकारमन्त्र का स्मरण कर प्रज्वलित काष्ठ की चित्ता में कूदने के लिए वह उछला पर....

विमान में से राजा प्रह्लाद विद्युत् गति से नीचे उतर आए और आकाश में ही पवनंजय को पीछे से भुजाओं में बाँध लिया। पवनंजय ने स्वयं को छुड़ाने का खूब प्रयत्न किया। वह झुँझला उठा।

'कौन है यह विघ्न करने वाला ? प्रिया के वियोग से पीड़ित मुझे अग्नि में राख हो जाने दो....मेरे मार्ग में बाधक न बनो।'

'अन्य कोई नहीं बेटा, तेरा पापी पिता हूँ।' आँखों से गिरते अविरल आँसुओं के साथ प्रह्लाद ने पवनंजय से कहा।

'बेटा ! क्षमा करो। निर्दोष पुत्र वधू के साथ मैंने जो अन्याय किया....मेरा वह पाप अक्षम्य है....एक विचारहीन साहस तेरी माँ ने किया है—तू ऐसा साहस न कर। तू धीर है—स्थिर बन।' प्रह्लाद पवनंजय को समझाने का प्रयत्न करने लगे। केतुमती भी सिसकियाँ भर भर कर पवनंजय को अग्नि में न गिरने के लिए प्रार्थना करने लगी। प्रहसित और महामंत्री आकाश में ही विमान को घुमाते हुए भेजे हुए सेनापतियों के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। चारों दिशाओं में दूर तक दृष्टि दौड़ाने लगे।

इतने में सेनापति और मानसवेग के विमान तीव्र गति से आते हुए दिखाई दिये। प्रहसित का हृदय नाच उठा। उसने आवाज लगाई।

'महाराजा प्रह्लाद की जय हो। महासती को लेकर सेनापति आ रहे हैं।' प्रहसित ने अपना विमान आगंतुक विमानों की ओर मोड़ा और आदित्यपुर का ध्वज लहरा दिया। दूसरी

ओर से सेनापति ने भी ध्वज फहराया। सुभटों ने जयजयारव से भूतवन को गूँजायमान कर दिया। विमान नजदीक आ गए, प्रहसित ने मानसवेग के विमान के पास जाकर अंजना और हनुमान को सकुशल देखकर महान् हर्ष का अनुभव किया। विमान को आगे करके प्रहसित सबको चिता जहाँ प्रज्ज्वलित हो रही थी वहाँ ले आया। विमान को उचित स्थान पर उतार कर सभी वेग के साथ पवनंजय के पास आ पहुँचे। मानसवेग और अंजना ने राजा प्रह्लाद के चरणों में प्रणाम किया।

प्रह्लाद की आँखों से हर्षाश्रु टपक पड़े। उन्होंने मानसवेग को गले लगाया। छोटे से हनुमान को गोद में उठाकर जकड़ दिया। केतुमती अंजना की ओर देखकर रो पड़ी।

'बेटी, मुझे क्षमा कर—' केतुमती अंजना के चरणों में गिरने के लिए आगे बढ़ी कि अंजना ने दोनो हाथों से केतुमती को पकड ली।

'माताजी, आपका कोई दोष नहीं। दोष मेरे दुर्भाग्य का ही है।' अंजना ने केतुमती की व्यथा हल्की की और पवनंजय को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

प्रहसित का हृदय प्रसन्न हो गया। वह एक ओर खड़ा होकर पवनंजय और अंजना को देखने लगा। उसकी कल्पना-सृष्टि में इन दोनों के जीवन के भूतकाल के प्रसंग उपस्थित होकर विलीन होते गए। संसार की असारता समझने के लिए इसके सिवाय दूसरा और कौन सा उत्तम दृष्टांत मिल सकता है?

'राजन्! आपने वास्तव में मेरे परिवार को दुःख के

सागर में से बचा लिया है।' प्रह्लाद ने मानसवेग का गद्‌गद् कंठ से आभार माना।

'महाराजा ! मैं तो निमित्त मात्र हूँ। बाकी तो अंजना का पुण्य वल ही उसका सहायक बना है।' मानसवेग ने नम्रता-पूर्वक कहा।

'आप मेरे सभी संबंधियो में श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं। आप ही मेरे सच्चे वन्धु हैं। मेरे वंश परम्परा की आधारभूत मेरी पुत्र वधू की रक्षा कर आपने मेरे समग्र परिवार को उपकृत किया है।' प्रह्लाद ने मानसवेग की पुनः पुनः प्रशंसा की।

'हाँ, और यदि इन्होंने मेरी पुत्रवधू की रक्षा न की होती तो और यह न मिली होती तो मैं भी जीवित नहीं रह सकती थी।' केतुमती ने कहा। केतुमती हनुमान को अपनी गोद में उठाकर बड़ी प्रसन्न हो रही थी। पोते का अनुपम रूप-लावण्य देखकर और उसकी तुतलाती वाणी सुनकर केतुमती हर्ष से पागल हो रही थी।

महाराजा प्रह्लाद ने सेनापति को आज्ञा दी :

'सेनापति जी ! यहीं पर भव्य महोत्सव मनाने की तैयारी करो।'

'जैसी महाराजा की आज्ञा।' सेनापति ने प्रह्लाद को प्रणाम किया और विद्याशक्ति से तत्काल भव्य उद्यान की रचना कर दी। रमणीय जिन मन्दिर खड़ा कर दिया। भूतवन को थोड़े से काल के लिये जिनेन्द्र वन बना दिया। सुन्दर प्रासाद भी खड़े कर दिये।

दूसरी ओर दो सिपाहियों को तुरन्त महेन्द्र नगर रवाना किया और राजा महेन्द्र को सपरिवार बुला लाने की आज्ञा दी। सिपाही विमान द्वारा महेन्द्रपुर पहुँचे और राजा महेन्द्र को शुभ समाचार दिये। महेन्द्र सम्पूर्ण परिवार के साथ भूत-वन में आ पहुँचे।

सभी स्वजन मिले। आनन्द की सीमा न रही। उमड़ते हुए आनन्द को जिन भक्ति में लगा दिया। गीत, नृत्य और अनेक प्रकार की पूजन सामग्री से परमात्मा जिनेश्वरदेव की भक्ति की। महोत्सव की पूर्णाहुति में सबने प्रीति भोज किये और अपने अपने नगर में पवनंजय और हनुमान को ले जाने के लिये आग्रह करने लगे। इस बीच मानसवेग ने सबसे प्रार्थना की :

'यहाँ से कोई अलग न हो। यहाँ से सब हनुपुर पधारें। मेरा आप सबसे नम्र निवेदन है। वहाँ से आप अपने अपने नगरों में जा सकेंगे।'

मानसवेग के वचन का उल्लंघन कौन कर सकता था? प्रह्लाद और महेन्द्र दोनों राजा मानसवेग के उपकार के ऋणी थे। सब सहमत हुए। उपकारकर्ता के महान् उपकार के प्रति कृतज्ञता यदि मनुष्य में न हो, तो वह मनुष्य ही नहीं।

विमान तैयार हुए। सभी अपने अपने विमानों में बैठ गए। सबसे आगे प्रहसित का विमान पवनंजय, अंजना, हनुमान और वसंततिलका को लेकर आकाश मार्ग पर गतिशील हुआ। उसके पीछे प्रह्लाद और महेन्द्र के विमानों की उड़ान हुई। सब के पीछे सेनापति का विमान उड़ने लगा।

✪

२८. हनुमान युद्ध के मार्ग पर

किस मनुष्य के जीवन में शंका और संकोच का उदय नहीं होता ? कौन से प्राणी के जीवनकाल में विघ्न उपस्थित नहीं हुए ? संसार में निवास करने वाला हो या संसार त्यागी हो, जब तक आत्मा देहयुक्त है, तब तक बाह्य-आंतरिक विघ्न उसके जीवन पर प्रहार करते ही रहते हैं। सत्त्वहीन मनुष्य इन विघ्नों का बलिदान हो जाता है, जबकि सत्त्वशील मनुष्य विघ्नों को पाँवों तले कुचलकर आगे बढ़ता जाता है।

गुणवान् आत्मा पर भी जगत् के प्रहार होते हैं और दुर्जन भी इन प्रहारों से मुक्त नहीं रहते। अंजना जैसी महासती धैर्य एवं वीरतापूर्वक आपत्तियों के तूफानों में निश्चल रही। तूफान शांत हो गया....पुनः स्वस्थता और प्रसन्नता का डंका बजा।

सभी हनुपुर आ पहुँचे। राजा मानसवेग ने सम्पूर्ण नगर में महोत्सव की घोषणा की। आठ दिन तक विद्याधरों ने ज़िन मंदिरों में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभुभक्ति की। मानसवेग ने मुक्त हस्त से दान दिया। हनुपुर की गली-गली में नाटक आयोजित हुए। अंजना और पवनंजय के घर-घर गुणगान होने लगे।

प्रह्लाद और महेन्द्र ने जाने के लिये अनुमति माँगी। मानसवेग ने और अधिक ठहरने के लिये आग्रह किया परन्तु दोनों राजा अपने-अपने राज्य सूने छोड़कर आये थे, गए विना चल नहीं सकता था। मानसवेग ने जाने की अनुमति दी। प्रह्लाद ने पवनंजय–अंजना और हनुमान को आदित्यपुर आने के लिए कहा, परन्तु पवनंजय की इच्छा अब आदित्यपुर जाने की नहीं थी। इसी प्रकार अंजना और पवनंजय को आदित्य-पुर भेजने के लिये मानसवेग भी प्रसन्न नहीं थे, प्रह्लाद और केतुमती ने वड़ा आग्रह किया, परन्तु मानसवेग का मन न माना।

'पिताजी! आप सोचते होंगे कि आपके प्रति हमें रोप है, परन्तु अंजना और हनुमान यहाँ अनुकूलता का अनुभव कर रहे हैं तथा माताजी भी इन्हें भेजने में प्रसन्न नहीं हैं। साथ ही आदित्यपुर किसी प्रसंग पर आने में कहाँ देर होनी है?' पवनं-जय ने प्रह्लाद से कहा।

प्रह्लाद की आँखों में आँसू छलक पड़े। उसके वयोवृद्ध मुख पर दु:ख की रेखाएँ उभर आईं।

यह तो निश्चित् हो चुका था कि अंजना के निष्कलंक होने पर भी केतुमती ने उसे कलंकित की थी। इसमें राजा प्रह्लाद ने भी साथ दिया था। मानो अपने अपराध की सजा अब होती हो, ऐसा प्रह्लाद को लगा। पवनंजय–अंजना और हनुमान को लिये विना आदित्यपुर जाना–यह भी लज्जाजनक स्थिति थी। केतुमती ने पवनंजय को समझाया, परन्तु पवनंजय ने तो स्पष्ट वात कही।

राज्य की संपूर्ण जानकारी आपको प्राप्त करनी है । मन्त्रीवर्ग का भी परिचय प्राप्त करना है.........'

मानसवेग ने पवनंजय के लिए एक भव्य महल तैयार करवा दिया था। शुभमुहूर्त में पवनंजय ने उसमें निवास शुरू कर दिया। प्रहसित और वसन्ततिलका को भी पवनंजय ने अपने महल में ही रक्खा।

एक दिन अंजना ने अवसर देखकर पवनंजय से हँसते हँसते कहा :—

'इस वसन्ततिलका को तो आपको अविवाहित ही रखनी है क्या ?'

'यह तो तेरे सोचने की बात है न।'

'मैं क्या सोचूँ ? इसे तो तेरे सिवाय और कोई प्रिय ही नहीं लगेगा।'

'मुझे एक विचार आता है.........'

'क्या ?'

'प्रहसित और वसन्ततिलका.........'

'ओ हो ! विचार तो सुन्दर किया है.........तू इन दोनों को पूछ लेना।'

'नहीं जी ! मैं वसन्ता से पूछूँगी, आप प्रहसित से ! ठीक है न ?'

'ठीक है तो। परन्तु बात पक्की तू करवा देना। तेरी बात दोनों को मान्य होगी।'

'अंजना शरमा गई।

× × ×

हनुपुर में पवनंजय-अंजना और हनुमान के दिन आनन्द-पूर्वक व्यतीत होने लगे। दूसरी ओर प्रहसित और वसन्ततिलका की शादी भी हो गई। दोनों पवनंजय के महलों में ही रहकर जीवनकाल व्यतीत करने लगे। हनुमान का शैशवकाल भी श्रद्धा-संस्कार तथा शिक्षण में बीतने लगा।

पवनंजय ने हनुमान को भिन्न भिन्न कलाओं का शिक्षण देने के लिए निपुण आचार्यों को नियुक्त किया तथा स्वयं ने भी उसके शिक्षण पर ध्यान देना शुरू किया। सभी प्रकार की शस्त्रकला और युद्ध कला में हनुमान निपुण होने लगा। बाहु-बल तो वैसे ही अपूर्व था। उसमें जहाँ शास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार शिक्षण मिला वहाँ तो हनुमान की शक्ति अद्वितीय और अजेय हो गई।

जैसे जैसे हनुमान की वय बढ़ती चली, वैसे वैसे अंजना ने हनुमान को आत्म ज्ञान भी देना शुरू किया। आत्मा का मूल स्वरूप समझाया। आत्मा की कर्ममलिन विभावदशा का परिचय कराया। पुण्य तथा पाप के सिद्धान्त पर श्रद्धा स्थिर की। कर्मो पर टूट पड़ने का लक्ष्य दृढ़ किया—उसके लिए परमकृपालु परमात्मा श्री जिनेश्वरदेव की आराधना-उपासना का अपूर्व मार्ग बताया।

नित्य रात्रि की नीरवता में अंजना हनुमान को तीर्थंकर भगवंतों के पराक्रमपूर्ण जीवन चरित्र सुनाती और हनुमान उसमें तल्लीन हो जाता था। उसका हृदय नाच उठता··· उसके अंतःकरण की गहराई में वीतराग के प्रति राग जाग उठा। जीवन का अंतिम साध्य उसे मुक्ति की प्राप्ति दिखी।

इन सब बातों में अंजना एक लक्ष्य नहीं भूलती थी···कि

कहीं पवनंजय के साथ का अपना भूतकाल हनुमान के सामने न कह दिया जाए। पुत्र के हृदय में पिता के प्रति राग को जरा भी चोट न पहुँचे। इसके लिए पिता का छोटा भी दोष पुत्र को नहीं कहना चाहिये—यह बात महासती भलीभांति समझती थी।

यह सत्य सभी के समझ लेने जैसा है। माता अथवा पिता किसी को भी पारस्परिक कोई दोष अपनी संतानों को नहीं कहना चाहिये। यदि कहेंगे तो संतानों के हृदय में मातापिता के प्रति आदरभाव नहीं टिकेगा, प्रेमभाव भी घट जाएगा।

वरसों वीतते चले। हनुमान युवावस्था में प्रविष्ट हुए। अनेक विद्याएँ सिद्ध की। कला, गुण और सुसंस्कारों से हनुमान का जीवन उन्नत हुआ और फूला-फला। छोटे-वड़े पराक्रमों से हनुमान ने सवके दिल जीत लिये। इनमें भी अंजना के हर्ष की तो कोई सीमा ही न रही।

इस प्रकार हनुपुर में आनंद मंगल हो रहा था। उधर लंका में रावण भारी परेशानी में पड़ा हुआ था। उसके चित्त में वरुण कांटे की भाँति चुभता था। उसका अभिमानी मन वरुण पर विजय प्राप्त करने हेतु आतुर हो रहा था। पवनंजय ने वरुण के साथ मित्रता का संवंध जोड़कर एक वार तो विशाल नरसंहार को वचाया था, परन्तु वरुण जैसे एक सामान्य राजा को वह पराजित न कर सका, इसका डंक नित्य प्रतिपल रावण को सता रहा था और कोई भी वहाना यदि मिल जाए तो पुनः वरुण के साथ संग्राम कर उसे अपना आज्ञांकित राजा बनाकर अपनी विजयाभिलाषा पूर्ण करने के लिये वह व्याकुल हो रहा था।

रात का समय था। लंका निद्राधीन हो चुकी थी। राज-महल में संतरियों के पैरों की आहट के सिवाय सर्वत्र शांति थी। रावण को नींद नहीं आ रही थी। वह अपने विशाल राज्य की कल्पना में प्रसन्न हो रहा था। उसमें वरुण बाधक हो रहा था। किसी भी उपाय से उसे दूर करने का उसने निर्णय किया था। उसने शयनकक्ष के एक कोने में जाकर एक स्थान पर पांव दबाया। फौरन शयनकक्ष के द्वार पर खड़ा हुआ सशस्त्र सैनिक अंदर प्रविष्ट हुआ और प्रणाम कर खड़ा रहा।

'कुम्भकरण, विभीषण और इन्द्रजीत को बुला ला।'

'जैसी महाराज की आज्ञा।' पुनः नमन कर सैनिक उलटे पांवों शयनकक्ष से बाहर निकल गया। रावण तीनों की प्रतीक्षा में पलंग पर बैठ गया। थोड़े ही क्षणों में कुम्भकर्ण ने प्रवेश किया। उसके पीछे ही विभीषण और इन्द्रजीत भी आ गए। तीनों ने रावण के सामने आसन ग्रहण किये।

'क्यों, इस समय रात को इतनी देर से कैसे बुलाना पड़ा?' कुम्भकर्ण ने स्वस्थ होकर प्रश्न किया।

'क्या करूँ? नींद नहीं आती।'

'ऐसी क्या बात है, बड़े भाई!' विभीषण ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा।

'वरुण मेरी नींद का हरण कर रहा है।'

'तो क्या वह लंका पर चढ़ आया है!' इन्द्र खड़ा हो गया।

'नहीं, भाई नहीं। जब तक इस अभिमानी का अभिमान खंडित न करूँ तब तक मुझे नींद नहीं आएगी,' रावण ने अपनी बात स्पष्ट रूप से कही।

'परन्तु, हमने तो उसके साथ मित्रता का सम्वन्ध जोड़ा है
....अव क्या हो सकता है?' विभीषण ने चिंता व्यक्त की।

'शत्रु के साथ भला मित्रता कैसी? यह तो खर दूषण को
एक वार मुक्त करने के लिये पवनंजय ने एक चाल चली थी—'
कुंभकर्ण की ओर देख कर रावण ने कहा।

'कुछ भी किया हो, परन्तु हमने उसके सामने मित्रता व्यक्त
की है और यह बात प्रकाशित हो चुकी है। अव यदि हम आक्र-
मण करते है तो विश्व के सामने हम अन्यायी सिद्ध होते हैं।'

विभीषण ने नीति का प्रश्न आगे रक्खा—परन्तु रावण को
वह नहीं जँचा।

'मैं भी इसी उधेड़वुन में हूँ। और तुम्हें यहाँ वुलवाया
है कि अव क्या करें।'

रावण जरा व्यग्र हो गया। तीनों भाई और इन्द्रजीत
सोच में डूव गए। यदि वरुण पर आक्रमण किया जाय तो
लंकापति वदनाम होता है और न करने पर लंकापति के सार्व-
भौमत्व में कमी रह जाती है। लंकापति को बुरी तरह यह
वात चुभ रही है कि अव क्या करना?'

'मुझे एक उपाय सूझता है,' इन्द्रजीत बोला।

'कैसा उपाय?'

'हमें ऐसा कोई निश्चित् कारण ढूँढ निकालना चाहिये कि
वरुण ने मित्रता का भंग किया है।'

परन्तु वरुण के मित्रता का भंग करने का एक भी कारण न
मिले तो?' रावण ने शंका की।

'तो हमें कृत्रिम कारण उपस्थित कर उसे चेतावनी देनी

चाहिये कि इस प्रकार यदि तुम मित्रता का भंग करोगे तो फिर बलात्कारपूर्वक हमें और प्रकार से कदम उठाने पड़ेंगे।'

इन्द्रजीत की गंदी राजनीति के दाँव की बात सुनकर विभीषण का मन नहीं माना। वह मौन रहा। परन्तु रावण विभीषण की नीतिप्रियता को जानता था। इन्द्रजीत की मुत्सद्दीपूर्ण बात रावण को जँच गई। अभी तुरन्त इतने में ही बात समेटने के लिए रावण ने कहा।

मैं भी इस विषय में सोचूँगा, तुम भी सभी सोचना। तुम तीनों ने मेरी चिंता बाँट ली इसलिये अब मेरा बोझ हल्का हो गया है! अब मुझे नींद आएगी।'

रावण ने तीनों को जाने की अनुमति दी और स्वयं भी सो गया। इन्द्रजीत अपने पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिये अनेक विचार दौड़ाने लगा, जब कि विभीषण किसी भी अन्यायपूर्ण रीति से रावण की इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के लिये सहमत नहीं था। वह जानता था कि वरुण ने अब तक मैत्री सम्बन्ध को बराबर टिका रक्खा है। उसे गलत प्रकार से बदनाम कर आक्रमण नहीं करना चाहिये। इधर कुम्भकर्ण को तो कुछ भी सोचना ही नहीं था। उसे तो रावण जैसी आज्ञा दे, तदनुसार शत्रुओं का सामना करना था।

रावण ने दूसरे दिन प्रातःकाल जिन पूजा आदि दैनिक कृत्यों को पूर्ण कर तुरन्त ही इन्द्रजीत को बुलाया।

'तुमने फिर रात को आगे कुछ सोचा?'

'हाँ, पिताजी, मैंने बहुत सोचा.......'

'तो कह।'

'जी हाँ........'

'असत्य बात। सर्वथा असत्य........वरुण चीख पड़ा।

'लंकापति के चर पुरुषों ने पता लगाया है कि आपके सिपाही लंका के प्रदेश में अपना प्रभुत्व जमाने लगे हैं। लंकापति को इस समाचार से भारी आघात पहुँचा है और यदि आपकी यह प्रवृत्ति तत्काल नहीं रुकती है तो लंकापति तत्काल कठोर कदम उठायेंगे।'

'बिलकुल निराधार यह बात है। हमारे सिपाही कभी भी ऐसा कदम नहीं उठायेंगे—ऐसी हमें पूर्ण श्रद्धा है,' राजीव ने स्पष्टीकरण दिया।

'तो क्या लंकापति के चर-पुरुषों ने झूठी खबर दी है,' ऐसा ?

'हाँ, सर्वथा झूठी। यह एक बनावटी बात खड़ी करके बात का मर्म बताया है।'

'आपकी ओर से लंकापति को क्या संदेश देना है ?'

'संदेश लेकर हमारा दूत आएगा।' वरुणराज ने लंकापति के दूत को विदा किया और तुरन्त राजसभा विसर्जित की। पुण्डरिक, राजीव, महामन्त्री आदि को मन्त्रणालय में बुलाकर वरुणराज ने लंकापति को सन्देश भेजने के सम्बन्ध में गहन विचार विमर्श किया और अपने दूत को बुलाकर संदेश दिया:—

'लंकापति,

आपका संदेश मिला। हमारे मतानुसार आपको गलत सूचना दी गई है। हमारे सिपाहियों ने लंका के राज्य में पाँव फैलाए ही नहीं और न फैलाने की धारणा है।

मित्रता का सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए हम इच्छुक नहीं हैं। इसी में दोनों राज्यों की प्रजा अभय का सुख अनुभव कर सकती है ऐसी हमारी मान्यता है। आप भी निराधार समाचारों से आकर्षित होकर मैत्री-सम्बन्ध न तोड़ें, ऐसी हम अपेक्षा रखते हैं।'

संदेश लेकर दूत लंका के मार्ग पर रवाना हुआ। दूसरी ओर सजग और दीर्घदर्शी वरुण पुत्रों ने गुप्त रीति से राज्य के संरक्षण की प्रवृत्तियाँ शुरू कर दीं। वे रावण की नीति-रीति से परिचित थे।

दूत लंका की राजसभा में जाकर खड़ा रहा। लंकापति को प्रणाम कर उसने वरुण राज का सन्देश सुनाया। क्षण भर तो सन्देश सुनकर सभी स्तब्ध हो गए। बिभीषण को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसे अनभिज्ञ रखकर रावण ने यह कार्य आरम्भ किया था, परन्तु विचक्षण विभीषण इस परिस्थिति को समझ गया।

'वरुणराज से कहना कि तुम्हारे मधुर वचनों से लंकापति भुलावे में आ जाए, ऐसा बालक नहीं है। एक ओर लंका के प्रदेश में अनधिकृत प्रवेश करना है और दूसरी ओर मित्रता की बातें करती हैं, ऐसे दम्भ को मैं तनिक सहन करने वाला नहीं, परन्तु अभिमानी वरुण अपनी भूल को तत्काल इस प्रकार समझाने से स्वीकार नहीं करेगा। अब तो युद्ध भूमि पर ही मुझे इसे अपनी भूल स्वीकार करवानी होगी।'

'कहने का तात्पर्य ?' दूत ने स्पष्टीकरण माँगा।

'तात्पर्य नहीं समझा ? वरुणराज को इसके अपराध का

दण्ड युद्ध क्षेत्र में मिलेगा....' इन्द्रजीत ने रावरण की नीति का स्पष्टीकरण किया ।

'तो वरुणराज और उसके अद्वितीय पराक्रमी पुत्रों की अजेय शक्ति का परिचय प्राप्त करने के लिए शौक से पधारें, परन्तु इससे पूर्व अपने उन खर दूषण के अनुभवों का लाभ लेकर आएँ ।'

प्रत्युत्तर की अपेक्षा रक्खे विना दूत वहाँ से निकल पड़ा ।

रावण ने सेना को सज्ज होने का आह्वान किया । दूसरी ओर पाताल लंका से खर दूषण भी अपनी विशाल सेनाओं सहित आ पहुँचे । सुग्रीव भी अपने चुने हुए सैनिकों को लेकर लंका में आ गया । कई विद्याधर राजा भी आ पहुँचे ।

विद्याधर राजाओ को संदेश देने के लिये गए हुए दूतों में से एक दूत हनुपुर गया था पवनंजय को विशेष संदेश देने के लिए । सन्देश प्राप्त होते ही पवनंजय और मानसवेग लंका जाने के लिए तैयार हुए, परन्तु पिता और मामा को तैयार होते देखकर हनुमान वहाँ आए ।

'पिताजी ! युद्ध के लिए अब आपको नहीं जाना चाहिये । आप यहीं रहें । आप तो मुझे आज्ञा दें ।'

'भाई, इस युद्ध में तेरा काम नहीं । वरुण और उसके पुत्र प्रचण्ड शक्ति के धारक हैं । उनके सामने.......'

'पिताजी ! आप मुझे छोटा समझकर बात कर रहे हैं परन्तु पराक्रम में वय नहीं देखी जाती । अब एक बार मुझे जाने की अनुज्ञा दें, तभी आपको अपने पुत्र के पराक्रम की प्रतीति होगी ।'

मानसवेग तो जानते ही थे कि हनुमान का पराक्रम अद्वितीय है। उन्होंने किसी प्रकार की आनाकानी नहीं की, बल्कि हनुमान को जाने देने के लिए पवनंजय को समझाया। परन्तु ज्यों ही हनुमान के युद्ध में जाने की तैयारी के समाचार अंजना को मिले कि वह दौड़ी आई। वसंता दौड़ी आई, प्रहसित भी आ पहुँचा।

हनुमान का हाथ पकड़कर अंजना ने गद्गद् स्वर से कहा—

'पुत्र! तुझे अभी युद्ध में नहीं जाना चाहिये। तेरे बिना मैं एक क्षण भी रह न सकूँगी।'

'माताजी! आपको तो इस प्रसंग पर एक वीर माता को शोभा दे इस प्रकार मुझे विदा करना चाहिये। आप निश्चय समझें कि यह आपका पुत्र विजय प्राप्त कर सकुशल घर लौट आएगा।'

अंजना की आँखों से आँसू गिरने लगे। यह देखकर मामा मानसवेग ने अंजना को आश्वासन दिया और हनुमान के गिरने मात्र से पर्वत के शिखर के हुए चूरे वाला प्रसंग याद दिलाया। पुत्र का पराक्रम सारे विश्व में कीर्ति फैलाने वाला होगा....यह बात समझाई....अंत में हनुमान के साथ प्रहसित का जाना निश्चित् होने पर अंजना सहमत हुई।

बस! हनुमान के सेनापतित्व में युद्ध में जाने के लिए हजारों लाखों सैनिक नाच उठे। शुभ दिन और शुभ शकुन में अंजना ने वीर हनुमान को ललाट में कुंकुम का तिलक दिया और युद्ध के बाजों ने गगन को गूंजित कर दिया।



२६. वरुण पर विजय

रावण के प्रयाण की तैयारियाँ चल रही थीं, इतने में हनुमान हजारों वीर सुभटों के साथ आ पहुँचा। हनुमान को दूर से ही आता देखकर रावण बड़ा आनन्दित हुआ। रथ से उतर कर प्रहसित के साथ हनुमान रावण की ओर बढ़ा। रावण ने आगे आकर हनुमान को अपने बाहुपाश में बाँध लिया, मानो साक्षात् विजय को ही सामने आकर आलिंगन किया हो, ऐसा रावण को लगा। हनुमान की तेजस्वी मुखमुद्रा और सुदृढ़ अंगों को देखकर रावण ने उसके दुर्दान्त पराक्रम का अनुमान लगा लिया।

राज-पुरोहित ने मंगल श्लोक का पाठ किया, प्रयाण की भेरी बज उठी, और रावण का रथ गतिमय हुआ। रावण के पीछे ही हनुमान का रथ रक्खा गया था। रथ का सारथ्य प्रहसित ने सम्हाला था, हनुमान के रथ की पंक्ति में ही इन्द्रजीत का रथ चल रहा था। उनके पीछे कुम्भकर्ण, मेघवाहन और सुग्रीव के रथ शोभायमान हो रहे थे। उनके पीछे खर और दूषण के रथ दौड़ रहे थे।

अनेक विद्याधर राजा, शूरवीर सेनापतिगण, अश्व दल, पायदल, हस्तिदल के साथ वरुणपुरी की ओर बढ़े।

कुछ ही दिनों में वरुणपुरी के निकट जा पहुँचे । दूसरी ओर वरुण भी पूर्ण तैयारी से सज्ज होकर खड़ा था। वरुण के एक एक से बढ़ कर पराक्रमी पुत्र रावण की सेना को सजा देने के लिये अधीर हो रहे थे । अनेक शस्त्र विद्याओं तथा अस्त्र विद्याओं में पारंगत सेनापति लंकापति की प्रतीक्षा में उछल रहे थे ।

रण क्षेत्र से बारह कोस दूर रावण ने सेना का पड़ाव डाला और सूर्य अस्त हुआ । ऐसा लगता था मानो एक विशाल नगर बस गया हो । आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर रावण ने प्रथम दिन के युद्ध की व्यूह रचना कर डाली। प्रथम दिन युद्ध के सेनापति पद पर इन्द्रजीत का चयन हुआ । सभी निद्राधीन हुए । अंतिम प्रहर का श्रीगणेश हुआ कि जाग्रति की नौबत बजी । टपाटप एक के बाद एक दल युद्ध के मैदान की ओर रवाना होने लगा । अरुणोदय होते होते तो कुम्भकर्ण के आरक्षित सैन्य को छोड़कर समग्र सैन्य व्यूहाकार में मैदान में व्यवस्थित हो चुका था ।

वरुण के सैन्य का नेतृत्व पुण्डरिक कर रहा था । अनेक शस्त्रों से सज्ज होकर वह सबसे आगे रथारूढ़ होकर खड़ा था। उसके पक्ष में हीं राजीव का रथ व्यवस्थित किया गया था। ठीक उन दोनों के रथों के सामने इन्द्रजीत और मेघवाहन के रथ व्यवस्थित किये गए थे । उनके पीछे महेन्द्रपुरी का युवराज प्रसन्नकीर्ति अपने चुने हुए दस हजार घुड़सवारों के साथ खड़ा था । उसके दोनों ओर लंकापति के अतिप्रिय सेनापति खर और दूषण अपने कट्टर शत्रुओं का सामना करने के लिये रथ में सज्ज हो, बैठे थे।

जब कि थोड़ी दूर जहाँ वरुण का मुख्य सेनापति योगेश

पचास हज़ार की सेना के साथ खड़ा था, उसके सामने ही सूर्य समान तेजस्वी हनुमान पचास हज़ार चुने हुए सैनिकों का नेतृत्व कर रहा था।

उदयाचल पर सहस्त्ररश्मि प्रकट हुआ और दोनों पक्षों में युद्धारंभ करने के लिए बाजे बज उठे। इन्द्रजीत ने इष्टदेव का स्मरण कर तीर छोड़ा। वह सीधा पुण्डरिक के कान के पास होकर निकल गया, पुण्डरिक ने सतत वेग से दस तीर छोड़े। इन्द्रजीत ने दसों तीरों को बीच में ही काट डाले और एक क्षण में पच्चीस तीर छोड़कर पुण्डरिक को उलझन में डालने के लिए अपने रथ को आगे बढ़ाया; परन्तु उधर तो पुण्डरिक ने दस दस तीर छोड़कर इन्द्रजीत के रथ के अश्वों को आगे बढ़ने से रोक दिया।

दूसरी ओर राजीव ने प्राणों की बाजी लगाकर लंका की सेना को धराशायी करना शुरू किया। उसके एक एक तीर ने एक एक सैनिक को भूशरण करना शुरू किया। मेघवाहन ने राजीव पर बाणों की वर्षा करनी शुरू कर दी, परन्तु राजीव उनकी परवाह किये बिना, मेघवाहन पर दस तीर छोड़कर उसके धनुष को तोड़ डाला। मेघवाहन ने दूसरा धनुष उठाया और राजीव के रथ के अश्वों को घायल किया। इतने में तो मेघवाहन के दोनों ओर खर और दूषण आ पहुँचे और राजीव पर घोर आक्रमण शुरू किया, परन्तु राजीव अति वीरतापूर्वक टूट पड़ने को तैयार हो रहा था। उसने दस तीरों से खर के मुकुट को उड़ा दिया और दस तीरों से दूषण के कवच को भेद डाला। साथ ही पचास तीरों की माला छोड़कर मेघवाहन के अश्वों को भूशरण कर दिया। मेघवाहन ने दूषण के रथ में स्थान लिया।

पुण्डरिक ने इन्द्रजीत को थकाना शुरू किया। जबकि वरुण की सेना ने लंका की सेना की खबर ले ली। अभी तो प्रथम प्रहर पूर्ण हुआ भी न था कि लंका की पहली पंक्ति की हजारों सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई। पुण्डरिक ने अचानक आक्रमण किया और लंका की सेना को एक कोस पीछे खदेड़ दिया। वरुण की सेना का जोश पूर्णिमा के समुद्री ज्वार की भाँति बढ़ता जा रहा था, जबकि लंका की सेना निराशा की ओर झुक रही थी।

दूर हनुमान वरुण के सेनापति योगेश को नचा रहा था। हनुमान ने देखा कि पुण्डरिक इन्द्रजीत की ओर मोरचे को बढ़ा रहा है—लंका की सेना पीछे हट रही है। उसने प्रहसित से कहा :

'अपना रथ पुण्डरिक की ओर मोड़ो।'

'अभी थोड़ी देर है, प्रथम प्रहर समाप्त होने दो....' प्रहसित ने कहा।

प्रथम प्रहर पूर्ण होने में कुछ ही क्षणों की देर थी। इस बीच हनुमान ने योगेश के साथ का दांव समेटना शुरू किया। जानबूझकर हनुमान जरा पीछे हटा। योगेश हर्षित हो गया और हनुमान की ओर आगे बढ़ा। हनुमान ने उसे जरा आगे आने दिया और ज्योंही ठीक ठीक आगे आ गया कि प्रहसित ने रथ को चक्राकार में गति दी। योगेश के रथ के चारों ओर वायुवेग से हनुमान का रथ घूमने लगा। हनुमान ने बाणों की सतत वर्षा से योगश को भारी परेशानी में डाल दिया। इतना ही नहीं, परन्तु योगेश के धनुष को भी तोड़ डाला। रथ के अश्वों

को जर्जरित कर डाले तथा रथ के पहियों को भी शिथिल कर दिये।

प्रथम प्रहर पूर्ण हुआ कि प्रहसित ने हनुमान के रथ को पुण्डरिक की ओर दौड़ा दिया। योगेश ने मुक्ति की सांस ली। हनुमान का रथ पुण्डरिक के सामने आकर खड़ा हो गया, इतने में पुण्डरिक ने हनुमान को बेचैन करने के लिए तीरों का एकसा प्रहार शुरू किया, परन्तु हनुमान ने पुण्डरिक के एक एक तीर को प्रतिपक्षी तीर से तोड़ डाला और बड़ी चतुराई से पुण्डरिक पर दस वाण छोड़कर उसके धनुप को तोड़ डाला। पुण्डरिक ने दूसरा धनुप उठाया और प्रलय का दृश्य खड़ा कर दिया। उसने क्रोधातुर हो कर हनुमान पर वाणों की वर्षा शुरू की। हनुमान के रथ के अश्व पीछे हटने लगे। हनुमान ने शरविद्या का स्मरण कर बाण छोड़ा। एक में से सैकड़ों बाणों का सृजन हो गया। वाणों की अविरल वर्षा में पुण्डरिक हनुमान को देख सका नहीं, जबकि हनुमान ने पुण्डरिक का निशाना लेकर एक के वाद एक अभिमंत्रित वाण छोड़ना शुरू किया। पुण्डरिक घबराया। इतने में राजीव उसके पक्ष में आ पहुँचा। उसने हनुमान को थकाना शुरू किया। इधर महेन्द्रपुर का युवराज प्रसन्नकीर्ति हनुमान के पक्ष में आ पहुँचा और हनुमान के साथ लड़ते हुए पुण्डरिक का प्रवल सामना करना शुरू किया। पुण्डरिक प्रसन्नकीर्ति की ओर मड़ा तो हनुमान ने राजीव पर एक साथ पचास वाण छोड़ दिये, और राजीव के रथ के अश्वों को यमसदन पहुँचा दिया। राजीव ने छलांग भर कर दूसरे रथ में स्थान ग्रहण किया और हनुमान पर भयंकर आक्रमण किया।

हनुमान का रथ प्रहसित ने पीछे हटाया। राजीव आगे

वढ़ा। प्रहसित ने राजीव को अच्छी तरह आगे वढ़ने दिया और जहाँ इच्छानुसार आगे वढ़ आया कि प्रहसित ने रथ को चक्राकार घुमाना शुरू किया। हनुमान ने विचित्र कला से तीरों की चारों ओर वर्षा कर राजीव को घेर लिया। राजीव को घिरा हुआ देखकर पुण्डरिक उसकी ओर मुड़ा, परन्तु प्रसन्नकीर्ति ने उसे आगे वढ़ने से रोक दिया………… पुन्डरिक के कालमुख समान वाणों के आगे प्रसन्नकीर्ति टिक नहीं सका। उसका कवच टूट गया। पुण्डरिक आगे वढ़ा………परन्तु वहीं इन्द्रजीत ने उसे रोक दिया। इन्द्रजीत ने पुण्डरिक को छकाना शुरू किया। पुण्डरिक इन्द्रजीत पर बुभुक्षित भेड़िये की भाँति टूट पड़ा। पुनः इन्द्रजीत को पीछे हटना पड़ा। परन्तु इस अवधि में हनुमान ने राजीव के रथ के अश्वों का काम तमाम कर दिया। दूसरा रथ प्राप्त हो सके ऐसी स्थिति न थी। राजीव वेचैन हुआ। रथ से वह भूमि पर कूद पड़ा और हनुमान के वाणों का सामना करने लगा। परन्तु अव हनुमान ने जरा भी समय खोए विना राजीव के धनुष को तोड़ डाला और नागशस्त्र का स्मरण किया तथा राजीव पर छोड़ा। राजीव भयंकर सर्पो से वद्ध हो गया। एक क्षण में ही हनुमान ने उसे उठाकर अपने रथ में डाल दिया।

लंका की सेना में हर्षध्वनि होने लगी। पुण्डरिक झुँझला उठा। अपने भाई को शत्रु के हाथ में गया जानकार उसके अंग-अंग में क्रोधाग्नि भभक उठी। दूसरी ओर वरुण के अन्य पराक्रमी पुत्र सुमंगल, स्वस्तिक, वासव आदि भी पुण्डरिक के पार्श्व में आ पहुँचे और हनुमान को जीवित पकड़ लेने के दृढ़ संकल्प से जूझने लगे।

दूसरा प्रहर पूर्ण हुआ था। लंका की सेना हनुमान के परा-

क्रम पर बलैयां ले रहा था। जबकि पुण्डरिक हनुमान के सामने दाँत पीसता हुआ युद्ध कर रहा था। दूर से भुवनालंकार हस्ति पर बैठा हुआ रावण हनुमान के पराक्रम को देख रहा था। उसके पास ही में महान् पराक्रमी सुग्रीव रथारुढ़ होकर खड़ा था। हनुमान के राजीव को जीवित पकड़ लेने का पता चलने पर सुग्रीव हनुमान के पराक्रम पर लट्टू हो गया। रावण ने तुरन्त सुग्रीव को हनुमान के पास पहुँच जाने की आज्ञा दी। सुग्रीव हजारों चुने हुए सैनिको के साथ हनुमान के पास आ पहुँचा....पुण्डरिक के भाई सुमंगल, स्वस्तिक और वासव आदि को थकाने लगा। सुग्रीव अनेक भयंकर युद्धों में लड़ा हुआ पराक्रमी राजा था। उसने ऐसे प्रबल वेग से आक्रमण किया कि सुमंगल आदि को पीछे हटना पड़ा। सुग्रीव पुण्डरिक की ओर मुड़ा। हनुमान को थोड़ी सी राहत मिले, इस दृष्टिकोण से सुग्रीव ने पुन्डरिक को ललकारा। पुण्डरिक और सुग्रीव के बीच घातक युद्ध ठना। कोई भी किसी से हार स्वीकार नहीं करता था। पुण्डरिक के भाईयों ने लंका की सेना में हाहाकार मचा दिया। प्रसन्नकीर्ति, खर, दूषण आदि सामना कर रहे थे। वरुण की वीर सेना उन्हें भी थका रही थी।

तीसरा प्रहर भी पूर्ण होने की तैयारी थी। पुण्डरिक सुग्रीव से जरा भी पीछे नहीं हट रहा था। हनुमान ने सुग्रीव का स्थान लिया। और पुण्डरिक पर पच्चीस बाण छोड़कर उसे अपनी ओर आकर्षित किया। सुग्रीव वरुण की सेना पर टूट पड़ा और त्राहि-त्राहि मचवा दी।

हनुमान ने प्राणों की परवाह किये विना पुण्डरिक पर टूट पड़ना शुरू किया। प्रहसित ने हनुमान के रथ को पुण्डरिक के रथ के इतना निकट ले लिया कि एक दूसरे पर बाणवर्षा न

कर सकें। हनुमान ने गदा उठाई। पुण्डरिक ने भी गदा उठाई। दोनों रथ से नीचे उतर आए। दोनों के बीच दारुण गदायुद्ध छिड़ा। हनुमान ने पुण्डरिक के एक-एक प्रहार को निष्फल कर थोड़ी ही देर में पुण्डरिक को थका दिया और चपलतापूर्वक उछलकर पुण्डरिक पर एक प्रबल प्रहार किया। फलस्वरूप पुण्डरिक गिरा और हनुमान ने उसे उठाकर अपने रथ में डाल दिया। लंका की सेना जोर-शोर से हर्षनाद करने लगी।

पुण्डरिक को गिरा हुआ जानकर स्वयं वरुणराज अपनी अजेय हस्तिसेना के साथ धँस आए। इस ओर रावण ने जहाँ वरुणराज को हनुमान की ओर आगे बढ़ता देखा, तो वायुवेग से उसने भुवनालंकार को वरुणराज की ओर हाँका और वरुण को उसने मार्ग में ही रोक दिया। रावण और वरुणराज के बीच युद्ध ठन गया। चौथे प्रहर का आरम्भ हो चुका था। वरुणराज ने अपने अपूर्व पराक्रम से रावण का दाँव नहीं लगने दिया। रावण ने अपनी मंत्र विद्याओं का स्मरण किया—परन्तु वरुण ने एक के पश्चात् एक विद्या को प्रतिपक्षी विद्या से पराजित करना शुरू किया। एक बार तो वरुण का पराक्रम देखकर रावण मुग्ध हो गया और एक महान् वीर के साथ युद्ध करने का सौभाग्य प्राप्त होने का हर्ष अनुभव करने लगा।

रावण ने भुवनालंकार हस्ति को वरुण के हस्ति के साथ टकराया और कपटकुशल रावण छलांग मारकर वरुण के हस्ति पर कूद पड़ा। वरुण को कल्पना भी न थी कि रावण इस प्रकार कूद पड़ेगा। रावण ने वरुण पर भयंकर आक्रमण कर उसे पकड़ लिया।

बस! वरुण के हाथी पर लंकापति का ध्वज फहराने

लगा। युद्ध बन्द हो गया। लंका की सेना ने बहुत समय तक जय-जयकार किया। रावण वरुण को लेकर अपनी छावनी की ओर मुड़ा और सूर्य अस्ताचल में पहुँच गया। रात विश्राम में व्यतीत की। प्रातःकाल नित्य क्रियाओं से निवृत होकर रावण ने वहीं पर सभा बुलाई, अपने-अपने स्थानों पर सभी विद्याधर राजा आदि आसीन हो गए। हनुमान को रावण ने अपने पास ही सिंहासन पर बिठाया।

रावण के सामने वरुण और उसके सभी पुत्र खड़े किये गए। रावण ने अपना वक्तव्य शुरू किया।

'माननीय राजेश्वर, युवराजगण और प्यारे सुभटो! वरुणराज जैसे पराक्रमी राजा के साथ युद्ध में आपने विजय प्राप्त की है। इससे मेरे हृदय में अपूर्व आनन्द है, परन्तु इस युद्धविजय का यश मैं पवनंजय पुत्र वीर हनुमान को देता हूँ। हनुमान का अद्भुत पराक्रम देखकर मैं वास्तव के मुग्ध हूँ।'

वरुण और पुंडरिक-राजीव आदि ने हनुमान की ओर देखा। उन्हें अभी ही पता चला कि यह वीर युवक पवनंजय का नंदन है। उन्हें हर्ष हुआ, हनुमान ने रावण को प्रणाम करके कहा:—'महाराजा और सुभटो! यह विजय मेरी अकेले की नहीं है। आप सब के साथ बिना और इसमें भी पूज्य प्रहसित चाचा के बिना तो मैं कुछ नहीं कर सकता था। अतः इस विजय का श्रेय तो आप सब को है।'

सुभटों ने हनुमान की जय बोली।

लंकापति ने कहा:— 'अभिनंदन के पात्र जैसे आप सभी हैं, उसी प्रकार पराक्रमी वरुणराज और इनके सुपुत्र भी हैं। मैं

इनकी वीरता पर प्रसन्न हूं। मुझे वरुणपुरी का राज्य नहीं चाहिये, मैं इन्हें अपना राज्य पुनः लौटाता हूँ।'

सुभटों ने लंकापति की जय जयकार की। इन्द्रजीत ने खड़े होकर राजीव आदि के बन्धन छोड़ दिये और उन्हें उचित आसन दिये। वरुणराज ने लंकापति को एक दिन वरुणपुरी में रुकने के लिये प्रार्थना की। रावण ने उसे स्वीकार की। सबको लेकर वरुणराज ने वरुणपुरी में प्रवेश किया।



३०. वर मुनिवर बनते हैं

श्री राम की अयोध्या का यह स्वर्णिम इतिहास है।

उस समय अयोध्या सुशीला, सुगुणा, सुजला और सुफला थी। उस समय के राजा शील के पक्षपाती और शीलवानों का आदर करने वाले थे। तब प्रजा सदाचार में ही जीवन की सफलता मानने वाली और सदाचार के लिये अपने प्राणों की भी बाजी लगाने वाली थी।

विजयराजा भी ऐसे और उनकी प्रजा भी ऐसी ! मात्र पाँचों इन्द्रियों के विषयों में मुग्ध होने वाले कीड़े वे नहीं थे। परन्तु परमात्मा श्री ऋषभदेव से चली आ रही और भगवान् मुनिसुव्रत द्वारा पुनः स्थापित आध्यात्मिक संस्कृति के मान-सरोवर में क्रीड़ा करने वाले वे राजहंस थे।

महाराजा विजय के दो पुत्र थे। वज्रबाहु बड़ा पुत्र था तथा पुरंदर छोटा था। माता हिमचूला ने अपने दोनों पुत्रों में दिव्यदृष्टि से गर्दन आगे करके देखा। स्थूल देह के भीतर रही हुई आत्माओं को देखीं। अनन्तकाल से चली आ रही अवनति और उन्नति का रोमांचकारी क्रम देखा। हिमचूला ने दोनों पुत्रों को झूले से ही परमात्मा के अनुरागी बनाए, परमात्म-पंथ

के अभिलाषी बनाए । उन्हें ऐहिक प्रलोभनों से भरी हुई लोरियाँ न सुनाईं । उन्हें तो ज्ञान दृष्टि का उद्घाटन करने वाली, मोहनिद्रा से जगाने वाली सुन्दर लोरियाँ गाईं गईं ।

अनन्तकाल से भव में भटका—माया में लिपटाया,
अनन्त ज्ञान के स्वामी चेतन ! अज्ञान ने भरमाया ।
शुद्ध बुद्ध तू निरंजन है—राग रहित है वीर,
इस जग की है झूठी माया—इसमें रहना धीर ।
देह रहित और नाम रहित तू—देह नाम माया के,
कीर्ति - अपकीर्ति नहीं तेरी, काम सभी माया के ।
स्वार्थ भरे हैं नाते सब ही, इनमें नहीं भरमाना,
एक प्रभु परमात्मन् से पुत्र ! अपना राग लगाना ।

झूले में से ही जिन बच्चों को ऐसी शिक्षा मिलती हो, उनकी अन्तरात्मा विरक्त हो इसमें आश्चर्य कैसा ? वज्रबाहु जैसे जैसे बड़ा हुआ वैसे वैसे उसने अनेक कलाएँ हस्तगत कीं, परन्तु उसका चित्त तो आत्मा की वैराग्य दशा को प्राप्त करने के लिए आतुर हो रहा था ।

वर्ष बीतते कितनी देर ? वज्रबाहु युवावस्था में प्रविष्ट हुए । मकर ध्वज का अभिमान भी जिसके सामने फीका लगे ऐसा उसका रूप और सौन्दर्य खिल उठा । अनेक राजकन्याएँ वज्रबाहु की सहचारिणी बनने के लिये तरसने लगीं । पिता विजयराज वज्रबाहु का ब्याह करने के लिए उत्सुक बने । विजयराज का वज्रबाहु पर बड़ा प्रेम था । वज्रबाहु को इस बात का पता था । ब्याह के लिए वज्रबाहु आतुर नहीं था । भव के भोगों की ओर उसमें सहज उदासीनता थी ।

इधर विजयराज की राजसभा में नागपुर के राजा इभवाहन के महामन्त्री आकर खड़े हुए। विजयराज ने उनका स्वागत किया। प्रणाम करके महामन्त्री ने इभवाहन का संदेश प्रस्तुत किया।

'महाराजन्! हमारे महाराजा ने आपके पास एक माँग करने के लिए मुझे भेजा है। आप हमें नाराज नहीं करेंगे, ऐसी श्रद्धा से हम यहाँ आये हैं।'

'मन्त्रीश्वर! महाराजा इभवाहन की माँग मुझसे किस प्रकार नकारी जा सकती है? परन्तु आप क्या माँग लेकर आए हैं, वह बताएँ?'

'आप शायद जानते होंगे कि देवी चूड़ामणि की मनोरमा पुत्री यौवनवय में प्रवेश कर चुकी है। रूप और कला में वे पारंगत बनी हैं। देवी चूड़ामणि ने सुसंस्कारों से मनोरमा को अलंकृत की हैं।

महाराजा इभवाहन की इच्छा है कि आपके सुपुत्र वज्रबाहु कुमार के साथ मनोरमा का पाणिग्रहण संस्कार किया जाय।' महामन्त्री ने माँग स्पष्ट की। विजयराजा प्रसन्न हुए। एक दिन विचार विनिमय करके दूसरे दिन प्रत्युत्तर देने का कहकर विजयराज ने महामन्त्री को अतिथिगृह में रुकने के लिए कहा।

विजयराज ने पटरानी हिमचूला से बात की। यद्यपि हिमचूला के हृदय में पुत्रों को संसार के भोग मार्ग पर मोड़ने की भावना नहीं थी, परन्तु पति के अभिप्राय को वे जानती थीं। साथ ही वज्रबाहु के प्रति राजा का अनुराग कितना तीव्र है, यह भी वह भली प्रकार जानती थी। उसने विजयराज के प्रस्ताव का समर्थन किया।

विजयराज ने नागपुर के महामन्त्री को बुलाया और शुभ समाचार दिये। महामन्त्री प्रसन्न हो गये और शीघ्र ही व्याह करने का निश्चय कर महामन्त्री ने नागपुर की ओर प्रस्थान किया।

वज्रवाहु को अपनी शादी के समाचार मिले। उसके हृदय में जरा भी आनन्द की अनुभूति नहीं हुई। इसी प्रकार न कोई खेद भी हुआ। संसार की प्रकृति को वह ज्ञानदृष्टि से देख रहा था।

शादी का दिन तय हो गया। विजयराज ने अपने आज्ञांकित राजाओं, मित्र राजाओं और स्नेही स्वजनों को आमंत्रण दिया, महान् आडम्बर के साथ पुत्र के विवाहोत्सव को सम्पन्न करवाने के लिए उन्होंने बड़ी भारी तैयारी करवाई।

राजा इभवाहन ने भी विशाल परिवार के साथ कुमार को नागपुर भेजने के लिए विजयराज को निमन्त्रण भेजा।

पच्चीस राजकुमारों और सैकड़ों स्नेही स्वजनों के साथ वज्रवाहु नागपुर जाने के लिए रवाना हुआ। माता हिमचूला ने वज्रवाहु की ललाट में कुंकुम का तिलक किया और आशीर्वाद दिया।

अल्प दिनों के प्रवास के पश्चात् बरात नागपुर के रहावन में आ पहुंची। वज्रवाहु को देखने के लिए नागपुर के हजारों नर-नारी उमड़ पड़े। मनोरमा की सखियाँ तो वज्रवाहु के निकट आकर टकटकी बाँधकर देखने लगीं और अत्यन्त हर्षित हो गईं। मन ही मन मनोरमा को कोटिशः धन्यवाद देने लगीं।

सखियाँ मनोरमा के सामने भी जी भरकर वज्रवाहु की प्रशंसा करने लगीं, मनोरमा का मन भी नाच उठा।

राजा इभवाहन ने वरात का स्वागत बड़े ठाट-बाट से किया और भव्य महलों में उसे आवास दिया। रानी चूड़ामणि ने दामाद को देखा और वह प्रसन्न हो गई।

शुभ मुहूर्त में पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। नागपुर में अपूर्व हर्षोल्लास व्याप्त हो गया। सबको प्रसन्नता थी....... परन्तु वज्रबाहु का मन उदासीन था। उसके मुख पर आनन्द था परन्तु अन्तःस्थल से वह भिन्न था।

विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ और मनोरमा को लेकर वरात ने अयोध्या की ओर प्रयाण किया। मनोरमा के भाई उदयसुन्दर ने वज्रबाहु के रथ का सारथ्य सम्हाला। बहिन के प्रति प्रीति के कारण वह भी अयोध्या जाने के लिए उत्सुक था।

आगे पच्चीस राजकुमारों के रथ चल रहे थे। उनके पीछे वज्रबाहु का रथ चल रहा था और उसके पीछे सैकड़ों राज-पुरुषों और स्वजनों के रथ-अश्वादि चल रहे थे।

प्रभात का समय था। वातावरण मनोहर था। एक ओर गिरिमाला और दूसरी ओर सरयू का नीर....बीच से वरात पार उतर रही थी। उदयसुन्दर और वज्रबाहु का निर्दोष वार्ताविनोद चल रहा था। साथ ही साथ वज्रबाहु की दृष्टि गिरिमाला के ऊँचे ऊँचे शिखरों पर दौड़ रहीं थी। प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर वह प्रसन्न हो रहा था। उसने उदयसुन्दर से पूछा :

'कुमार! क्या तुम जानते हो कि इस पर्वत का क्या नाम है?'

'वसन्ताद्रि,' उदयसुन्दर ने पर्वत का नाम बताया।

'वास्तव में, वसन्त ऋतु ही मानो यहाँ स्थाई निवास करती

हो ऐसा लगता है।' वज्रबाहु ने वसन्ताद्रि के सौन्दर्य का यशोगान किया। इतने में उसकी दृष्टि एक छोटे से शिखर पर गई। वह चौंक उठा। उसने सूक्ष्मता से देखना शुरू किया। एक महामुनि को ध्यानस्थ दशा में खड़े हुए देखा।

बाल रवि की मृदु किरणें मुनिवर के मुख पर क्रीड़ा कर रही थीं। मानो शिवपुर का मार्ग देखते हुए खड़े हों। इस प्रकार उनकी तपस्वी देह शिखर पर शोभायमान हो रही थी।

मेघ को देखकर जैसे मयूर नाच उठता है, पद्म को देख कर जैसे भ्रमर गुंजार करने लगता है, कुमार वज्रबाहु मुनिवर को देखकर थिरक उठे। मुनिवर के चरणों में वंदन कर आत्मा को अपूर्व आनन्द से भर देने के लिये उनका उल्लास जाग उठा।

'रथ रोको.......' कुमार ने आज्ञा दी।

'क्यों, अचानक?' अश्वों की लगाम खींचकर उदयसुन्दर ने पूछा।

'अरे! देखो तो सही! सद्भाग्य की बलिहारी........ऐसे अरण्य में महामुनि के दर्शन हुए।'

'कहाँ हैं?' चारों ओर दृष्टि फेरते हुए उदयसुन्दर ने कहा।

'देखो! वसन्ताद्रि के उस पश्चिमी शिखर पर....,' कुमार ने उदयसुन्दर का हाथ पकडकर लम्बा करके मुनिवर को बताए। उदयसुन्दर ने मुनि को देखा........उसने वज्रबाहु से कहा—

'सच्ची बात है आपकी।'

'कैसे लगते हैं ! मानो कल्पवृक्ष ! हैं न ! वज्रबाहु एकटक से मुनिवर को देख रहा था। उसकी आंखों में हर्ष समाता ही नहीं था। जितने हर्ष की अनुभूति मनोरमा के साथ पाणि-ग्रहण में नहीं हुई, उससे कई गुना हर्ष मुनि दर्शन में हुआ था। उदयसुन्दर तो वज्रबाहु को देखकर हँस दिया।

'क्यों ! इतने अधिक आनन्द में ? एक मुनि को देखकर इतना अधिक हर्ष।'

'हर्ष क्यों न हो ? आनन्द क्यों न उमड़े ? इन महात्मा ने वास्तव में अपनी आत्मा को उन्नति के शिखर पर पहुँचाई है.... इस मनुष्य जीवन के महान् कर्तव्य को अदा किया है।'

'साधु होना ही क्या मनुष्य जीवन का महान् कर्तव्य है ?'

'निस्सन्देह।'

'तो क्या, आपका भी यही विचार है ?' उदयसुन्दर बहनोई को बातों के हास्यरस में चभोर रहा था।

'क्यों नहीं ! मेरी भी आन्तरिक इच्छा साधु जीवन की ही है।' वज्रबाहु ने गम्भीरता-पूर्वक प्रत्युत्तर दिया।

'तो फिर इतनी बड़ी बरात लेकर पधारने का कष्ट ही क्यों किया था।'

'पिताजी के अनुरोध से।'

'तो अब आपको कौन रोकता है ? शुभ कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये। आपके शुभकार्य में मैं भी सहायक बनूँगा।' उदयसुन्दर ने मजाक उड़ाना शुरू किया।

'उदयसुन्दर ! सोचकर बोल रहे हो न ?'

'हाँ, हाँ।'

'देखना ! क्षत्रिय का वचन मिथ्या नहीं हो जाए।'

'अवश्य।'

वज्रबाहु रथ से नीचे उतरा। मानो माया-नगरी से बाहर आया हो। उसके पीछे मनोरमा भी रथ से नीचे उतरी। उदयसुन्दर और पच्चीस राजकुमार भी कुँवरि के पीछे पीछे चले। कोई भी वज्रबाहु की विरक्त आत्मा को पहचान नहीं सका था। मनोरमा भी उदयसुन्दर और वज्रबाहु के वार्तालाप को मात्र एक वार्ता विनोद ही समझ रही थी।

एक रूपसुन्दरी के साथ शादी करके लौटता हुआ नवयुवक राजपुत्र यकायक साधु हो जाए, ऐसी कल्पना भी कौन कर सकता है। बल्कि ऐसे राग रंग के मस्ती भरे अवसर पर साधुता की बात भी कोई करता है तो हास्यास्पद लगती है।

जगत् जीव की बाह्य क्रियाएँ देखकर ही उस जीव के सम्बन्ध में ऊँची नीची कल्पना करने लगता है, जबकि जीव की क्रिया की अपेक्षा आंतरिक भाव भिन्न हो सकते हैं। परन्तु उन आंतरिक भावों को चर्म-चक्षुओं से हम नहीं देख सकते। इन्हें देखने के लिए तो दिव्य चक्षु चाहियें। वज्रबाहु शादी करके लौट रहे हैं⋯जगत् के लिए यह प्रसंग राग की महफिल कहलाता है। शादी करने वाला रागी ही होता है—जगत् की ऐसी मान्यता रहती है⋯⋯उदयसुन्दर ने भी ऐसा ही मान लिया, परन्तु वज्रबाहु ने उसकी मान्यता मिथ्या सिद्ध कर दिखाई।

वज्रबाहु ने वसन्ताद्रि की ओर डग बढ़ाए। उसकी मुख मुद्रा पर वैराग्य की रेखाएँ अंकित हो गई। उसकी चाल त्याग की गूँज सुनाई देने लगी। उदयसुन्दर के हृदय में चिन्ता

उत्पन्न होने लगी 'कहीं वज्रवाहु वास्तव में साधु वन तो न जाए ?', उसने मनोरमा की ओर देखा। मनोरमा के मुख पर चिंता की रेखाएँ उभर आई। उसने रोष भरी दृष्टि से उदयसुन्दर की ओर देखा। फौरन वह वज्रवाहु के आगे जाकर खड़ा हो गया।

'क्या बात है !' वज्रवाहु ने पूछा।

'मेरे विनोद को गम्भीर स्वरूप न देने की प्रार्थना है।'

'मैंने तुम्हारे शब्दों को विनोद माने ही नहीं !' वज्रबाहु ने कुछ मुस्करा कर कहा।

'मैंने जो कुछ कहा है, वह केवल वार्ता विनोद में ही कहा है........'

'तुमने भले ही विनोद में कहा हो, परन्तु तुम्हारे शब्द मेरे लिये प्रेरणारूप बने हैं।'

'नहीं नहीं मैंने आपको प्रेरणा देने के लिए कहा ही नहीं.... आप दीक्षा का विचार ही न करें........' उदयसुन्दर के मुख पर ग्लानि छा गई।

'क्यो न ? इस मानव जीवन में त्याग का विचार न किया जाय, तो कौन से जीवन में करें ?'

महाराज-कुमार ! क्या यह वय त्याग की है ? त्याग की वय में त्याग के विषय में सोचें, अभी नहीं।' उदयसुन्दर ने वज्रवाहु का हाथ अपने दोनों हाथों में दबाया।

'युवावस्था ही त्याग के लिए उपयुक्त है। ऐसी और कोई अवस्था ही नहीं। उदयसुन्दर ! त्याग-मार्ग की उपासना के लिए मेरे आत्म-कल्याण में तुम्हारी सहायता अपेक्षित है।'

'कृपा करें। यह प्रसंग त्याग का नहीं। हमें तो आपसे अभी बड़ी बड़ी आशाएँ हैं·······हमारे मनोरथ हैं········।'

'कुमार ! संसार की कौनसी आशाएँ पूर्ण हुई हैं ? कौन से मनोरथ पूर्ण हुए हैं। मरुभूमि में दीखते मृगजल के पीछे हिरण जैसे दौड़ दौड़ कर प्राणों से हाथ धो बैठता है उसी प्रकार संसार के सुखों के पीछे भटकती हुई जीवात्मा अपने पुण्य धन से हाथ धो बैठती है और अन्त में मौत का शिकार बनती है।' वज्रबाहु के मुख से वैराग्य का झरना प्रवाहित हो चला। पच्चीसों राजकुमार वज्रबाहु के वचन सुनकर दिग्मूढ़ हो गए। राग के महल में त्याग का संगीत सुनकर सभी राजकुमार आश्चर्य-चकित हो गए।

'आपकी बात सत्य होते हुए भी, इस प्रसंग के अनुकूल नहीं है, मेरी आपसे प्रार्थना है कि इस समय यह लत छोड़ दें।'

'उदयसुन्दर ! तुम अपना वचन भूल गए क्या ?'

'वार्ता विनोद में वचनों को पकड़ा नहीं जाता। इनका उलंघन दोषपूर्ण नहीं गिना जाता। शादी के गीतों को सत्य नहीं समझा जाता।'

'उदयसुन्दर ! तुम मात्र इसी लोक का विचार न करो, परलोक के विषय में भी सोचो। तुम्हारे वचन तो निमित्त बने हैं। बाकी मेरे हृदय में वैराग्य की भावना तो बचपन से ही रही है। मुझे सांसारिक सुखों में रुचि नहीं।'

उदयसुन्दर मौन रहा। परन्तु इसी बीच इन्द्रप्रस्थ का युवराज श्वेतकीर्ति जो कि वज्रबाहु का विशिष्ट मित्र था वह

आगे आया और वज्रबाहु को दीक्षा न लेने के लिये समझाने का प्रयत्न करने लगा।

'श्वेतकीर्ति ! तू इतना तो सोच कि मैं किस मार्ग पर जाना चाहता हूँ। मैं जिस मार्ग पर जाना चाहता हूँ वह तुम सब से लिए भी श्रेयस्कर है। आत्मा का अनन्त सुख इसी मार्ग पर मिल सकता है। रंग-राग और भोग में कभी भी जीवन को तृप्ति नहीं होगी, अतः तुम को इसमें आग्रह करना भी नहीं चाहिये।'

'वज्रबाहु ! पारमार्थिक दृष्टि से तेरी बात मैं स्वीकार करता हूँ परन्तु इस अवसर पर तुझे अपने विचारों को कार्यान्वित नहीं करने चाहियें। हमारे लिए न सही, पर मनोरमा के लिए भी तुम्हें सोचना चाहिए। तेरे पीछे इसकी क्या स्थिति ....? इसके कल्याण का विचार करने की भी तेरी जिम्मेदारी है,' श्वेतकीर्ति ने मधुर शब्दों में अपने विचार व्यक्त किये।

'अवश्य ! मनोरमा के हित को आघात न पहुँचे यह मुझे सोचना चाहिये। परन्तु मैं मानता हूँ कि यह ऐसे उत्तम कुल के संस्कार प्राप्त कर चुकी है कि मेरे मार्ग में यह मेरी सहायक बनेगी।'

'यदि इसके हृदय में वैराग्य होता तो यह शादी ही न करती। संसार के सुख भोगने के अरमान लेकर इसने तेरे साथ वरण किया है, तू इसका इस प्रकार त्याग करके इसे धोखा दे रहा है, मुझे तो ऐसा ही लगता हैं; श्वेतकीर्ति ने बलपूर्वक दलील की।

'मित्र ! मैं तो मानता हूँ कि इस मार्ग पर जाकर मैं किसी को धोखा नहीं दे रहा हूँ। हाँ ! यदि मैं इसका त्याग करके किसी दूसरी राजकुमारी को ग्रहण करूँ तब तो धोखा कह सकते हैं, परन्तु वैराग्य के मार्ग पर जाने में तो मैं इसे मानव जीवन के सर्वोत्तम कर्त्तव्य का भान करवाने में निमित्त बनता हूँ।'

मौन छा गया। वज्रबाहु के सिवाय सबके मुख पर गाढ़ निराशा और उद्वेग के बादल छा गए। विवाह महोत्सव का आनन्द लुप्त हो गया।

'क्या संसार में रह कर आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता ?' उदयसुन्दर ने पुनः अपनी दलीलें शुरू की।

'संसार में रहकर भरत महाराजा ने केवल ज्ञान प्राप्त नहीं किया क्या ?' श्वेतकीर्ति ने उदयसुन्दर की बात को दृष्टांत से पुष्ट किया।

'तुम केवल मेरे प्रति राग से प्रेरित होकर ही बात कर रहे हो। तुम मुझे संसार में रखकर अपने मन को प्रसन्न रखना चाहते हो, परन्तु मेरे हृदय के विषय में तुम लोग अभी तक नहीं सोचते। मेरा हृदय संसारवास के प्रति राग-विहीन बन चुका है, तब क्या मुझे संसार में रखकर मेरे हृदय को तुम प्रसन्न कर सकोगे ? मेरी आत्मा जिसके लिए आतुर हो रही है उसे प्राप्त करने में तुम मेरी सहायता करो तो क्या वह तुम्हारे प्रेमभाव का कर्त्तव्य नहीं हैं ?'

'आप अपनी ही आत्मा का कल्याण करने के लिए सबको छोड़कर, दुःखी कर चले जा रहे हैं, क्या यह स्वार्थ भावना नहीं हैं ?' उदयसुन्दर ने कहा।

'मैं तो चाहता हूँ कि मैं अकेला ही चारित्र्य क्यों लूँ ? आप सबको साथ लेकर आत्मा का कल्याण करें । किसी को दु:खी करने की मेरी भावना नहीं है। सभी परम सुख प्राप्त करें, आत्मा के अनन्त सुखों को प्राप्त करें, यही मैं चाहता हूँ ।'

'मुझे तो लगता है कि मेरे विनोद के शब्दों से आपको बुरा लगा है और आप आग्रह कर रहे हैं। आपका यह वैराग्य क्षणिक है ।' उदयसुन्दर ने नाराज हृदय से कहा ।

'उदयसुन्दर ! तुम्हारे वचनों से मुझे जरा भी दु:ख नहीं लगा। मैंने तुम्हें पहले भी कह दिया है कि तुम्हारे वचन तो मात्र निमित्त बने हैं, वरना मेरे हृदय में तो वैराग्य बाल्यकाल से ही घर कर चुका है। आज वह उत्कट बना है और त्याग-मार्ग पर अग्रसर होने में प्रबल वेग दे रहा है।'

मनोरमा मौन रहकर अपने पति के शब्दों को सुन रही थी। वज्रबाहु के शब्दों में वास्तव में उसे तीव्र वैराग्य सुनाई दिया। उसके चित्त में राग और त्याग का द्वन्द्व छिड़ा ।

एक ओर सांसारिक वैषयिक सुखों की ओर आकर्षण होने लगा तो दूसरी ओर पति के त्याग मार्ग का अनुसरण करने का आकर्षण होने लगा। आज तक निर्मित भावी सुख भोग का महल भग्न होकर चूर चूर होता दिखा और नवीन कष्टपूर्ण मार्ग पर मुड़ने के लक्षण दीखने लगे। उसका युवा हृदय धड़-कने लगा। कुछ ही क्षणों में निर्णय करना था और उसी पर उसका समग्र भविष्य निश्चित् होने वाला-था।

पुरन्दर-कुमार ज्येष्ट भ्राता के जीवन से सुपरिचित था। वह जानता था कि वज्रबाहु बाल्यकाल से ही विरक्त हैं। उसके

ध्यान में था कि संसार के जीव जिस विषय सुख में आनन्द का अनुभव करते हैं, उस विषय सुख से वज्रवाहु का चित्त विरक्त हो चुका था और वह यह भी जानता था कि कभी भी वज्रवाहु संसार का त्याग कर वैराग्य के मार्ग पर चल पड़ेगा।

उदयसुन्दर और श्वेतकीर्ति ने वज्रवाहु के सामने अनेकों दलीलें रक्खीं परन्तु पुरन्दर तो एक शब्द भी नहीं बोला, यद्यपि कभी भी पुरन्दर के सामने वज्रवाहु के साथ चर्चा में उतरने का प्रसंग उपस्थित नहीं हुआ। वज्रवाहु के विचारों को पुरन्दर आदर-पूर्वक समझता था और स्वीकार करता था। पुरन्दर को आज विश्वास हो चुका था कि ज्येष्ठ भ्राता आज संसार का त्याग अवश्य कर देंगे। अपने परम श्रद्धेय और परम प्रिय बड़े भाई की विरह की कल्पना ने उसके दिल को दुःखी कर डाला। उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े, परन्तु कोई देख न ले इस प्रकार उसने आँखें पोंछ डाली, परन्तु वज्रवाहु की दृष्टि से पुरन्दर की यह स्थिति छिप न सकी।

'पुरन्दर, पिताजी को तू आश्वासन देना। उनके दिल को आघात तो अवश्य पहुँचेगा, परन्तु वे ज्ञानदृष्टि वाले हैं···· उनकी अन्तरात्मा को बाद में आनन्द होगा····और माताजी तो हमें वैराग्य का बोध पाठ पढ़ाने वाली 'गुरू' हैं····उन्हें तो अपार हर्ष होगा····इन साध्वी हृदया माता को मेरा वन्दन कहना।'

'बड़े भाई····' पुरन्दर रुदन को रोक न सका। वज्रवाहु के चरणों में वह लुढ़क पड़ा। कुछ भी बोल न सका····सिवाय रुदन के····।

'पुरन्दर तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए, तुझे भी भविष्य में

इसी मार्ग पर आना है। भगवान ऋषभदेव से लगाकर अपनी यह परम्परा चली आ रही है। तेरा मार्ग कुशल हो।'

पच्चीसों राजकुमारों की आँखें भीग गई, उदयसुन्दर की आँख से आँसू की धारा बहने लगी। मनोरमा मन को मजबूत कर, आँखें बन्द करके जीवन के रहस्य को समझने का प्रयत्न करने लगी।

'उदयसुन्दर, मुझे अनुज्ञा दो इतना ही नहीं, पर तुम भी सब परमात्मा जिनेश्वर के मार्ग पर मेरे साथ चलो। हम सब अपनी आत्मा को उज्ज्वल बनाकर ऐसे सिद्ध स्थान पर पहुँच जाएँ जहाँ से कभी भी अपना वियोग न हो।। अनन्त अनन्त काल-पर्यन्त साथ ही रहें....साथ ही अनन्त सुख का आनन्द लें।

' संसार के तुच्छ, अल्पकालीन, परिणाम में दारुण, पराधीन सुखों के इन्द्रजाल में न फँसो। आत्मा को भूलकर जगत की माया में भटक न जाओ।'

सभी वज्रबाहु की शक्कर से भी मधुर वाणी सुन रहे थे। उनकी रागाग्नि बुझने लगी। त्याग की ज्योति प्रकट होने लगी।

'अपने अनन्त-काल के भूतकाल को याद करो....भूतकाल में क्या नहीं भोग किया? क्या नहीं देखा? फिर भी तृप्ति नहीं हुई। भोग की तृप्ति कभी भी नहीं होती। त्याग से ही अन्तरात्मा की चरम तृप्ति होती है, त्याग से ही परमसुख का अनुभव होता है।'

पच्चीसों राजकुमारों और उदयसुन्दर के भावुक हृदय

पिघल गए। क्यों न पिघलें ? वज्रबाहु के प्रति सबका अनुराग था, सम्मान था। मनोरमा जैसी रूप सुन्दरी के साथ शादी करके अभी घर तो पहुँचा भी नहीं, कि इस जीवन के सर्वस्व का त्याग करके परमात्मा के परम पथ पर जाने के लिये उत्सुक बने, उसकी अपूर्व सत्त्वशील आत्मा के विनम्र विवेकपूर्ण तथा वैराग्य से भरपूर वचन भावुक हृदयों पर जादू कर जाते हैं।

प्रकृति का यह नियम है : जिसके प्रति हमें आन्तरिक प्रीति हो, सम्मान हो, उसके वचन हम पर अपेक्षित प्रभाव करेंगे ही। जिसके प्रति हमें घृणा हो, अप्रीति हो, उसके कैसे भी वचन हम पर अपेक्षित प्रभाव डालने में निष्फल ही रहते हैं।

मनोरमा तो अपने प्राणप्रिय पति के वचनों में एकाग्र हो गई। उसने अपने चित्त में पति के पथ पर ही चलने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उसने अपने मस्तक पर करबद्ध प्रणाम कर वज्रबाहु से प्रार्थना की।

'मुझे आपकी ही शरण है। जो मार्ग आपका है वही मेरा भी मार्ग है।'

बस ! जहाँ मनोरमा ने अपना निश्चय व्यक्त किया, वहीं उदयसुन्दर ने भी अपना निर्णय कर लिया और वज्रबाहु को प्रणाम कर कहा—

'मुझे भी आपकी ही शरण है। मैं आपके साथ ही चारित्र्य लूँगा।'

पच्चीसों राजकुमारों ने वज्रबाहु के साथ ही चारित्र्य ग्रहण करने की भावना व्यक्त की : कैसी अपूर्व मित्रता ! कैसी मायारहित प्रीति ! कैसी धन्य है वे पलें !

वसन्ताद्रि पर आध्यात्मिकता की वसन्त खिल उठी। पक्षियों ने हर्ष के गीत गाने शुरू किए और वन-लतिकाओं ने नृत्य आरम्भ किया। सबके साथ वज्रबाहु ने महामुनि के पावन चरणों में पंचांग प्रणिपात किया।

'धर्मलाभ.....' मुनि ने दाहिना हाथ ऊँचा उठाकर आशीर्वाद दिया और एक स्वच्छ शिला पर रजोहरण से प्रमार्जन कर आसन पर विराजमान हुए।

'हे कृपा-निधान! हम पर कृपा कर हमें भव सागर से पार उतारें।' वज्रबाहु ने करबद्ध प्रार्थना की।

'महानुभाव! परमपिता श्री जिनेश्वर भगवान् के चारित्र्य से भव सागर तेरा जा सकता है, अतः चारित्र्य मार्ग का उद्यम करना चाहिए।' गुणसागर महामुनि ने मधुर गम्भीर स्वर से भव सागर से पार उतरने का मार्ग बताया।

'कृपा कर हमें चारित्र्य प्रदान करें—ऐसी हमारी कृपा-निधान से प्रार्थना है।' वज्रबाहु ने प्रार्थना की।

दिन शुद्ध था। योग शुभ था। नक्षत्र अनुकूल था। महा-मुनि ने वहीं वज्रबाहु, मनोरमा, उदयसुन्दर और पच्चीसों राजकुमारों को चारित्र्य दिया—देवताओं ने हर्षनाद किया—पुष्प-वृष्टि की।

कुमार पुरन्दर ने सबको भावपूर्वक वन्दना की। भारी हृदय के साथ, अश्रु भरी आँखों सहित, निष्प्राण बनी हुई बरात को लेकर अयोध्या की ओर वह आगे बढ़ा। एक घुड़-सवार नागपुर की ओर रवाना हुआ और गुणसागर महामुनि नव-दीक्षितों को लेकर वहाँ से अन्यत्र प्रस्थान कर गए।

संसार की भूमिका पर जब ऐसी अजीव घटनाएँ घटित होती हैं तब संसार के जीवों की जिह्वा पर वे घटनाएँ दिनों, महिनों तक क्रीड़ा करती रहती है, फिर धीरे धीरे विस्मृत होती जाती हैं····परन्तु कोई तत्त्वज्ञानी इन घटनाओं को अक्षरदेह देकर उस अक्षरदेह को सुरक्षित स्थान पर रख देता है। कोई उपदेशक इन घटनाओं को अपने उपदेश में प्रवाहित करता है और उपदेशकों की परम्परा इन घटनाओं को चिरंजीव बनाने के लिए प्रयास करती है। कोई शिल्पकार इन अद्भुत घटनाओं को पाषाण में आलेखित कर हजारों वर्षों तक जीव परम्परा को इन घटनाओं से परिचित रखने के प्रयत्न करते हैं।

परन्तु अफसोस! संसार को ऐसा जानने, सुनने अथवा पढ़ने की कहां परवाह है? वह तो अपनी ऐहिक वासनाओं की तृप्ति के लिए ही उन विषयों के मृगजल के पीछे दौड़ता रहता है।

कई दिनों की यात्रा के अन्त में पुरन्दर अयोध्या के रहावन में आ पहुँचा। अयोध्या के हजारों नर और नारियाँ अपने युवराज का स्वागत करने तथा भावी राजरानी के दर्शन करने उमड़ पड़े, परन्तु उन्हें कहाँ उनका मनभाया युवराज अथवा युवराज्ञी देखने को मिले? महामंत्री ने वरात को सुनसान एवं वज्रबाहु विहीन देखी। अनेक शंकाओं····भय आदि मनोभावों के साथ पुरन्दर को प्रश्नों की झड़ी लगाकर उलझन में डाल दिया।

'वज्रबाहु कहाँ? राजकुमार कहाँ? युवराज्ञी कहाँ? सभी कहाँ गए? मार्ग में क्या आकस्मिक दुर्घटना बाधक हुई? तुम उन सबको छोड़कर क्यों चले आए?'

पुरन्दर क्या उत्तर दे ? उसका हृदय भारी था। आँखें रो-रोकर सूज गई थीं। मुख पर ग्लानि की असंख्य रेखायें उभर आई। फिर भी उसने संक्षिप्त प्रत्युत्तर देकर मंत्री को शांत किया।

'कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ'

'तो हुआ क्या ?' महामन्त्री जिज्ञासा को दवा न सके। दूसरी ओर हजारों नागरिक भी अनेक शंकाओं में डूव गए।

'भाई साहव ने चारित्र्य स्वीकार कर लिया....' पुरन्दर की आँख में से पुनः अश्रु धारा वहने लगी।

'हाँ ? चारित्र्य ? युवराज्ञी का क्या ?'

'उन्होंने भी चारित्र्य स्वीकार किया।'

'क्या कहते हो ? गलत ! असम्भव !'

'वात सच्ची है। सर्वथा सच्ची है।'

'पच्चीस राजकुमार वीच से ही अपने-अपने नगर चले गए क्या ?'

'नहीं, पच्चीसों राजकुमारों और इभवाहन-नंदन उदय-सुन्दर ने भी चारित्र्य स्वीकार किया।'

'हाँ ? आश्चर्य ! वयोवृद्ध महामन्त्री की आँखें विस्तृत हो गईं। उनका वर्षो का अनुभव भी लज्जित हो गया।

अभी तो पुरन्दर रहावन में था। इतने में समाचार विजय-राज के पास पहुँच गए। विजयराज का स्नेह पागल हृदय ऐसे समाचार किस प्रकार सहन कर सकता था। वे तो वात सुनते ही मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। पटरानी हेमचूला दौड़ी आई। दास-दासी वर्ग एकत्रित हुआ। दूसरी ओर पुरन्दर भी

परिवार के साथ आ पहुँचा। हजारों नर-नारियाँ राजमहल में उमड़ पड़े। सबके हृदय में दुःख था। युवराज का सदा का विरह सबके दिल को दुःखी करने वाला था।

शीतल उपचारों द्वारा महाराजा स्वस्थ किए गए। परन्तु महाराजा का करुण क्रन्दन तीव्र था। सभी शोकग्रस्त हो गए। शांत होकर विजयराज ने हेमचूला से कहा—

'वज्रबाहु ने चारित्र्य अंगीकार किया....इस बात का दुःख नहीं, दुःख इस बात का है कि अभी तक हम संसार की माया में फँसे पड़े हैं। धन्य है इस सुपुत्र को....पूर्ण युवावस्था में इसने परमात्मा का मार्ग स्वीकार किया है।'

'आपकी बात सच्ची है। हमें भी अब अविलम्ब पुत्र के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये।' हेमचूला ने पति की भावना को पुष्ट की। राजा-रानी ने निर्णय कर लिया। पुरन्दर का राज्याभिषेक करने के लिए महामन्त्री को आज्ञा दी और दूसरी ओर किसी महामुनि की प्रतीक्षा होने लगी।

पुरन्दर का राज्याभिषेक किया गया।

अयोध्या के उद्यान में 'निर्वाण मोह' नामक महर्षि पधारे। उद्यानपाल ने विजयराज को बधाई दी। राजा ने उद्यानपाल को प्रीतिदान देकर उसका दारिद्र्य दूर किया और 'निर्वाण-मोह' मुनीश्वर के चरणों में राजा-रानी ने जीवन अर्पण कर दिया। चारित्र्य अंगीकार कर दोनों ने आत्मा को मोक्ष मार्गाराधिका बनाई।

अयोध्या के राजकुल की यह परम्परा असंख्यकाल से चली

आ रही थी। राजपुत्र योग्य-वय में आते ही राज्य की धुरा उसे सौंपकर, राजा निवृत्त हो तथा सद्गुरु के चरणों में चारित्र्य स्वीकार कर आत्म कल्याण में जीवन पूर्ण करें। कैसी सुन्दर यह कुल परम्परा! और इस उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाली कैसी उत्तम आत्माएँ!



३१. राजर्षि कीर्तिधर

कैसा वह आध्यात्मिक प्रकाश का काल !

पाँच इन्द्रियों के विषय में न ऐसी प्रगाढ़ आसक्ति····विषयों का उपभोग करते हुए भी उनके त्याग की ही छिपी-छिपी भावना !

दृष्टि परलोक की ओर और सृष्टि पर देव-गुरु और धर्म का साम्राज्य।

और जहाँ दृष्टि परलोक पर मढ़ी कि इस लोक के सुखों की न ऐसी भयानक कामना ! न इन सुखों की प्राप्ति हेतु धर्म विमुख पुरुषार्थ !

धर्म का संरक्षण करते हुए ही अर्थार्जन का पुरुषार्थ और इसमें जितना मिले उसी से संतोष ! अपने से अन्य को अधिक मिलने की न तो ईर्ष्या और न स्पृहा ! पाप और पुण्य के सिद्धान्तों को स्मृति में रखकर सुख और शांति का अनुभव करना !

विजय राजा ने भी राज्यसुख का त्याग कर साधु जीवन स्वीकार किया। इससे राज्य की धुरा पुरन्दर कुमार के कन्धों

'देवी ! अब मुझे मुक्त करो····संसार का त्याग कर अब मैं परमात्मा के मार्ग पर जाना चाहता हूँ ।'

'नाथ ! मैं जानती हूँ आपके चित्त में तीव्र वैराग्य है। आप संसार में रहे हुए योगी ही हैं, परन्तु क्या आप मुझे संसार में रख कर ही जाना चाहते हैं ?'

'बहुत सुन्दर देवी। तुम भी सर्व त्याग के मार्ग पर चलो—,'

'यदि आपको मेरा भी कल्याण करना हो तो कृपा कर थोड़ा रुको ।'

'क्यों ?'

'जब तक कीर्तिधर उचित समझ वाला न हो, और उसके सुसंस्कार दृढ़ न हो, उसके हृदय में भी सर्वत्याग का लक्ष्य जब तक जागरित न हो, तब तक हमें इसका त्याग न करना चाहिये, ऐसा मैं सोचती हूँ। फिर आप जैसा आदेश दें, वह मुझे मान्य है। मैं तो एक स्त्री हूँ········स्त्री की बुद्धि········'

'नहीं नहीं देवी ! तुम जो कह रही हो वह उचित है। हम कीर्तिधर को राज्यारूढ करके तब ही साधुवेश धारण करेंगे।'

पृथ्वी रानी को आनन्द हुआ। दूसरी ओर पुरन्दर राजा ने कीर्तिधर कुमार के सुयोग्य शिक्षण हेतु सुन्दर योजना सोच ली और स्वयं राज्य चिन्ता से शनैः शनैः मुक्त होने लगे। विश्वसनीय चतुर मंत्रीवर्ग राज्य का सफल संचालन करने लगा।

वरसों बीतते चले। कुमार कीर्तिधर चन्द्रकला की भाँति बढ़ने लगा। राजा रानी ने कुमार के सर्वांगीण विकास हेतु पूर्ण हृदय लगाकर प्रयत्न किये। प्रजा में कुमार की मुक्त कंठ से प्रशंसा होने लगी। इस प्रकार कुमार युवावस्था में आ पहुँचा।

एक दिन वनपालक ने आकर महाराजा पुरन्दर को बधाई दी।

'महाराज! उद्यान में क्षेमंकर नामक महान् तेजस्वी मुनि-भगवंत पधारे हैं।'

महात्मा पुरुष के आगमन के समाचार सुनकर पुरन्दर राजा का हृदय आनंद से भर गया। वनपालक को प्रीतिदान देकर सपरिवार स्वयं मुनिवर्य के दर्शनार्थ चल पड़े।

ज्यों ही रथ में पाँव रक्खा, कि महाराजा के अंग अंग में हर्ष का रोमांच हुआ। कोई गहन रसानुभूति होने के साथ दाहिना नेत्र स्फुरित होने लगा। रथ उद्यान के द्वार पर आकर खड़ा हुआ। महारानी और परिवार के साथ राजा ने उद्यान में प्रवेश किया।

दूर से ही जहाँ महामुनि को देखा—महाराजा के नयन आश्चर्यचकित हो गए।

अद्भुत रूप!

अपूर्व सौम्यता!

अनुपम देहाकृति!

महाराजा ने हाथ जोड़कर भावपूर्वक हृदय से वंदना की,

निकट आकर पुनः वंदना की, कुशलक्षेम पूछा और विनयपूर्वक उचित आसन पर बैठ गए।

महामुनि ने 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद देकर मधुर वाणी में आत्महित का उपदेश दिया। देह और आत्मा का भेद-ज्ञान करवाया। आत्मा का मूलस्वरूप समझाया। मूल स्वरूप को प्राप्त करने की साधना समझाई। महाराजा का वैराग्य नव-पल्लवित होकर खिल उठा। उनकी आँखो में हर्ष के आँसू उमड़ पड़े।

देव ! आपने जो कहा, वह योग्य ही है। सर्वथा सत्य है, आपके वचन मैंने अपने हृदय पात्र में ग्रहण कर लिये हैं। मेरे हृदय के भाव उल्लसित बने हैं.........'

'राजन् ! इस जीवन में, जो वास्तव में करने योग्य पुरुषार्थ है, उसे अविलम्ब करना चाहिये, क्योंकि जीवन चंचल है और शारीरिक शक्तियाँ अस्थिर हें।'

'प्रभु ! आप हमें चारित्र्य प्रदान कर इस भवसागर से पार उतारने की कृपा करें।'

बस ! कुमार कीर्तिधर का राज्याभिषेक किया गया। महाराजा पुरन्दर और पृथ्वीरानी ने क्षेमंकर महामुनि के पास चारित्र्य अंगीकार किया। इन दोनों का अनुकरण अनेक नगरजनों ने किया।

मुक्तिमार्ग का कैसा अपूर्व वैभव ! मोक्ष दृष्टि का इस सृष्टि में कैसा अपूर्व उद्घाटन ! धन्य वह काल ! धन्य वे पवित्र व्यक्ति।

× × ×

अयोध्या का राज्य कीर्तिधर भली प्रकार सम्हाल रहा था, परन्तु उसके चित्त से माता-पिता के संसार-त्याग का प्रसंग दूर नहीं होता था। कभी कभी राज्य सभा में बैठा बैठा भी वह विचार श्रेणी पर चढ़ जाता था और माता-पिता के मार्ग पर दौड़कर उनके पास पहुँचने के लिए अधीर हो उठता था। बाह्य दुनिया में रहते हुए भी उसकी आन्तरिक दुनिया भिन्न थी।

कीर्तिधर की शादी 'सहदेवी' राजकन्या के साथ हुई थी। यद्यपि आंतरिक इच्छा सम्बन्ध से जुड़ने की नहीं थी, परन्तु संयोगों का अनुसरण उसे करना पड़ा। तब भी भोग लंपटता उसे जरा भी छू न सकी।

कीर्तिधर अपने शयनगृह में निद्राधीन था। रात का दूसरा प्रहर चल रहा था। इतने में उसने एक स्वप्न देखा :—

स्वयं मानो राज्य सिंहासन पर आसीन है......वहाँ पुरन्दर राजर्षि अचानक पधारे। स्वयं ने संभ्रमपूर्वक सिंहासन पर से नीचे उतर कर दौड़कर राजर्षि के चरणों में मस्तक झुकाकर आँसुओं के नीर से चरण प्रक्षालन किया......राजर्षि ने कुमार के मस्तक पर हाथ रखकर धर्माशीष दी।

'पिताजी...आप मुझे छोड़कर चले गए...मैं बड़ा दुःखी हूँ ...मुझे अपने साथ ले जाएँ...' कुमार ने गद्गद् कंठ से अश्रु भरी आँखों से प्रार्थना की।

'कुमार! तुझे कैसा दुःख! यह राज्य है...संपत्ति है... परिवार है...,' राजर्षि ने कहा।

'पिताजी, संसार ही दुःख रूप है......राज्य भी संसार है

और संपत्ति भी संसार है........इसमें से मुझे मुक्त करने की कृपा करें।'

राजर्षि की आँखों से करुणा की धारा वह चली। कुमार उसमें सुख का अनुभव कर रहा था। उसकी आँखें बन्द हो गई। थोड़ी देर वीती। आँखें खोली तो शयनगृह में मंद-मंद दीपक दिखाई दिये और पास के पलंग पर गहन निद्राधीन सोई हुई सहदेवी दिखाई दी। स्वप्न सृष्टि से वह वास्तविक सृष्टि में आया—परन्तु उसके मन से तो स्वप्न की दुनिया वास्तविक दुनिया ही थी। यह सृष्टि तो उसे कल्पित और मिथ्या लगने लगी।

उसकी निद्रा भंग हो गई। वह पलंग से नीचे उतर कर एक स्वच्छ आसन पर बैठकर परमात्मा श्री जिनेश्वरदेव के ध्यान में मग्न हो गया। अंतिम प्रहर आरम्भ होते ही सहदेवी जाग उठी। उसने राजा को इस प्रकार नीचे ध्यानस्थ दशा में देखा। वह पलंग से भौचक्की सी उठ खड़ी हुई और नीचे उतरकर स्वामी के सामने वैठ गई........परन्तु वह कब तक धैर्य रख सके? उसने थोड़ा सा धैर्य रक्खा परन्तु फिर उसने कीर्तिधर के हाथ पर अपना हाथ रखकर ध्यानपूर्ण करने की सूचना दी।

कीर्तिधर ने ध्यान पूर्ण किया, और सहदेवी की ओर दृष्टि की।

'क्यों, आज इस प्रकार?' सहदेवी ने चिंतातुर हृदय के साथ प्रश्न किया।

'क्या हुआ?'

'एक अपूर्व—सुन्दर स्वप्न देखा।'

'मुझे कहने की कृपा करेंगे ?'

'मैंने स्वप्न में पिताजी के दर्शन किये ।'

'इस पर सारी रात जागते रहे ?'

'अरे ! पूरी वात तो सुनो । पिताजी को देखकर मैंने वन्दना की·······फिर प्रार्थना में कैसा भाव का उल्लास ! ·······पिताजी ने प्रत्युत्तर दिया·······उनकी आँखों से करुणा की धारा प्रवाहित हो रही थी·······वास्तव में·······स्वप्न यदि साकार हो जाए तो·······'

'आपने क्या प्रार्थना की !' सहदेवी ने पूछा :

'इस संसार से मुक्त करने की ।'

'मुझे नहीं जँचा, नाथ !'

'देवी इस जीवन का दूसरा कौन सा उच्च कर्तव्य है ? सांसारिक वासना से मुक्त हुए विना शाश्वत सुख-शांति मिल नहीं सकती ।'

'क्या संसार में रहकर धर्म नहीं किया जा सकता ।'

'देवी, तुम ही कहो, संसार में हम कितना और कैसा धर्म कर रहे हैं ? क्या हम अपनी विशुद्ध आत्मा का ध्यान कर सकते हैं ? क्या विषयों तथा कषायों की नागपाश से मुक्त हो सकते हैं ?'

'आप कुछ भी कहें पर आपकी दीक्षा की बातें मेरे हृदय का विदारण करती हैं ।'

प्रभात हो चुका था । कीर्तिधर ने सहदेवी को आश्वासन दिया, परन्तु सहदेवी के चित्त में दृढ़ निश्चय जम गया कि अवश्य ही महाराजा शीघ्र या देर से संसार त्याग कर देंगे ।

कीर्तिधर भी दिन प्रतिदिन संसार से विरक्त होते जाते थे। उनके चित्त में चारित्र्य जीवन का आकर्षण बढ़ता ही जाता था। एक दिन तो उन्होंने महामन्त्री को बुलाकर कह भी दिया :

'महामन्त्री जी, आप मेरे विचारों से परिचित हैं। राज्य की चिंता से मैं मुक्त होना चाहता हूँ और परमात्मा श्री जिनेश्वरदेव के चारित्र्य मार्ग की आराधना करना चाहता हूँ। आप बुद्धिवैभव तथा स्वामिभक्ति से परिपूर्ण हैं। राज्य के लिये किसी योग्य आत्मा को ढूँढ........'

'स्वामी, मैं समझता हूँ कि अयोध्या के राज सिंहासन पर आज तक कोई ऐसी आत्मा नहीं आई जिसने चारित्र्य स्वीकार कर महान् आत्महित की साधना न की हो। भगवान ऋषभदेव के इक्ष्वाकु वंश की यह बलिहारी है, परन्तु कृपानाथ! मेरी आपसे प्रार्थना है कि जब तक महादेवी की कुक्षि से पुत्ररत्न का जन्म न हो तब तक आप संसार त्याग न करें। असंख्य काल से चली आ रही उत्तम वंश परम्परा का अन्त न होना चाहिये, क्योंकि यह वंश परम्परा समग्र विश्व के लिए उपकार-कर्ता रही है। इस वंश के राजर्षियों के आलम्बन से असंख्य आत्मायें भवसागर से पार उतर गई हैं...और अधिक आपसे क्या निवेदन करूँ?'

महाराजा महामन्त्री की गम्भीर बात का मर्म समझ गए।

कुछ वर्ष बीते कि अयोध्या के राजमहल में पालना बँधा।

परन्तु ज्यों ही पुत्र के जन्म होने का पता चला कि सहदेवी ने पूर्व योजनानुसार उसे छिपाने के लिये दासी को संकेत किया। दासी ने तुरन्त पुत्र को लेकर महल के गुप्त तलगृह में भली प्रकार रख दिया और स्वयं भी वहीं रही।

इस ओर सहदेवी ने महाराजा को कहलवा दिया कि पुत्र जन्म के साथ ही मृत्यु की गोद में समा गया। कीर्तिधर को समाचार ज्यों ही प्राप्त हुआ, वे अन्तःपुर में आए। सहदेवी के मुख पर के भावों को देखने से कीर्तिधर के मन में शंका उत्पन्न हुई। उन्होंने पूछा—

'देवी! कहाँ है वह मृतपुत्र ?'

'उसे तो दासी ले गई।'

'कौन सी दासी ?'

'सुनंदा।'

महाराजा सहदेवी के खण्ड में से बाहर निकलकर महल के द्वार पर खड़े द्वार रक्षकों के पास आए।

'यहाँ से सुनंदा कब बाहर गई ?'

'कृपानाथ! आज सारी रात और प्रातः से अब तक सुनंदा बाहर निकली ही नहीं।'

'अन्य कोई हाथ में छोटे बालक को लेकर बाहर गया क्या ?'

'नहीं तो।'

क्षण भर कुछ सोच कर महाराजा पुनः महल में आए और अन्तःपुर की अन्य दासियों को बुलाया।

'सुनंदा क्यों नहीं दीखती ?' महाराजा ने पूछा।

'वह महारानी के किसी काम से कहीं गई है। कहां गई है, हमें नहीं बताया।'

'उसे जाते किसी ने देखा है ?'

इस पर एक दासी बोलने की इच्छा करती थी, परन्तु

बोल नहीं सकती थी। महाराजा ने उसकी मुखाकृति के हाव-भाव देखकर कहा—

'तू घबरा मत, मेरी ओर से तुझे अभय है। जो भी बात हो, कह दे।'

'कृपानाथ! मैंने सुनंदा को देखी तो नहीं, परन्तु महादेवी उसे पुत्ररत्न देती थीं। राजकुमार रोते थे। सुनंदा उन्हें लेकर महल में ही कहीं अदृश्य हो गई है।'

बस, महाराजा परिस्थिति समझ गए। दासियों को विदा कर वे सहदेवी के खंड में गए। पुनः महाराजा को आए देख कर सहदेवी के मुख पर कुछ भय की रेखायें उभर आईं।

'देवी, तुम सच्ची बात क्यों नहीं कहती? पुत्र जीवित है, यह मुझे पता लग गया है।'

'झूँठी बात....मिथ्या....जीवित न....हीं....।'

'बचाव न करो। बार-बार झूठ न बोलो। यह बताओ कि पुत्र को कहाँ छिपाया है।'

'परन्तु........'

'जरा भी नहीं चल सकता। सूर्य के उदय को गुप्त नहीं रक्खा जा सकता। तुम नहीं बताओगी तो मैं ढूँढ़ लूँगा।'

सहदेवी की आँखों में आँसू आ गए।

'ऐसे प्रसंग पर तुम्हें शोक करना चाहिये अथवा प्रसन्न होना चाहिये?'

'पुत्र जन्म का आनन्द है, परन्तु आप........'

'मैं चारित्र्य लूँगा इसका दुःख है....यही न।'

'हाँ स्वामीनाथ....'

'इस समय यह बात न सोचो। परन्तु पुत्र कहाँ है—यह बताओ जिससे राज्य में समाचार दिया जा सके। राज्य में उत्सव मनाया जा सके।'

सहदेवी ने वास्तविक बात कह दी। तुरन्त महाराजा स्वयं ही तलगृह में पहुँच गए। सुनंदा राजकुमार को देख देखकर नाच रही थी। राजकुमार के मुख पर तेजस्विता चमक रही थी। महाराजा को देखते ही सुनंदा चौंक उठी....भय के मारे काँप उठी और दूर जाकर हाथ जोड़कर नत-मस्तक खड़ी रही।

'सुनंदा, तू घबरा नहीं, तू अपराधिनी नहीं है....' महाराजा ने पुत्र को अपने हाथों में लिया....कुमार का मुख हास्य से खिल उठा। वह एकटक पिता की ओर देखने लगा। पिना दृष्टि जमा कर पुत्र को देखने लगे।

राज्य में पुत्र जन्म के मंगल समाचार दिये गए। श्रीमंतों की टोलियाँ राज्यसभा में भेंट लेकर आने लगीं। श्री जिन मंदिरों में अट्ठाई महोत्सव शुरू हुए। नगर-वासियों ने घर-घर और गली-गली में आनन्द-उत्सव आयोजित किये।

सबके हृदय में आनन्द उभरता था। मात्र सहदेवी का हृदय शोक मग्न था। उसे पूर्ण विश्वास था कि महाराजा सबको छोड़कर चारित्र्य ग्रहण करेंगे।

पति विरह की कल्पना उसके चित्त को विह्वल कर रही थी, परन्तु महाराजा ने तत्काल कोई कदम नहीं उठाया।

राजकुमार का नाम सुकोशल रक्खा। जैसे-जैसे सुकोशल बड़ा होता गया, वैसे-वैसे सहदेवी का उस पर बहुत

ही राग बढ़ता गया। दूसरी ओर कीर्तिधर पर से राग संकुचित होने लगा।

इसी अवधि में वहाँ 'विजयसेन' नामक आचार्य भगवन् विशाल शिष्य परिवार सहित पधारे। राजा कीर्तिधर सह-परिवार वन्दनार्थ गए। आचार्य भगवंत ने धर्मोपदेश दिया। महाराजा ने उपदेश के अन्त में खड़े होकर अंजली बाँधकर प्रार्थना की।

'प्रभु ! मुझे चारित्र्य प्रदान कर भव सागर से पार उतारने की कृपा करें।'

राजकुमार सुकोशल का राज्याभिषेक किया गया और महाराजा कीर्तिधर ने संसार का त्याग किया।

× × × ×

पति के दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् सहदेवी के सामने दो कर्तव्य उपस्थित हुए। सुकोशल के शिक्षण एवं संस्कार डालने का तथा राज्य के संचालन का। सहदेवी दोनों कर्तव्यों को बड़ी चतुराई से निभा रही थी।

दूसरी ओर महामुनि कीर्तिधर चारित्र्य लेकर गुरूकुल-वास में रहकर संयम की सुन्दर आराधना कर रहे थे। वे ब्रह्म मुहूर्त्त में जाग कर श्री पंच परमेष्ठि भगवन्त का ध्यान करते। श्रुत ज्ञान का एकाग्रतापूर्वक पारायण करते, अप्रमत्त होकर और उपयोग-पूर्वक प्रतिक्रमण-प्रतिलेखना करते....गुरू महाराज की सेवाभक्ति करते और फिर श्रुताभ्यास में अपने मन को पिरो देते। भिक्षा का समय होने पर भिक्षार्थ भटकते, निर्मम भाव से मात्र देह टिकाने हेतु भिक्षा लाते और अन्य

भिक्षुओं को अपनी भिक्षा के लिये प्रार्थना करते—फिर गुरू महाराज की आज्ञा लेकर राग-द्वेष किए विना आहार ग्रहण करते—फिर निहार-विहारादि से निवृत्त होकर ज्ञानार्जन हेतु वैठ जाते।

यह सव करते हुए भी सेवा-भक्ति-विनय-वैयावृत्य आदि करने में वे जरा भी पीछे नहीं रहते थे। गुरू महाराज के अभिप्राय को पहिचान कर तदनुसार अनुसरण करने का तो उनका दृढ़ लक्ष्य वन चुका था।

दूसरी ओर उनके हृदय में उत्तरोत्तर घोर और कठोर आराधना करने की अभिलाषा उग्र वनने लगी। कई वार भयंकर सर्दी में वे वस्त्र उतार कर ध्यान मग्न खड़े रहते तो कई वार उपाश्रय के वाहर किसी वृक्ष के नीचे शीत परिषह को सहन करते। भय संज्ञा को जीतने के लिए कभी-कभी वे गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त कर गाँव के वाहर दोपरहित स्थल पर सारी रात ध्यान करते। विषैले जीव जन्तु हाथ-पाँव और उनके अन्य अंगों पर डंक मारते, फिर भी वे ध्यानस्थ रहते। कई वार वे श्मशान में जाकर काली-काली रातें ध्यान में ही काटते। कोई भूत पिशाच अथवा व्यंतर उनकी निर्भय आत्मा को भयाक्रान्त नहीं वना सकते थे।

गुरू महाराज कीर्तिधर मुनि की ऐसी भव्य और कठोर साधना से वड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने महामुनि को एकाकी विहार कर उत्तमोत्तम आराधना करने की अनुमति दी।

महामुनि भगवन्त श्री जिनेश्वर देव द्वारा वताए गए उग्र साधनामय जीवन के मार्ग पर अग्रसर होने लगे। क्रोध-अभिमान-माया-लोभ-भय-मद-मोह आदि अन्तः शत्रुओं को उन्होंने

वश में कर लिये। देह के ममत्व को तो उन्होंने बिल्कुल हटा दिया। उन्हें चिलचिलाती ग्रीष्म ऋतु डरा नहीं सकती। हड्डियों को भी पिघला डाले, ऐसी हिम वर्षा भी उन्हें चलित नहीं कर सकती।

गाँवों और नगरों में भ्रमण करते करते वे अयोध्या के उद्यान में पधारे, परन्तु उन्हें कोई पहचान न सका कि ये तो अयोध्या के मंगलकारी महर्षि हैं। उन्हें पहचाना जा सके, ऐसा उनमें रहा भी क्या था? हाँ, चर्म चक्षु वाले भले ही उन्हें न पहचान सकें, परन्तु दिव्य दृष्टि वाली अनन्त आत्माएँ तो उनकी अनन्त ऐश्वर्ययुक्त आत्मा को प्रतिपल देख रही थी।

मध्याह्न का समय हुआ।

महामुनि अयोध्या के राजमार्ग पर भिक्षार्थ भ्रमण करने लगे।

सम्राज्ञी सहदेवी महल की अट्टालिका में बैठी थी और अपने वैभवयुक्त नगर तथा नगरवासियों को देख देख कर प्रमुदित हो रही थी।

उसकी दृष्टि राजर्षि कीर्तिधर पर गिरी।

प्रथम दृष्टि उन्हें पहचान न सकी।

द्वितीय दृष्टि शंकाशील हुई।

तृतीय दृष्टि ने निर्णयात्मक ज्ञान करवाया :

आह! ये तो स्वामीनाथ! सम्राज्ञी अनिमेष नयन से अपने स्वामी को देख रही। एक समय के महाराजा…आज उन्हें अयोध्या के राजमार्ग पर दुर्बल देह तथा मलीन वस्त्रों में देखकर सहदेवी की आँखें आँसू से भीगी हो गईं। वे सिंहासन

से उठ खड़ी हुई—पीछे हाथ में पंखा ली हुई खड़ी दासी अचानक सम्राज्ञी को खड़ी होती देखकर चौंक उठी।

'क्यों महादेवी ?'

'नहीं नहीं, कुछ नहीं।' वे पुनः बैठ गईं। क्षण भर में उन्हें ध्यान हो गया कि नीचे जाकर महर्षि को भिक्षार्थ आमन्त्रित करूँ। परन्तु दूसरे ही क्षण एक भय-एक क्रूर विचार-उसके मन में तूफान की भाँति जाग उठा।

यदि पुत्र सुकोशल अपने पिता को देखेगा—तो अवश्य वह इनके साथ चला जायगा। मैं पुत्रविहीन हो जाऊँगी। फिर ये राजा तो मुझे कभी की रखकर चले गए। इस पुत्र को भी ये ले जाएँगे, अतः इन्हें पुत्र सुकोशल पहचान न ले, कोई राजपुरुष पहचान न ले, इसके पूर्व ही इन्हें नगर से बाहर भिजवा दूँ। मेरे नन्दनवन जैसे संसार को वीरान करने के लिये ये यहाँ आए हैं, परन्तु मैं अब मिथ्या राग में इनके चक्कर में नहीं आऊँगी। उनका निश्चय सफल नहीं होने दूँगी। भले ही व्रतधारी हो, भले ही निरपराधी हो—राज्य के खातिर—पुत्र के खातिर इन्हें नगर से बाहर निकलवा कर ही चैन लूँगी।

स्वार्थ की छेनी ने सहदेवी के शुभ भावों को छिन्न कर डाला।

वर्षों तक जिनकी गोद में सिंचन कर मानव सहज वृत्तियों को पोषा है, जिन्हें सैकड़ों बार 'प्राणनाथ ! हृदयेश्वर, स्वामीनाथ !' कहकर स्नेहसुधा का पान किया है—वे आज निर्ग्रंथ बनकर पुनः अयोध्या के राजमार्ग पर भटक रहे हैं—एक मास के उपवास का इन्हें आज पारणा है—ऐसे परम योगी को यह

अभागिनी स्त्री नगर से बाहर निकलवाने का क्रूर विचार कर रही है।

यह है संसार!

यह है वासनाजन्य सम्बन्धों का परिणाम!

सहदेवी ने द्वाररक्षक को आवाज दी। तुरन्त द्वाररक्षक आकर नमन कर खड़ा हुआ।

'कोतवाल को बुला ला।'

'जैसी महादेवी की आज्ञा।' द्वाररक्षक थोड़ी देर में ही कोतवाल को बुला लाया।

'कोतवालजी, आप नगर का क्या ध्यान रखते हैं? मैंने आज यहीं बैठे बैठे निरीक्षण किया।'

'फिर कुछ असंगत बात दिखी?' कोतवाल कुछ भयभीत हुआ।

'इस नगर में इतने अधिक भिखारी कहाँ से आ टपके? अयोध्या में क्या दुष्काल हो गया है? नगर का मूल्य ऐसे भिखारी घटा देते हैं। जाओ! जो कोई भी ऐसे भिखारी रास्ते पर भटकते दिखाई दें, उन सब को बाहर निकाल दो और फिर उन्हें जो कुछ भी चाहिये, वह देकर विदा करो।'

'जैसी महादेवी की आज्ञा।' कोतवाल नतमस्तक हो प्रणाम कर चला गया।

सहदेवी के हृदय को सन्तोष हुआ।

परन्तु····भवितव्यता कुछ विपरीत ही कार्य कर रही थी।

राजा सुकोशल का महल भी राजमार्ग पर ही था। महल के झरोखे में सुकोशल की धात्री शिवा बैठी हुई थी। उसने भी

महर्षि कीर्तिधर को देखा और भावपूर्वक वहीं से वन्दना की। मन ही मन महर्षि के भव्य त्यागमय जीवन का अनुमोदन करती थी। इतने में नीचे अचानक कोलाहल सुनाई दिया। कोतवाल ग्रामरक्षक सैनिकों को आदेश दे रहा था।

'देखो! महादेवी की आज्ञा है—अयोध्या की किसी गली में, यहाँ के किसी भी मार्ग पर कोई भी भिखारी–बावा–भिक्षुक नहीं रहना चाहिये। उन्हें नगर से बाहर ले जाओ। मैं वहीं आता हूँ।'

एक एक करके शीघ्रता से सैनिक चल पड़े। सर्वप्रथम राजर्षि कीर्तिधर ही घर घर घूमकर भिक्षा ग्रहण करते दिखाई दिये। सैनिक उन्हें पहचान न सके। उन्होंने तुरन्त ही महामुनि को खड़ा रक्खा।

'अरे भिखारी! यहाँ क्यों भटकता है? निकल बाहर....'

महामुनि को अपना परिचय कहाँ देना था? सैनिकों के धिक्कारपूर्ण वचनों पर महामुनि को जरा भी क्रोध न आया। उनका हृदय जरा भी क्षुभित नहीं हुआ....वे तो सीधे ही नगर से बाहर चले गये।

परन्तु यह हृदयद्रावक दृश्य देखकर धात्री आग बबूला हो उठी। वह यकायक नीचे दौड़कर गई।

महल के द्वार पर कोतवाल खड़ा था।

'अरे! कोतवालजी! यह आप क्या कर रहे हैं? अयोध्या की पुण्य भूमि पर ऋषि-महर्षियों के अपमान का घोर पाप करके आपने राज्य के साथ घोर अन्याय किया है....' धात्री का मुख क्रोध से तमतमा उठा।

'माता ! आपकी बात सच्ची होगी, परन्तु हम तो राजमाता की आज्ञा का पालन कर रहे हैं....फिर हम अन्यायी कैसे ?'

धात्री ने राजमाता की अट्टालिका की ओर अंगारे बरसाती हुई दृष्टि फेंकी । राजमाता के मुख पर जरा भी शोक या अफसोस नहीं था, अपितु सन्तोष और आनन्द छलक रहा था ।

प्रौढ़ा एवं अनुभवी धात्री थोड़ी ही देर में समग्र परिस्थिति को समझ गई । उसकी आँखों में से अश्रुमार्ग द्वारा क्रोध प्रवाहित होने लगा । वह शोकातुर मुख से तथा आँसू बहती आँखों से अपने महल में प्रविष्ट हुई ।

सामने ही महाराजा सुकोशल से साक्षात्कार हो गया ।

'अरे ! यह क्या माता ?' महाराजा के सुकोमल मुख पर चिंता के बादल छा गए ।

'बेटा, तेरे राज्य में घोर अन्याय हो रहा है........' धात्री ने कह दिया ।

'ऐसा क्या हुआ ?'

'तुझसे क्या होगा ?'

'परन्तु........'

'कुछ नहीं होगा, स्वयं राजमाता अन्याय कर रही हैं....'

'मैं कुछ नहीं समझा....स्पष्ट बात कहें ।

'राजर्षि कीर्तिधर अयोध्या में पधारे थे ।'

'हें ! कब ? कहाँ हैं ?'

'अधीर न हो । राजमाता ने उन्हें देखे ।'

'फिर ?'

कोतवाल को बुलाकर उन्हें नगर से बाहर निष्कासित करवा दिये।

'हैं ?' सुकोशल के मुख पर विषाद और क्रोध....चिंता और उत्सुकता के अनेक भाव उभर आए।

'पर ऐसा क्यों किया ?'

'तू उनके दर्शन कर लेगा तो तू भी चारित्र्य ग्रहण कर लेगा यह भय लगा।' धात्री सिसकियाँ भर भर कर फूट पड़ी।

महाराजा सुकोशल दौड़ते हुए महल के बाहर आए। बाहर अश्व तैयार खड़ा था। तुरन्त अश्वारूढ़ होकर महाराजा ने अश्व को नगर से बाहर हाँक दिया।



३२. मां ?

राजर्षि कीर्तिधर अयोध्या से वाहर उद्यान में वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न खड़े थे। उनकी मुख मुद्रा पर समता-समाधि की अमृत वर्षा हो रही थी। तपश्चर्या की तेजस्विता समग्र देह पर छाई हुई थी। मास क्षमरण का पारण किये विना ही वे लौट गए थे।

सुकोशल अयोध्या के वाहर आ पहुँचा। चारों ओर उसने महामुनि की शोध प्रारम्भ की वह वट वृक्ष के पास आ पहुँचा। महामुनि को देखते ही उसका हृदय गद्गद् हो उठा। उसकी आँखों से आँसू फूट पड़े। वह महामुनि के चरणों में लुढ़क गया और विलख विलख कर रोने लगा।

'भाग्यशाली ! इतना अधिक शोक क्यों? महामुनि ने ध्यान पूर्ण कर वात्सल्य युक्त शब्दों से राजा सुकोशल को शांत करने का प्रयत्न किया। परन्तु सुकोशल का रुदन न रुका, न वह कुछ वोल ही सका।

'सुकोशल ! इसमें किसी का दोष नहीं। मेरे पूर्वकृत कर्म का ही दोष है और वह भी मेरे लिये ही है। सहन करने का अवसर पापोदय के समय ही प्राप्त होता है।'

'प्रभु! वास्तव में यह संसार ही पाप का निमित्त है....... ऐसे संसार को धिक्कार है.......आप कृपा कर मुझे इस संसार से उबार लें।'

'सुकोशल की कैसी सूक्ष्म-दृष्टि! उसने माता का दोष न देखा परन्तु माता के पास अपराध करवाने वाला जो संसार है.......संसार की जो वासनाएँ हैं—उन्हीं में दोष देखा। जब तक जीव संसार की भौतिक वासनाओं पर विजय प्राप्त न करे, तब तक वह अपराध करता ही रहेगा—उससे भूलें अवश्य होंगी। जीवन को अपराधों से बचाने के लिये संसार के विषयों की वासनाओं को ही घटाना आवश्यक है। उनका नामोनिशान ही नहीं रहना चाहिये?'

विश्व पर यह कार्य अध्यात्मवाद कर रहा है। यह मानव को विषयों की स्पृहा से पीछे हटाता है। बुरी वासनाओं को जला कर राख कर डालता है। इससे मनुष्य भूल करने से, अपराध करने से बचता है और मानव सृष्टि में शांति और सुख का वातावरण बनता है। अध्यात्मवाद के सिवाय मनुष्य को कोई भी वासना—विकास की प्रेरणा और प्रोत्साहन दे सके ऐसी नहीं है और इसके बिना अन्याय-अनीति-दुराचार आदि रुकने वाले भी नहीं हैं।

सुकोशल जवान था। अयोध्या के विशाल राज्य का अधिपति था। फिर भी उसके हृदय पर अध्यात्मवाद का प्रभाव था। उसकी दृष्टि में ज्ञान की ज्योति थी। उस ज्योति से वह जगत के प्रसंगों को वास्तविकता की भूमिका से देख सकता था।

वास्तव में सहदेवी का क्या दोष था? उसे पुत्र स्नेह की वासना सता रही थी। उस वासना ने राजर्षि पर द्वेष को

प्रोत्साहन दिया। 'इन्हें देख कर पुत्र भी चारित्र्य ग्रहण करेगा ....फिर मेरा कौन ?' वास्तव में अपराधिनी तो वासना थी। सहदेवी की आत्मा तो निमित्त मात्र थी।

राजमहल में कोलाहल मच गया। दास दासियों के द्वारा बात सारे महल में व्यापक हो गई। सहदेवी पर सभी प्रच्छन्न रूप से अपमान बरसाने लगे, पर राजमाता को कौन कह सकता है ?

सहदेवी को भी पता लग गया कि सुकोशल को राजर्षि के आगमन का पता लग गया है और तुरन्त वह अश्वारूढ़ होकर गाँव के बाहर दौड़ पड़ा है। वह आकुल व्याकुल हो गई। उसने फौरन मन्त्रीगणों को बुलवाया तथा स्वयं सुकोशल की पत्नी चित्रमाला के पास लपक कर गई।

चित्रमाला एक सात्त्विक तथा पतिव्रता सन्नारी थी। सुकोशल की अध्यात्मवाद-सनी आत्मा से वह सुपरिचित थी; इससे उसके हृदय में आनन्द था। कारण यही था कि वह भी यह मानकर चलती थी कि इस जीवन में यदि पुरुषार्थ करने योग्य है तो वह मात्र आत्म कल्याण हेतु ही करने योग्य है, परन्तु इस समय वह गर्भवती थी।

'चित्रमाला ! गजब हो गया........तुझे पता है ?' सहदेवी ने शयनकक्ष में प्रवेश करते ही कहा।

'नहीं माताजी।' चित्रमाला ने खड़ी होकर राजमाता को प्रणाम किया।

'राजर्षि अयोध्या में पधारे हैं। सुकोशल को समाचार

मिले.........वह राजर्षि के पास दौड़कर गया है....अब....?'

'माताजी' आप चिन्ता न करें, मैं अभी जाती हूँ............ उनसे प्रार्थना करूँगी।'

'पर न माने तो.........' सहदेवी मानो भविष्य को देख रही थी।

'तो इन पर हमारा अधिकार ही क्या है ? इनका हम पर अधिकार है।'

सहदेवी चित्रमाला को देखती रही। इतने में दासी ने आकर निवेदन किया कि महामन्त्री आदि आ चुके हैं। सहदेवी चित्रमाला को सपरिवार सुकोशल के पास जाने का कहकर स्वयं अपने आवास में पहुँची।

'महामन्त्री जी! आपको सारी बात मालूम तो हो गई होगी।'

'जी हाँ।'

'आपने क्या सोचा ?'

'मुझे तो लगता है कि महाराजा राजर्षि के पास से पुनः नहीं लौटेंगे।'

'हें ?' सहदेवी की आँखों से आंसू टपक पड़े।

'माताजी, आप चिन्ता न करें। शोक न करें। अयोध्या के राजकुल की यह तो असंख्य काल से चली आ रही रीति है।'

'परन्तु राज्य सिंहासन खाली हो जाएगा इसका क्या ?'

'बस, उन्हें रोकने का यह एक ही उपाय है। उनके सामने यह समस्या रखते हैं और रुक जाएँ तो अच्छी बात है।'

'तो फिर आप तुरन्त जाएँ तथा उन्हें समझाएँ।'

महामन्त्री राज्य के मुख्य मुख्य अधिकारियों को लेकर राजर्षि कीर्तिधर के पास पहुँचे। उनके पीछे अयोध्या के सहस्रों नर-नारी अपने प्रिय राजर्षि के दर्शन करने हेतु उमड़ पड़े।

सभी गए·······सहदेवी नहीं गई। उसका चित्त द्वेष की ज्वालाओं में धधक उठा·······राजर्षि पर उसने मन ही मन भारी क्रोध प्रकट किया। परन्तु वह क्रोधाग्नि कीर्तिधर का कुछ भी बिगाड़ न सकी, वलिक सहदेवी की समता समाधि को भस्मीभूत कर गई।

'क्या करूँ! राजर्षि को तो मैंने नगर बाहर निकलवा दिया—परन्तु लड़का ही वुद्धिविहीन हो, कृतघ्न हो, तो उसका क्या हो? इस मूर्ख को मेरा ख्याल भी नहीं आता। मैंने इसकी सहायता की। अच्छी से अच्छी कन्या ढूँढ कर उससे शादी करवाई—ये सब उपकार यह भूल गया और साधू वनने के लिए निकल पड़ा··········' सहदेवी की आंख से आग बरसने लगी। उसने दांत पीसे। दोनों हाथ जोर से दवाए····राजर्षि कीर्तिधर और राजा सुकोशल को मानो पीस डालने की दुष्ट वासना में खेल रही हो।

राग और द्वेष का कैसा खिलवाड़ चल रहा है! क्षण भर पूर्व ही जिस पुत्र के स्नेह में पागल वन कर अपने पति राजर्षि को नगर से वाहर निकलवाए उसी पुत्र पर अब वह क्रूर विचारों के सिवाय कुछ भी करने में असमर्थ थी अतः इतने से ही संतुष्ट हुई—अन्यथा यदि अनुकूलता हो तो राग-द्वेष जीव के प्रति घोर दारुण व्यवहार करवाने में ज़रा-भी पीछे न रहें।

चित्रमाला रथ में वैठकर परिवार के साथ त्वरित गति से

नगर के बाहर आ पहुँची। वटवृक्ष से कुछ दूर रथ को रोक कर चित्रमाला नीचे उतरकर मर्यादापूर्वक सविनय महामुनि के समक्ष आई। विधिपूर्वक वंदन कर उसने उचित स्थान ग्रहण किया। उसके पीछे ही उसका परिवार भी बैठ गया।

महाराजा सुकोशल महर्षि के चरण पकड़ कर बैठे थे। मौन छा गया। कोई कुछ भी बोला नहीं। इतने में महामन्त्री मंत्रीमंडल सहित आ पहुँचे। राजर्षि को वंदन कर वे महाराजा सुकोशल के सामने विनय पूर्वक बैठे।

'प्रभु! आपने अयोध्या में पधार-कर हम पर महान् कृपा की.... अज्ञानी सेवकों ने आपको पहचाना नहीं.... आपके साथ अनुचित वर्ताव किया.... आप कृपासिंधु हैं.... हमारी भूल क्षमा करें'; महामात्य ने अंजलि बांधकर क्षमा याचना की।

'महामंत्री! सेवकों ने उचित ही किया है। ऐसा प्रसंग देकर वे मेरे कर्मक्षय करने में सहायक हुए हैं।' महामुनि ने मुस्कराते हुए कहा।

'प्रभु! सहायक सेवक नहीं हुए, मेरी माता हुई है।' सुकोशल ने स्पष्टीकरण दिया।

'इसमें भी आपके प्रति माता का स्नेह निमित्त बना है कृपानाथ!' महामंत्री ने महाराजा की ओर देखकर कहा।

'यह स्नेह! सच्चा स्नेह नहीं, किंतु स्वार्थ है, महामंत्री! और संसार में सच्चा स्नेह हो भी तो कहाँ से? संसार नाम ही इसी का है कि जहाँ स्वार्थ साधने की क्रीड़ाएँ होती हैं :—अतः वस्तुतः तो संसारवास ही सर्व पापों का कारण है.... अतः मैंने

तो इस संसार से अब पा लिया— मैं संसार का त्यागकर पिताजी के चरणों में जीवन अर्पण करने हेतु तैयार हो चुका हूँ।'

'नाथ ! पर इस प्रकार राज्य को अनाथ छोड़कर चारित्र्य ग्रहण करना आपको शोभा नहीं देता। नृप विहीन राज्य की कैसी स्थिति होती है, क्या आप उससे अपरिचित हैं ?' चित्र-माला ने गद्गद् स्वर से सुकोशल से निवेदन किया।

'देवी, राज्य का उत्तराधिकारी गर्भस्थ है। अतः राज्य सनाथ है। मैं गर्भस्थ पुत्र का राज्याभिषेक करूँगा,' सुकोशल ने मार्ग बताया।

'पर आप पिताजी का ही उदाहरण लीजिए न ! उन्होंने आपका राज्याभिषेक करके ही चारित्र्य अंगीकार किया था,' चित्रमाला ने राजर्षि की ओर देखकर कहा।

'तुम्हारी बात सच्ची है। मैं भी पुत्र का राज्याभिषेक करने का इच्छुक हूँ, अन्तर इतना ही है कि मेरा जन्म होने के पश्चात् पिताजी ने मेरा राज्याभिषेक किया था, मैं गर्भस्थ पुत्र का अभिषेक करना चाहता हूँ।'

'आप कुछ वर्ष रुक जाएँ....ऐसी मेरी दीनतापूर्ण प्रार्थना है' चित्रमाला की आँख से आँसू उमड़ पड़े।

'तुम शोक न करो। तुम मेरी अन्तरात्मा से परिचित हो.... मेरा हृदय अब संसार वास में टिक सकने में असमर्थ है....अब मुझे एक पल भी विपुल लगता है। एकांत रहकर, आत्म परा-यण होकर, कर्मों के बन्धन काट कर–परम पद को प्राप्त करने की तीव्र भावना जाग्रत हो चुकी है—अब मुझे संसार वास में

रोक कर तुम मुझे सुखी कर सकोगी क्या? तुम्हें भी मैं क्या सुख दे सकूँगा?' सुकोशल ने चित्रमाला की ओर देखा।

अब तक मौन रहकर श्रवण करते हुए राजर्षि ने मधुर वाणी में चित्रमाला से कहा :

'हे सौभाग्यशालिनी! सुकोशल के श्रेयोमार्ग में तुम्हें साथ देना चाहिये। परमात्मा श्री जिनेश्वरदेव के शासन को जो आत्मा समझ चुकी है, उसका यही कर्तव्य होता है।'

बस! अब चित्रमाला को कुछ भी बोलना नहीं सूझा। उसने अंजलि बाँध कर महर्षि के वचनों को शिरोधार्य किया। मन्त्रीवर्ग ने भी मौन रहकर अपनी अनुमति प्रदर्शित की।

एकत्रित हुए हजारों नर-नारी तो अपने लाडले युवान महाराजा को चारित्र्य के लिये तत्पर देखकर अविरल अश्रु-धाराओं से रो पड़े। महाराजा सुकोशल ने वहाँ सबको जीवन का-महान् कर्तव्य समझाया, आत्म तत्त्व का परिचय करवाया, कर्म के बन्धनों से मुक्त होने की प्रेरणा दी। वहीं गर्भस्थ पुत्र का राज्याभिषेक करके महाराजा सुकोशल ने राजर्षि कीर्तिधर के पास संयम स्वीकार कर लिया।

दीक्षा के समाचार वायुवेग के साथ सहदेवी को प्राप्त हो गए। वह पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। दासियों ने शीतल जल छिड़क कर, पंखे डुलाकर उसे चेतन किया, परन्तु उसका विलाप कम न हुआ। दिन-दिन और माह-प्रति-माह विलाप-वेदना बढ़ती चली, चित्रमाला ने बहुत-बहुत आश्वासन दिया, परन्तु निष्फल....मन्त्रीमण्डल ने पुनः-पुनः

समझाने की कोशिश की····परन्तु निराशा····वह तो कल्पना करती ही रही।

उसने अन्न त्याग कर दिया, स्नान वन्द कर दिया, घूमना-फिरना छोड़ दिया, कभी तो वह रागाकुल होकर पुत्र सुकोशल को याद करती-करती हृदय विदारक रुदन करने लगती—कभी द्वेष-प्रचंड वनकर अंग-अंग से सुकोशल पर अग्नि-वर्षा करने लगती—तो कभी पगली सी होकर अट्टहास करने लगती····

तन-मन की शक्तियाँ क्षीण हो गईं। एक दिन संध्या के समय सहदेवी की आत्मा ने मानव देह का त्याग कर दिया।

राग और द्वेष की क्रीडा में उसने मानव जीवन का जूआ खेला।

मानव जीवन वह हार गई—जूआ खेलने की अतृप्त तमन्नाओं को लेकर वह एक गिरि-गुफा में पहुँच गई—सिंहनी के गर्भ से उसने सिंहनी के रूप में अवतार लिया। यहाँ उसे राग द्वेष युक्त खिलवाड़ करने का विशाल क्षेत्र प्राप्त हो गया···· अमर्यादित क्षेत्र मिल गया।

दूसरी ओर पिता-पुत्र को राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने का विशाल क्षेत्र प्राप्त हो गया! निर्मम और निष्कषाय होकर पिता-पुत्र पृथ्वी तल को पावन कर रहे थे।

वीतराग का वरण करने हेतु उन्होंने अपूर्व पुरुषार्थ किया। तन को तपश्चर्या में रोक कर, मन को ध्यान में पिरो दिया। अयोध्या के राजेश्वर, धरातल के योगीश्वर भारत को निवृत्ति मार्ग की श्रेष्ठता वता रहे थे।

चातुर्मास का काल निकट आ रहा था। राजर्षि सुकोशल

की आत्मा भव्य साधना करने के लिए व्यग्र हो रही थी। उन्होंने योगीश्वर कीर्तिधर के चरणों में वंदन कर अंजली बाँध कर प्रार्थना की—

'प्रभु ! चातुर्मास का काल निकट आ रहा है………'

'हाँ, मुनि !' कीर्तिधर महायोगी ने सुकोशल की आंखों में चमकता हुआ प्रकाश देखा।

'प्रभु ! हम किसी गिरि-गुफा में चलें—दोषरहित स्थान पर चारों माह परमात्मा के ध्यान में रहें……यदि आप कृपालु को……'

'मुनि ! तुम्हारा मनोरथ सुन्दर है,' महामुनि ने सुकोशल महात्मा की भावना को प्रोत्साहन दिया।

'तो हम ऐसी किसी गिरि-गुफा की ओर विहार करें।'

पिता-पुत्र की कैसी अद्भुत जोड़ी। एक साधना मार्ग। एक साधना-विचार ! एक तमन्ना—एक ही आदर्श।

दोनों ने विहार किया। वसंत-पर्वत की तलहटी में पहुँचे।

निकट ही ग्वालों का एक छोटा सा गाँव बसा हुआ था। महात्माओं ने वहाँ चार माह के उपवासों का अंतःपारण किया और पर्वत पर आरोहण शुरू किया। एक के पश्चात् एक शिखर पार करते हुए वे एक विशाल गुफा के द्वार पर आ पहुँचे।

एक बड़ी सी शिला को ही कुरेद कर गुफा बनाई गई थी। गुफा में मनोरम शिल्पकला के दर्शन होते थे। विशेषता तो यह थी कि इसी शिला में एक भव्य जिन मूर्ति भी बनाई हुई थी।

नीरव शांति थी। साधनानुकूल वातावरण व्याप्त था। महात्माओं ने गुफा के अधिष्ठायक की प्रार्थना-स्तुति की। श्री जिनेश्वर भगवंत की भावपूर्वक अर्चना की; और ध्यानोपासना का आरम्भ किया।

न था खाना, न था पीना! चार माह का उपवास। एक ही काम था—आत्मा को परमात्मभाव के साथ संयुक्त करना। ज्यों ज्यों दिन व्यतीत होने लगे, त्यों त्यों उन्हें अगम-अगोचर अनुभव प्रकाश प्राप्त होने लगा। सहज ज्ञान स्फुरण प्रकटित होने लगे। अनुपम आनंदानुभूति होने लगी।

वे इसी सृष्टि पर होते हुए भी इस सृष्टि पर विलास करते हुए अज्ञानता, मोह, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया आदि असंख्य पाप-पिशाच इस गिरि-गुफा में रही हुई उनकी आत्मा गुफाओं के द्वार पर भी फटक नहीं सकती थी। उनकी आसुरी शक्ति महात्माओं की अनंत आत्म-शक्ति के आगे लाचार होकर भटक रही थी।

महात्मा सुकोशल का आत्मबल छलाँगे भर रहा था। वीतराग की ज्योति उनके निकट आ रही थी। आत्म सुख का सागर तरंगित हो चुका था।

चातुर्मास पूर्ण हुआ।

दोनों महात्माओं ने गद्गद् कंठ से भक्ति युक्त हृदयपूर्वक भगवंत श्री जिनेश्वरदेव के चरणों में भक्ति के पुष्प चढ़ाये—रोमांचित शरीर से दोनों गुफा से बाहर निकले।

वसंत पर्वत की वनराजियों ने झुक झुक कर दोनों योगीश्वरों का स्वागत किया।

पक्षियों ने प्रदक्षिणा लगाई।

परम ब्रह्म की तृप्ति का अनुभव करते·······ध्यान सुधा की डकारों का आस्वादन करते करते पिता पुत्र वसंताद्रि से नीचे उतरने लगे।

उनकी दृष्टि भूमि पर थी—सिंहनी की दृष्टि उन पर पड़ी।

मानव जीवन में हारी हुई सहदेवी की आत्मा—यही सिंहनी।

सुकोशल को देखते ही सिंहनी की वैर-वृत्ति भभक उठी। उसकी प्रलयंकारी काल सदृश डाढ़ें विस्तृत हो गईं। पर्वत शिलाओं को चीर डाले ऐसी गर्जना की—फिर एक छलांग भरी। एक–दो और तीन छलांगों में तो वह महात्माओं के निकट आ धमकी।

ज्यों ही सिंहनी की गर्जना हुई, दोनों महात्मा सावधान हो गए।

उन्हें भागना तो था नहीं, उन्हें सिंहनी से डर तो था नहीं। न सिंहनी से अपनी देह की उन्हें रक्षा करनी थी।

वे तो सावधान हुए आत्म-समाधि हेतु। देहोत्सर्ग के समय समता की सिद्धि हेतु।

दोनों महात्मा ध्यानस्थ होकर खड़े रह गए। जगत की समग्र जीव सृष्टि को क्षमादान दिया, परम कृपालु परमात्मा श्री जिनेश्वरदेव के ध्यान में लीन हो गए—उनकी आत्मसृष्टि से जगत् के सारे पदार्थ दूर हो गए। यहाँ तक कि उनकी देह भी दूर हो गई। परमब्रह्म में लीनता को सिद्ध कर ली।

सिंहनी ने छलांग भरी····उसके क्रूर पंजे महात्मा सुकोशल की देह पर टूट पड़े। मुनि की देह धरती पर लुढ़क पड़ी।

आत्मा तो परम ब्रह्म की लीनता में उच्च आरोहन कर रही थी।

चट्-चट्-चट्-चमड़ी चीर डाली।

गट्-गट्-गट्-रुधिर पिया।

तट्-तट्-तट्-माँस के लोथड़े तोड़े और प्रसन्नचित्त से खाए।

देखो! यह एक समय की स्नेह करने वाली माँ! पुत्र की खातिर पागल बन जाने वाली माँ! जो पुत्र को एक बार अपने हृदय का अभिमान करवाने वाली थी। आज वही उस पुत्र की देह का रक्तपान कर बदला ले रही है। जिस पुत्र की देह को गोद में लेकर दुलार करती थी माँ—वही आज उसी पुत्र की देह का माँस चीर चीर कर खा रही है। जिस पुत्र के देह चर्म को चुम्बन से आलिंगन दिया करती थी, वही माँ आज उस पुत्र के देहचर्म को कसाई की भाँति चीर रही है।

यह है संसार-और संसार के परिणाम—दारुण स्नेह-सम्बन्ध। परिणाम दृष्टा ज्ञानी आत्माएँ संसार को—संसार के स्नेह सम्बन्धों को छोड़ कर चले जाते हैं, वह इसीलिए।

'संसार के स्नेह सम्बन्धों में विवेकशून्य होकर हम किसी भी जीव के साथ अन्याय न कर बैठें—' ऐसी विशाल दृष्टि ज्ञानी पुरुषों को संसार के स्नेह सम्बन्धों से मुक्त बना देती है।

देह से सर्वथा ममत्व शून्य बने हुए महात्मा सुकोशल, जिस समय उनकी देह सिंहनी द्वारा विदीर्ण हो रही थी, तब धर्म ध्यान से शुक्ल ध्यान में आरूढ़ हुए थे—ध्यानाग्नि में घाति कर्म भस्मीभूत हो गए थे। कैवल्य प्रकटित हुआ—अघाति कर्म

३३. हिरण्यगर्भ

सुकोशल प्रिया, चित्रमाला ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का नाम 'हिरण्यगर्भ' रक्खा। कालक्रम से हिरण्यगर्भ यौवनवय में आया।

चित्रमाला ने मृगावती नामक सुशीला राजकन्या के साथ हिरण्यगर्भ का ब्याह किया।

हिरण्यगर्भ ने राज्य का कार्यभार सम्पूर्णतया सम्हाल लिया। माता चित्रमाला ने आत्म साधना में चित्त पिरो दिया।

वर्षों के व्यतीत होने में कितनी देर! हिरण्यगर्भ वृद्धावस्था के द्वार पर आ पहुंचा—परन्तु सुख वैभव के नशे में, मानव जीवन का वह सदुपयोग न कर सका। हाँ····कभी कभी अपने चारित्र्यी पूर्वजों की परम्परा उसको स्मृति में उभर आती थी और अल्प क्षणों में ही विलीन हो जातीं। सम्भव है, इस स्मृति की सूक्ष्म चिनगारियाँ कहीं कहीं रह जाती हों।

रानी प्रभावती का प्रेम अब भी ऐसा ही अस्खलित धारा में प्रवाहित हो रहा था।

इस प्रेम के प्रवाह में हिरण्यगर्भ मस्त बनकर सुख पान कर

विदुषी रानी पति के कथन का तात्पर्य समझ गई, परन्तु समझने के साथ ही उसकी कोमल देह में भयंकर कम्पन व्याप्त हो गई। हिरण्यगर्भ उसे समझ गया।

'भय लगा देवी ?'

'भय तो नहीं, परन्तु........'

'यह तो अयोध्या के कुल की, असंख्यकाल से चली आ रही परम पवित्र परम्परा है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की और उसके लिये संसार का त्याग कर साधुता स्वीकार करने की!'

मृगावती मौन रही, परन्तु उसके चित्त में एक के पश्चात् एक अनेक प्रश्नों की झड़ी उपस्थित होने लगी, क्योंकि वह विदुषी थी। एक महान् देश की पटरानी थी।

'नाथ! क्या मृत्यु पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है ?'

हिरण्यगर्भ मृगावती के मुख की ओर देखने लगा—फिर उसने अपनी दोनों आँखें बन्द कर दीं और वह अपनी आत्मभूमि पर पहुँच गया—जहाँ ज्ञान का प्रकाश है, विवेक की ज्योति है। राजा को वह प्रकाश प्राप्त हुआ। दीर्घकाल के रागरंग भरे जीवन में आनन्द न था, वह अनुभूत किया। वह आनन्द उसे ज्ञान प्रकाश प्राप्त होते ही हुआ। उसने आँखें खोलीं—मृगावती की ओर देखा।

'देवी! क्या मृत्यु पर विजय प्राप्त किये बिना अनन्त, अपार, अक्षय सुख की प्राप्ति सम्भव है ?' हिरण्यगर्भ ने प्रश्न किया।

'क्या संसार के इन सुखों में किसी प्रकार की न्यूनता, अभाव है ? इसका त्याग करने की क्या आवश्यकता है।'

एक तत्त्वज्ञानी वैरागी वन गया। कहाँ से आया यह तत्त्व-ज्ञान ? तत्त्वज्ञान अथवा वैराग्य बाहर से लाने की वस्तु नहीं है। यह तो सोई हुई आत्मा जहाँ जाग्रत हुई कि तत्त्वज्ञान और वैराग्य का फव्वारा बहना शुरू हुआ—समझो। हिरण्यगर्भ की आत्मा 'सफेद बाल' रूपी यमदूत के आगमन से जाग चुकी है।

'क्या मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् ही ऐसा अनुपम सुख मिलता है ?'

मृगावती की जिज्ञासा तृषातुर हरिणी जैसी बन गई। तृषा तृप्त करने के लिये वह तत्त्वामृत पीती ही जा रही है।

'हाँ, जहाँ तक मृत्यु है—तब तक ऐसा सुख मिलना असम्भव है। जहाँ तक शरीर के साथ आत्मा का सम्बन्ध है, तब तक मृत्यु है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् शरीर रहित मात्र आत्मा का ही जीवन आरम्भ होता है—फिर मृत्यु आ नहीं सकती। बस ! शरीर के संयोग बिना मात्र आत्मा का ही जीवन आरम्भ हुआ कि स्वाधीन, नित्य और अभय सुख की अनन्त मस्ती प्राप्त हो गई।'

'इसका भी अन्त तो होता होगा न ?'

'नहीं तो इसका अन्त ही नहीं। इसीलिये तो इसे नित्य कहते हैं, अनन्त कहते हैं।

'सुख तो वास्तव में ऐसा ही प्राप्य है, परन्तु क्या साधु-वेश धारण किये बिना, यहीं महल में रहकर इसकी प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ नहीं हो सकता ?'

'क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि महल की आसक्ति साधु-

वेश धारण करने में बाधक होती है ? इस आसक्ति का नाश करने की आवश्यकता समझती हो या नहीं ?'

'क्या अनासक्त होकर महल में नहीं रहा जा सकता ?'

'यदि आसक्ति हीन हो तो फिर महल में रहने की भी क्या आवश्यकता है ? वन-जंगलों में ही क्यों न रहा जाय ?'

'महल में रहने से राज्य के प्रति, कुटुम्ब के प्रति अन्य कर्तव्यों का पालन भी हो सकता है न ? साथ ही अपना आत्म-हित भी हो जाता है।'

'देवी ! अब भी क्या सांसारिक कर्तव्यों का निभाना शेष रह गया है ? क्या मृत्यु के अन्तिम घूँट तक संसार ही कर्तव्य है ? राज्य के कर्तव्यों को निभाने का उत्तरदायित्व अब हमारा नहीं। नघुप राज्य चलाने में समर्थ है। जीवन में कोई भी एक कर्तव्य सदा के लिये नहीं होता। जीवन के भिन्न-भिन्न कालों में कर्तव्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं।'

मृगावती मौन रही। उसके मौन में गम्भीरता थी, गहनता थी, उसके हृदय में पति के विचारों ने प्रवेश किया था। उन विचारों को हृदय में अंकित करने के लिये, कोई भी प्रतिपक्षी विरोधी विचार उसके हृदय में न रह जाए, इसके लिये खोज खोज कर उसका निष्कासन करना शुरू किया।

उसने हिरण्यगर्भ को एक के पश्चात् एक अनेक प्रश्न पूछे। यह सब हिरण्यगर्भ के विचारों का विरोध करने हेतु नहीं, परंतु उनके विचारों को भली प्रकार समझने हेतु····विशेष स्पष्टता से समझने हेतु।

आज मनुष्य प्रायः दूसरे के उदात्त विचारों को सुनकर, उन्हें ध्वस्त करने की दृष्टि से प्रश्नों का आक्रमण करता है। दूसरे के उत्तम विचारों को समझने की रीति तो रही नहीं। अपने ही विचारों को सर्वोपरि मानने का मिथ्याभिमान बढ़ा रहा है।

'देवी, किस विचार में डूब गई?' मृगावती को मौन देख कर हिरण्यगर्भ ने पूछा।

'आपके पवित्र, भव्य आशय को समझने का प्रयत्न कर रही हूं, क्योंकि मुझे भी तो आपके ही मार्ग पर आना है न!'

'अति सुन्दर।' हिरण्यगर्भ को आनन्द हुआ।

हिरण्यगर्भ विभूषागृह से निकलकर अपने विश्राम कक्ष में आए। द्वारपाल को बुलाकर महामन्त्री को बुला लाने का आदेश दिया। समाचार प्राप्त होते ही महामन्त्री हिरण्यगर्भ की सेवा में उपस्थित हुए। नमन कर उचित आसन पर आसीन हुए।

'महामन्त्रीजी!'

'जी, महाराजा....'

'अब नघुष का राज्याभिषेक कर देना चाहिए।'

'क्या शीघ्रता है, देव?'

'शीघ्रता? बड़ा विलम्ब हो गया है। मेरे जितना विलम्ब तो पिताजी या पितामह किसी ने नहीं किया था।'

'युवराज राज्याभिषेक के लिए सम्पूर्णतया योग्य हैं,' महामन्त्री ने नघुष में अपना विश्वास व्यक्त किया।

नघुप ने अनेक कलाएँ सिद्ध कर रक्खी थीं। मृगावती ने पुत्र के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के विकास पर पूर्ण लक्ष्य दिया था। बाह्य युद्ध कला, शस्त्र कला और शास्त्र कला के साथ साथ आत्म कल्याण का मार्ग भी भली प्रकार समझाया था। शील और सदाचार की प्रेरणाएँ दी थीं। प्रजा में भी नघुप लोकप्रिय हो चुका था। उसका पाणिग्रहण भी सिंहिका नामक सुशीला राजकन्या के साथ हुआ था।

शुभ मुहूर्त में नघुप का राज्याभिषेक किया गया।

दूसरी ओर वनपालक शुभ वधाई लेकर उपस्थित हुआ।

'महाराजा की जय हो। उद्यान में 'विमल' नामक महा-मुनीन्द्र पधारे हैं। अनेक मुनि-भगवन्तों से परिवृत्त हैं। यौवनवय होते हुए भी निर्विकारी दीखते हैं। मुख पर तपश्चर्या का तेज है।'

राजा हिरण्यगर्भ ने वनपालक को प्रतिदान से अनुगृहीत कर दिया और वे तुरन्त अपने परिवार को साथ लेकर मुनि भगवन्तों के दर्शनार्थ रवाना हो गये। उद्यान में पहुँचते ही उनका हर्ष बहुत ही बढ़ गया। महामुनि के दर्शन करते ही उनका हृदय हर्ष से नाच उठा। राजा ने भावपूर्वक वन्दना की। रानी मृगावती ने भी वन्दना की और विनयपूर्वक मुनि-वर के सम्मुख सारा परिवार यथा स्थान आसीन हो गया।

विमल मुनिवर ने गम्भीर ध्वनि में 'धर्मलाभ' का आशी-र्वाद देकर मंगल उपदेश प्रारम्भ किया। जैसे जैसे हिरण्यगर्भ उपदेश श्रवण करते गए, वैसे वैसे उनकी सर्वत्याग की भावना उल्लसित होती गई। मृगावती के हृदय में भी संसार के सुखों

के प्रति आसक्ति हटती गई। उपदेश पूर्ण हुआ। हिरण्यगर्भ ने करबद्ध प्रणाम कर विनम्र भावपूर्वक महामुनि से प्रार्थना की :

'कृपानाथ ! आपकी वाणी का श्रवण करने से हमारे हृदय से संसार का राग नष्ट हो चुका है। भवसागर से पार उतारने वाले संयम मार्ग का दान देकर हमें कृतार्थ करें।' हिरण्यगर्भ ने मृगावती की ओर देखा। मृगावती ने तो कभी से अपनी सहमति पति को दे दी थी। नगर में भी बात फैल चुकी थी।

जिन प्रासादों में महोत्सव आयोजित हुए।

याचकों को दान दिये जाने लगे।

नगर के द्वार पर तोरण बाँधे गए।

राजमार्गों पर सुगन्धित जल छिड़के गए।

शुभ मुहूर्त में राजा-रानी ने परम कृपानिधि विमल मुनिवर के पावन हाथों से चारित्र्य अंगीकार किया। नगरजनों के साथ नघुष ने भी राजर्षि के चरणों में वन्दना की।

नाम किसका अमर रहा है ?

एक दिन पूर्व महाराजा हिरण्यगर्भ की जय जयकार का नाद होता था। आज महाराजा नघुष की जय-जयकार का नाद सुनाई देने लगा।

नघुष ने राज्य की बागडोर हाथ में लेते ही सर्वप्रथम अयोध्या की सीमा को सुरक्षित करने का काम हाथ में लिया। अयोध्या के शत्रु राजाओं का पता लगा लिया। अयोध्या के विशाल राज्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी प्राप्त कर ली। मालूम करते करते पता चला कि उत्तरापथ के राजाओ का बल बढ़ता जा रहा है और कभी न कभी अयोध्या पर टूट पड़ने का

उनका इरादा है। नघुप ने उगते हुए शत्रु को दवा देने की नीति का पालन किया।

उसने महामन्त्री और मुख्य सेनापति को मन्त्रणागृह में बुलवाया और अपनी राजनीति समझाई। 'मेरा विचार यह है कि हमें अपने उगते हुए शत्रु का दमन कर देना चाहिए, आपकी दृष्टि से कौन कौन कैसे कैसे शत्रु दिखाई देते हैं?'

'महाराजा! जहाँ तक शत्रु हम पर हमला न करें, तब तक हमें उसका निग्रह करने का प्रयत्न क्यों करना चाहिये?' महामन्त्री ने अपना विचार व्यक्त किया।

'उत्तरापथ के राजाओं की सीमा पर क्या शरारत नहीं होती?' नघुप ने सेनापति की ओर देखा।

'जी हाँ। वार वार वे राजा अपना वर्चस्व जमाने के लिये प्रयत्न करते रहते हैं, परन्तु अपनी सेना उन्हें सफल नहीं होने देती।' सेनापति ने नघुप के मत का अनुमोदन किया।

'इसीलिए, मुझे लगता है कि एक वार उनका कठोर निग्रह कर लेना चाहिये। साथ ही उत्तरापथ का कोई एक ही राजा शत्रु नहीं, पर अनेक हैं। अतः उनके निग्रह हेतु हमारी तैयारी भी इतनी ही विशाल स्तर पर होनी चाहिये।'

'वह तो महाराजा के पुण्यप्रभाव से हो जाएगी, पर....' सेनापति ने महामन्त्री की ओर देखा।

'हमें उनका राज्य छीनना नहीं है। हमें तो इन्हें पराजित कर पुनः वे अयोध्या की ओर आँख न उठाएँ—ऐसी व्यवस्था करनी है।' नघुप ने महामन्त्री से अभिप्राय चाहा।

'आपका इरादा बुरा नहीं है। प्रजा की सुरक्षा के लिए आप जो सोच रहे हैं, वह उचित ही है।' महामन्त्री ने समर्थन किया।

'सेनापतिजी! अब आप सेना तैयार करें। तैयारी में भी महिने बीत जाएँगे।'

'जैसे हो वैसे जल्दी ही तैयारी करके आप कृपालु से निवेदन करता हूँ।' सेनापति नघुप के चरणों में प्रणाम कर विदा हुए।

'महामन्त्रीजी! अन्य तो कोई तैयारी शेष न रहती न?' नघुष ने पूछा।

'हम सारी सेना लेकर जाएँगे, तो अयोध्या के रक्षण के विषय में भी तो सोचना पड़ेगा न?'

'अयोध्या को क्या अन्य किसी का भी भय है? जो हमारा शत्रु है उसके सामने तो हम जा ही रहे हैं।'

'फिर भी अयोध्या को सूनी छोड़कर कैसे जा सकते हैं?'

'वैसे तो नगर रक्षक दल रहेगा न?'

'जी नही, सेना भी रहनी चाहिये।'

'मन्त्री के आग्रह पर नघुष क्रुद्ध हुआ, परन्तु अनुभवी प्रौढ़ महामन्त्री की बात को सर्वथा उड़ा देने का उसका साहस न हुआ।

'थोड़ी बहुत सेना रखने के लिए सेनापति जी आप कह दें।'

'मैं इसलिए आग्रह कर रहा हूँ कि राजकीय क्षेत्र में कभी कभी कल्पनातीत प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं। कभी कभी मित्र राज्य शत्रु राज्य बन जाते हैं।'

महामन्त्री ने अपना अभिप्राय स्पष्ट किया। नघुष को यह विचार उचित लगा। महामन्त्री को विदा कर नघुष अपने विश्राम गृह में आया। वहाँ सिंहिका रानी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

'देवी ! एकाध माह में मुझे उत्तरापथ जाना पड़े'—आराम आसन पर बैठते हुए नघुष ने सिंहिका को अपने विदेशगमन की बात कही।

सिंहिका मौन रही।

'लौटने में कितना समय लगेगा, कह नहीं सकता।'

'मैं भी आपके साथ ही·······'

'नहीं नहीं, तुम यहीं रहोगी। यह तो युद्ध का मामला रहा। कभी कहीं रहना पड़ता है, तो कभी कहीं भोजन व्यवस्था करनी पड़ती है। तुम तो यहीं रहो, यही उत्तम है।'

'आपको मेरी चिंता न करनी पड़ेगी। छाया तो पुरुष का अनुगमन ही करती है न?' सिंहिका ने साथ जाने के लिये तत्परता बताई।

'हाँ, भले ही तुम साथ चलो, परन्तु फिर इस अयोध्या को कौन सम्हालेगा ? तुम यहीं रहोगी तो प्रजा को बड़ी शांति रहेगी। वह उत्साहित रहेगी।'

नघुष की यह बात सुनकर सिंहिका सोच में डूब गई।

उसकी दृष्टि अयोध्या के लाखों प्रजाजनों पर दौड़ी । प्रजा उसे बहुत वहुत चाहती थी । पति की बात उसके हृदय में वैठ गई ।

'नाथ ! आपकी आज्ञा मुझे मान्य है । खुशी से पधारे तथा विजय प्राप्त कर लौटें ।'

नघुष के हृदय को आनन्द हुआ ।



३४. सिंहनी सदृश सिंहिका

'महादेवी ! गजब हो गया.......'

'क्या हुआ ?'

'दक्षिणापथ के राजा एकत्रित होकर आ रहे हैं.......'

'कौन कौन हैं ?'

'राजदेव, अलंकार देव.......सह्यांद्रि.......आदि.......'

गुप्तचर ने आकर सिंहिका रानी के समक्ष समाचार प्रस्तुत किए। सिंहिका रानी सोच में डूब गई। नघुप तो विशाल सेना लेकर उत्तरापथ की ओर पहुँच गया था। अनेक वीर सेनापति भी युद्ध में गए थे, महामन्त्री भी नघुप के साथ गए थे। किसी ने कल्पना भी न की थी कि दक्षिणापथ के राजा लोग अयोध्या पर आक्रमण करेंगे।

राजनीति किसका नाम ! शत्रु मित्र बनकर आता है ! मित्र शत्रु बन जाता है !

दक्षिणापथ के राजाओं को पता लगा कि नघुप अपनी समग्र सेना लेकर उत्तरापथ की ओर गया हुआ है.......अयोध्या सूनी है।' उन्होंने अवसर का लाभ उठाया। ऐसा अचानक

आक्रमण किया कि उत्तरापथ गयी हुई सेना लौटे इसके पूर्व ही अयोध्या पर आधिपत्य जम जाए !

झूठ-कपट और जहर से भरी हुई राजनीति को महर्षियों ने नरक का मार्ग वताया है, वह यथा-स्थिति ही कहा है। सत्ता का सिंहासन ऐसा उन्मादजनक है कि इस सिंहासन पर बैठकर न्याय-नीति और सदाचार पालन ही अशक्य सा है। कोई विरल विभूति ही इनका पालन कर सकती है।

यद्यपि महामन्त्री को शंका तो थी ही, क्योंकि वह कुशल राजनीति के दाँवपेच से सुपरिचित था, परन्तु तृप्त रक्त वाले पराक्रमी नघुष का दक्षिणापथ के राजाओं पर मित्रता का विश्वास था। फिर भी महामन्त्री के आग्रह वश नघुष को अयोध्या में पाँच हजार की सेना रखनी थी। पर·······सेनापति विहीन सेना शत्रु का क्या सामना कर सकती है ?

सिंहिका जैसे गृहकला में निपुण थी, वैसे ही युद्धकला में भी प्रवीण थी। उसने अपनी कुमारिका-अवस्था में युद्धकला का सुन्दर प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

राजरानी को युद्ध के मैदान में उतरना पड़े ऐसी परिस्थिति अयोध्या-वासियों ने देखी न थी। परन्तु सिंहिका के लिये युद्ध सिवाय अन्य कोई मार्ग ही न था। यदि 'मेरी युद्ध में लडने की मर्यादा नहीं·······ऐसा एकान्त सिद्धान्त पकड़कर बैठ जाए, तब तो सारे राज्य पर भय के बादल मँडराने लगे। सिंहिका ने गहन विचार किया। उसकी अन्तरात्मा को यही उचित लगा कि उसे रणक्षेत्र में उतरना चाहिये।

नगर में कोलाहल बढ़ रहा था। प्रजा में भय व्याप्त होने लगा था। सिंहिका ने द्वारपाल को बुलाया।

'जाओ, सेनापति सुमुख को बुला लाओ।'

जो थोड़ी सी सेना अयोध्या में रही थी, उसका सेनापति सुमुख था। द्वारपाल फौरन ही सुमुख के पास पहुँचा; और सिंहिका रानी का संदेश दिया।

सेनापति तुरन्त ही द्वारपाल के साथ रानी की सेवा में उपस्थित हुआ।

'आपको समाचार तो मिले होंगे कि दक्षिणापथ के राजा लोग अयोध्या पर आक्रमण करने आ रहे हैं?,' सिंहिका ने पूछा।

'महादेवीजी! लोगों के मुँह से ऐसी बात सुनी है, परन्तु इसके सत्यासत्य के विषय में मैं निश्चित् नहीं हूं।'

'बात सच्ची है। हमारे गुप्तचर ने आकर समाचार दिया है और चौबीस घण्टों में तो अयोध्या के रहावन में दक्षिणापथ के लाखों सैनिक आ धमकेंगे।'

सुमुख विचारमग्न हो गया।

'क्यों! चिंतित कैसे हो गए, सेनापतिजी!'

'महादेवीजी, हमारे पास मात्र पाँच हजार सैनिक ही तो हैं लाखों का सामना मात्र पाँच हजार से कैसे सम्भव होगा। इस चिन्ता में डूब गया.......'

'सेनापतिजी! हमारे पास भी लाखों सैनिक हैं! अयोध्या के लाखों प्रजाजन हमारे सैनिक हैं—आप चिन्ता न करें।'

'पर चौबीस घण्टों में तो.......'

'चौबीस घटिकाएँ ही शेष क्यों न हों? डरने की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं
की धारणा को मैं

सुमुख तो सिंहिका के सामने ही देखता रहा। सिंहिका के जोश ने सुमुख के हृदय में साहस और शौर्य की हूँकार भर दी।

'अब आप विलम्ब न करें। अयोध्या के चारों विशाल द्वार वन्द करवा दें। प्रत्येक द्वार पर एक एक हजार की सेना नियुक्त कर दें और शेष एक हजार सैन्य को लेकर आप तैयार रहें।

सेनापति रानी को नमन का रवाना हो गए।

पुनः सिंहिका ने द्वारपाल को बुलाया। द्वारपाल वंदन कर उपस्थित हुआ। 'जाओ, अश्वपाल को बुला लाओ।'

पन्द्रह मिनिट में ही अश्वपाल को लेकर द्वारपाल उपस्थित हुआ।

'अश्वशाला में कितने अश्व उपस्थित हैं।'

'दस हजार, महादेवी।'

'नगरवासियों के पास कितने अश्व होंगे ?'

'लगभग पच्चीस से तीस हजार अश्व नगर में होने चाहियें।'

'तुम अपने पास के दस हजार अश्वों को तैयार रक्खो, और मेरे लिये इनमें से एक युद्धनिपुण अश्व का चयन कर ले आओ।'

'जैसी महादेवी की आज्ञा।'

अश्वपाल के जाते ही सिंहिका ने द्वारपाल को बुला कर आज्ञा दी। सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि प्रत्येक प्रजा-जन, स्त्री और पुरुष राजभवन के पटांगन में एकत्रित हों।'

फौरन सैनिक अयोध्या की गली गली में युद्ध की भेरी वजाते हुए और घोषणा करते हुए घूम आये। लोग अपने अपने काम छोड़कर राजभवन की ओर दौड़ने लगे। दो घण्टों में तो पटांगन में लाखों नागरिक उमड़ पड़े।

सिंहिका ने विराट मानव शक्ति पर दृष्टिपात किया। उसका हर्ष उछलने लगा। उसने राजभवन के झरोखे में आ प्रजाजनों की हर्षध्वनि का दोनों हाथ जोड़कर उत्तर दिया। सभी शान्त हो गए। सिंहिका ने बोलना शुरू किया।

'मेरे प्रिय प्रजाजनो ! आप जानते हैं कि महाराजा उत्तरापथ के उच्छृङ्खल राजाओं का विग्रह करने हेतु उत्तरापथ की ओर पधारे हैं। इस अवसर का लाभ उठाकर दक्षिणापथ के राजाओं की अयोध्या का राज्य हड़पने के लिये डाढ़ों में रक्त उतरा है। वे अपनी सेनाएँ लेकर आ रहे हैं। मेरे प्रजाजनों ! अपने देश की रक्षा का कर्तव्य हमारे कंधों पर है। जब तक इनमें से एक भी मनुष्य के शरीर में रक्त की अंतिम बूंद भी शेष रह जाए, तब तक ये दुष्ट और कायर राजा लोग अयोध्या में पाँव न रख पाएँ। आक्रमणकारी राजाओं की बुद्धि ठिकाने लानी है। उन्हें बता देना है कि अयोध्या की प्रजा पर विजय प्राप्त करने के लिये नवीन जन्म लेना पड़ेगा। कोई भी युवक घर में नहीं रहना चाहिए। जिसके पास अश्व न हो, उसे राज्य की ओर से अश्व मिलेगा। जिसके पास शस्त्र नहीं, उन्हें शस्त्र भी दिये जाएँगे। आप निर्भय होकर आएँ। आप सबके आगे मेरा अश्व रहेगा।'

'महारानी की जय हो।'

'महाराजा नघुष की जय हो।'

'प्रजाजनों ने गगनभेदी ध्वनियाँ की, सिंहिका रानी ने पुनः दो हाथ जोड़कर प्रजा के प्रेम का सत्कार किया। नगर के अग्रगण्य नागरिकों ने महारानी को सम्पूर्ण साथ देने का वचन दिया।

सिंहिका झरोखे से महल में आई। वहाँ कोतवाल महा-रानी की प्रतीक्षा में खड़े थे। सिंहिका को उन्होंने प्रणाम किया।

'कोतवाल जी, क्या समाचार हैं ?'

'महादेवी जी ! शत्रु सेना अयोध्या से अब मात्र बारह मील दूर है।'

'नगर के बाहर आए हुए प्रजाजन अन्दर आ गए हैं ?'

'जी हाँ, और नगर के द्वार बन्द कर दिये हैं। चारों द्वारों के किलों पर हजार हजार सैनिक शस्त्र सज्ज होकर खड़े हैं, परन्तु········'

'विशाल सेना का मुकाबला कैसे करेंगे·······यही कहना है न ?' सिंहिका ने कुछ मुस्कराहट के साथ पूछा।

'जी हां········।'

'चिन्ता न करें। सामना डटकर करेंगे। आप एक काम करें।'

'शस्त्रागार में आप रहें और जो भी जवान शस्त्र लेने आए, उसे आप शस्त्र सम्पन्न कर भेजें।'

कोतवाल प्रणाम कर लौट पड़े। इतने में दासी नयना आ पहुँची। 'महादेवी, आज प्रातः से आपने कुछ भी भोजन नहीं किया है, बारह तो बज चुके हैं—अतः आप भोजन कर लें।'

नयना ने भोजन तैयार ही रक्खा था। सिंहिका ने भोजन कर लिया। नयना ने आराम कर लेने के लिये निवेदन किया। परन्तु आज आराम कैसा ? भोजन से ज्यों ही निवृत्त हुई कि द्वारपाल ने प्रवेश किया।

'महादेवी, हजारों जवान शस्त्रसज्ज होकर पटांगन में एकत्रित हो चुके हैं। वास्तव में युवानों का उत्साह अदम्य है। आपकी प्रतीक्षा में खड़े हैं……।'

'सुन्दर।'

'नयना! देख तो अश्वशाला से मेरा अश्व आ गया?' और साथ ही मेरे लिए शस्त्र भी तैयार होकर आ गए हैं?'

'आप जाएँ, युवानों से कहें कि मैं अभी अभी आई।' द्वारपाल को रवाना कर सिंहिका नयना की प्रतीक्षा करती रही।

पन्द्रह मिनट में ही नयना लौट आई।

'महादेवी, अश्व, शस्त्र और कवच भी तैयार है···· पर····।'

'पर क्या?'

'मैं भी आपके साथ चलूँगी।'

'तुझे युद्ध करना आता है?'

'जी हाँ।'

'तू कहाँ सीखी?'

'यहाँ अयोध्या में ही?'

'डरेगी तो नहीं?'

'आपके साथ मुझे डर किसका?'

'तो तैयार हो जा।' नयना प्रसन्न हो गई। सिंहिका उसकी प्रसन्नता देखकर मुस्करा दी।

सिंहिका ने युद्ध का वेश धारण कर लिया। वक्षस्थल पर

अभेद्य कवच धारण कर लिया, कमर में कटार लटका दी। बाएँ कन्धे पर 'धनंजय-धनुष' थाम लिया और पीठ पीछे तीर बाँध दिये। हाथ में तीक्ष्ण भाला ले लिया।

कुलवृद्धा ने महारानी की ललाट में कुंकुम का तिलक लगाया। कुल की नारियों ने विजयगीत गाया और कुल वृद्धा ने आशीर्वचन कहा।

'देवी! दुश्मनों पर विजय प्राप्त करना। तेरा यश देव-लोक में गाया जाएगा।'

राजपुरोहित ने शुभ मुहूर्त में प्रयाण का आदेश दिया। छलांग मारकर सिंहिका अश्वारूढ़ हो गई। उसके पीछे शस्त्र-सज्ज होकर नयना भी अश्वारूढ़ होकर चली।

सेनापति सुमुख ने हजार सैनिकों के साथ सिंहिका के पीछे प्रयाण किया। सिंहिका पटांगन में आ पहुँची। पच्चीस हजार नौजवान महान् उत्साह से झूम रहे थे। सिंहिका का अश्व जोर से हिनहिनाया। 'महारानी की जय हो' की आवाज से पटांगन धमधमा उठा।

सिंहिका पच्चीस हजार नवयुवानों के अभिनव सैन्य को देखकर नाच उठी। उसे अपनी विजय की निःशंक श्रद्धा हो गई। चित्त में श्री ऋषभदेव भगवान का स्मरण कर पटांगन से प्रयाण किया। राजमहल के बुर्ज पर रणभेरी वज उठी। युद्ध की नौवतें गड़गड़ा उठीं। अयोध्या के राजमार्गों से सिंहिका पसार होने लगी। अयोध्या की ललनाओं ने अपनी महारानी पर पुष्प-अक्षत की वृष्टि की। वृद्धाओं ने आशीर्वादों की वर्षा कर दी।

सिंहिका पूर्व दिशा के सिंह द्वार पर आ पहुँची। किले पर खड़े हजार सैनिक पच्चीस हजार की विराट सेना देखकर आश्चर्यचकित हो गए। इसमें भी सबसे आगे महारानी को सेनानी वेश में देखकर तो उन्होंने हर्ष की ध्वनि से नभ गूँजित कर दिया।

सिंहिका ने सेनापति सुमुख को निकट बुलाया।

'आप पाँच हजार नवयुवानों के साथ पश्चिमी द्वार पर जाएँ। शत्रु पूर्व की ओर से आएँगे। हमें उनके साथ खुले मैदान में युद्ध नहीं करना है। आप पश्चिमी द्वार से बाहर निकल कर शत्रु सैन्य के पृष्ठ भाग में इस प्रकार पहुँच जाएँ कि शत्रु को गंध तक न आए। मैं बीस हजार नव-युवकों के साथ अचानक शत्रु सेना पर छापा मारूँगी। आप पीछे से भयंकर आक्रमण कर शत्रु सेना पर प्रलय ढा दें। आपके जो पहिले के एक हजार सैनिक हैं, उन्हें उत्तर की ओर रवाना करें। वे उधर से आक्रमण करें।'

सेनापति पाँच हजार प्रशिक्षित, शस्त्र सज्ज नव-युवानों की सेना के साथ रवाना हुए। दूसरे एक हजार सैनिक उत्तरी द्वार पर पहुँचे। बीस हजार युवानों के साथ सिंहिका किले के भीतरी भाग में रुकी।

दक्षिणापथ के चर तो चकित ही हो गए। उन्हें कल्पना भी न थी कि अयोध्या में इतनी बड़ी सेना छिपाई हुई होगी। दक्षिणापथ के राजा भी इसी भ्रम में थे कि अयोध्या इस समय राजा रहित, सैन्य शून्य है—अल्पकाल में ही अयोध्या के राज्य पर हमारा ध्वज फहराने लगेगा। इसीलिये

वे अपने साथ थोड़ी सी सेना लेकर आए थे। चरों ने जाकर राजदेव आदि राजाओं को समाचार दिये।

'महाराजा, अयोध्या की महारानी ने रणचंडी का स्वरूप धारण कर रखा है। तीस हजार के पायदल सैन्य के साथ वह सामना करने के लिए कटिबद्ध खड़ी है। इतना ही नहीं, अयोध्या की वीरांगनाओं की भी एक विराट सेना तैयार हो रही है। अयोध्या के किले पर कराल काल सम चार हजार सैनिक हमारी प्रतीक्षा में अडिग खड़े हैं।'

राजदेव, सह्यांद्रि आदि राजा तो सुनते ही ठंडे हो गए। उन्हें इतने प्रतिकार की कल्पना भी न थी। परन्तु अब क्या हो। यदि लौट जाएँ तो भी अपकीर्ति होती है। युद्ध किये विना कोई मार्ग नहीं दीखता था।

सैन्य को आगे बढने का आदेश दिया गया। दो तीन घण्टों में तो अयोध्या के रहावन में अश्वों की हिनहिनाट और शस्त्रों की खनखनाहट का भारी कोलाहल मच गया।

'राजन्, अपना प्रतिकार करने के लिये हमें आगे बढ़ने से रोकने के लिये कोई भी सैनिक दीखता नहीं?' राजदेव ने संह्याद्रि से कहा।

'मुझे तो लगता है कि रानी लौटकर महल में जाकर बैठ गई होगी। स्त्री भला युद्ध कब करने वाली थी।'

'परन्तु चरपुरुष जो समाचार लाए हैं, वे मिथ्या नहीं हैं।'

'यह तो युद्ध का मामला रहा। अन्तिम क्षणों में भी पानी उतरना क्या सम्भव नहीं है?'

'तो फिर हमें अयोध्या को घेर लेना चाहिये।'

'ठीक है।'

दक्षिणापथ की सेना आगे बढ़ी। अयोध्या के पूर्व द्वार पर आकर चारों ओर फैलना शुरू किया। पचास हजार की सेना ने अयोध्या को देखते ही देखते घेर लिया। इतने में अन्तिम पंक्ति में चीख उठी। सेनापति सुमुख ने काल बनकर पाँच हजार सैनिकों के साथ पीछे से भयंकर हमला किया और घास की भाँति दक्षिणापथ की सेना को काटना शुरू किया। दूसरी ओर उत्तर की ओर मुड़े हुए दक्षिणापथ के सैन्य की अयोध्या के एक हजार वीर सैनिकों ने खबर लेनी शुरू की।

राजदेव अन्तिम पंक्ति की ओर लपका। सह्यांद्रि उत्तर की ओर मुड़ा। इतने में पूर्व का द्वार खुला और 'जय ऋषभदेव' की गगनव्यापी गर्जना के साथ सिंहिका ने बीस हजार रक्त पिपासु जवानों के साथ भयंकर आक्रमण किया और दक्षिणापथ के सैन्य में हाहाकार मचा दिया।

निर्भयता के भरोसे रहा हुआ दक्षिणापथ का सैन्य अचानक त्रिपक्षीय आक्रमण से हक्का-बक्का रह गया। सिंहिका वास्तव में सिंहनी की भाँति टूट पड़ी। एक हाथ में कटार और दूसरे हाथ में ढाल लेकर उसने जूझना शुरू किया। अयोध्या का एक एक जवान दक्षिणापथ के पच्चीस-पच्चीस सैनिकों को धराशायी करने लगा।

नयना का अश्व सिंहिका के अश्व के आस-पास घूम रहा था। नयना सिंहिका पर होने वाले प्रहार निष्फल बनाती हुई एक वीर नारी की भाँति जूझ रही थी। राजदेव और अलंकार देव सिंहिका की ओर आ धमके। उत्तर की ओर गया हुआ

सह्यांद्रि भी आ मिला। तीनों राजाओं ने रानी को घेर लिया। सिंहिका और नयना तीनों को थकाने लगीं।

सह्यांद्रि ने बायीं ओर से सिंहिका पर भाले से तीक्ष्ण प्रहार किया। इसी क्षण नयना ने सह्यांद्रि के प्रहार को निष्फल बनाकर एक ही प्रहार से सह्यांद्रि के बायें हाथ को शरीर से अलग कर डाला। दूसरी ओर सिंहिका ने राजदेव के एक-एक प्रहार को निष्फल कर उसे थका दिया। सेनापति सुमुख भी बड़ी कठिनाई से आ पहुँचा। अलंकारदेव की सुमुख ने खबर लेनी शुरू की।

एक प्रहर बीत गया था। राजदेव ने सोचा, 'व्यर्थ सैन्य का हनन होगा—विजय की कोई आशा नहीं दिखती।' उसने युक्तिपूर्वक अपने अश्व को पीछे हटाया और धीरे-धीरे वह सेना में से निकलकर अश्व को ले भागा।

दक्षिणापथ का सैन्य बहुत कुछ समाप्त हो चुका था। जितने बचे थे, उन्होंने भी अपने प्राण बचाने का मार्ग लिया। सैन्य पीछे हटने लगा। अयोध्या के जवानों का भी भारी हनन हुआ था। फिर भी कोई जवान विजय प्राप्त किये विना पीछे हट नहीं सकता था।

राजदेव को न देखकर अलंकारदेव और सह्यांद्रि भी युद्ध के मैंदान से अदृश्य हो गए। बस! 'शत्रु सेना भाग गई' यह जानकर सिंहिका ने युद्ध बन्द किया। उसने अपने आस-पास दृष्टि घुमाई। सेनापति सुमुख और नयना के मुख पर विजय का हर्ष नाच रहा था, परन्तु नयना की एक आँख से रक्त की धारा बह रही थी।

'नयना! यह क्या हुआ?' कुछ चिन्ता भरे स्वर में सिंहिका ने पूछा।

'प्रतीक ।'

'किस बात का ?'

'अयोध्या के रक्षण का ।'

नयना की एक आँख चली गई थी, परन्तु उसे इस बात का शोक नहीं था । उसके हृदय में तो वतन की रक्षा का हर्ष सागर हिलोरे ले रहा था ।



३५. सम्मान

'वास्तव में, महारानी ने अद्भुत शौर्य से दक्षिणापथ के राजाओं को भगा दिया था !'

'हं........'

'महारानी के एक आह्वान पर पच्चीस हजार नौ-युवान प्राणों का बलिदान देने के लिए तैयार हो चुके थे ।'

'हं........'

'युद्ध की व्यूह-रचना भी अपूर्व की थी ।'

'हं........'

उत्तरापथ के राजाओं को वश करके नघुष अयोध्या आ पहुँचे । प्रजाजनो ने हार्दिक स्वागत किया....क्योंकि राजा ने उत्तरापथ पर विजय प्राप्त की थी और रानी ने दक्षिणापथ के छली राजाओं को पराजित कर अयोध्या की रक्षा की थी ।

नघुष बारह योजन की दूरी पर थे तब सेनापति सुमुख सामने गया था । वहाँ नघुष से मिलते ही उपरोक्त बातचीत की, परन्तु इसे सुनकर नघुष मात्र हुँकार ही करते गए और मुख पर कृत्रिम आनन्द दिखाते गये । उनके चित्त में अनेक संकल्प-विकल्प उठने लगे । वे अयोध्या में आए....अयोध्या की

प्रजा ने बड़े हर्ष से स्वागत किया—फिर भी उनके चित्त में आनन्द नहीं उमड़ा। वे महल में आए। अग्रगण्य नागरिक महाराजा के पास भेंट लेकर आए—कुशलता पूछी और महारानी सिंहिका के पराक्रम की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे, परन्तु नघुष ने मात्र रूखी मुस्कराहट प्रकट की। नगर की गली गली में सिंहिका के पराक्रम गीत गाये जाने लगे। राजमहल में भी सबके मुख पर महारानी की हिम्मत और कार्यदक्षता की इज्जत होने लगी—सबको आनन्द था–मात्र नघुष को नहीं।

कारण ? सभी प्रजाजन सिंहिका के मात्र गुण देखते थे। गुण देखकर आनन्दित होते थे, जबकि नघुष सिंहिका में गुण और दोष दोनों देखते थे। गुण की अपेक्षा दोष अधिक देखा–फिर आनन्द कहाँ से आए ?

दूसरी आत्मा के सत्कार्य को देखकर हमारे हृदय में तभी आनन्द होगा जबकि हम उसमें दोष न देखें। यदि दोष देखा तो उसके प्रति द्वेष होगा ही। दोष देखने से द्वेष होता है। गुण देखने से स्नेह होता है।

नघुष ने सिंहिका में भयंकर दोष की कल्पना की। सिंहिका के प्रति स्नेह का झरना सूख गया। उन्होंने सोचा—सिंहिका कैसी भी हो तब भी है तो स्त्री। उसके पास रूप है, कला है, उसने सेनापति से परिचय किया। हजारों नव-युवानों के बीच वह रही—फिरी—बातें की—तथा युद्ध में विजयी हुई–उसके प्रति कौन आकर्षित न हो ? इसमें भी मेरी अनुपस्थिति–महामन्त्री भी यहाँ नहीं–ऐसे युद्ध के प्रसंग पर कैसे कैसे व्यक्तियों के परिचय में आना पड़ता है—सती स्त्री हो तो कभी भी इस प्रकार परपुरुषों के परिचय में न आए। कैसी भी परि-

स्थिति में वह अपने शील की रक्षा करने का ही लक्ष्य रखती है। उत्तम कुल में उत्पन्न स्त्री ऐसा काम कभी भी नहीं करती……'

उनका चित्त व्याकुल हो गया। वे अपने मन्त्रणागृह में अन्यमनस्क होकर पड़े रहे—इतने में सिंहिका ने खण्ड में प्रवेश किया।

'आपको यहाँ आने के पश्चात् आराम ही न मिला—आपके मुख पर थकान और खेद छा रहा है….' भद्रासन पर आसीन होती हुई सिंहिका ने नघुष से कहा।

'लोगों का आना जाना शुरू है—' नघुष ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'उत्तरापथ के उन्मत्त बने हुए घमण्डी राजाओं पर अपने महाराजा विजय प्राप्त कर लौटें, इसका हर्ष किसे न हो?' लोगों के गमनागमन का कारण बताती हुई सिंहिका बोली—परन्तु नघुप ने सुनी अनसुनी कर आँखें बन्द कर दी तथा वे आरामदायक आसन पर लेट गए।

'आप आराम करें। मैं द्वारपाल को कह देती हूँ कि दो तीन घण्टों तक किसी को अन्दर न आने दे।' सिंहिका ने बाहर जाकर द्वारपाल को सूचना दी और स्वयं आकर नघुप के चरणों में सेवार्थ बैठ गई।

एक के हृदय में द्वेष की आग थी, एक के हृदय में प्रेम का झरना प्रवाहित हो रहा था! एक के पास द्वेषदृष्टि थी, एक के पास गुण दृष्टि थी।

दूसरे दिन का प्रभात हुआ। नघुष राज्य के कार्यो में लीन हो गया, परन्तु उनके चित्त में अशांति ने वेग पकड़ा।

उन्होंने सिंहिका में चारित्र्यहीनता का दृढ़ निर्णय कर लिया। अब वे उसका मुँह तक देखने को सहमत नहीं हैं। सिंहिका उनके पास आती तो भी किसी न किसी बहाने वे वहाँ से चल पड़ते। दो-चार दिनों तक तो सिंहिका को कुछ भी सन्देह न हुआ।

बहुत दिनों तक युद्ध यात्रा में बाहर रहे थे—राज्य के अनेक कार्य इकट्ठे हो गए हों अतः मेरे साथ अधिक समय कहाँ से काटें?' परन्तु दिन प्रतिदिन नघुप में तिरस्कार, घृणा, उपेक्षा-दृष्टि बढ़ती हुई देखकर सिंहिका के चित्त में चिंता उत्पन्न हुई। भले ही उन्हें अधिक समय न मिलता हो, परन्तु क्षण-दो क्षण जब भी मैं उनके पास जाती हूँ तब वे मेरी ओर स्नेह-दृष्टि डालते नहीं, मेरी ओर देखते तक नहीं—जब से वे उत्तरापथ से लौटे हैं, तबसे उनकी दृष्टि, उनका मेरे प्रति व्यवहार मानो घृणापूर्ण बनता जा रहा है—उनके मुख से 'दक्षिणापथ के राजाओं के आक्रमण का मुँह तोड़ उत्तर दिया'—इसकी प्रसन्नता के दो शब्द भी सुनने को न मिले।'

उसने नघुप के पास जाकर अपने चित्त का समाधान करने का निर्णय किया। रात का समय चुना और वह नघुप के शयनकक्ष में प्रविष्ट हुई। नघुप झरोखे में बैठे-बैठे आकाश के ग्रह-नक्षत्रों की ओर देख रहे थे। उनके मुख पर चिन्ता और ग्लानि की रेखायें अंकित हो रही थीं।

सिंहिका नघुप के सम्मुख जाकर खड़ी रही। नघुप ने एक दृष्टि सिंहिका पर डाली और पुनः आकाश की ओर देखने लगे। कुछ क्षण बीते–सिंहिका खड़ी न रह सकी–उसका हृदय विलख उठा–वह बैठ गई–नघुप के चरणों में उसने अपना

मस्तक रख दिया। उसकी आँखें आँसू रोक न सकीं। 'क्यों क्या बात है ?' नघुष ने सिंहिका की देह का तनिक भी स्पर्श किये बिना प्रश्न किया। उत्तर में भारी सिसकी सुनाई दी।

'तुम्हें क्या कहना है ?' ऐसी ही स्नेहरहित आवाज में नघुष ने पुनः पूछा।

सिंहिका ने आँसू बहती आँखों से नघुष के सामने देखा। धैर्य धारण करने का प्रयत्न किया।

'जब से आप उत्तरापथ से आए हैं····आपके मुख पर मेरे प्रति····उदासीनता देखती हूँ····मेरी कोई भूल····?'

'अब भी क्या तुम्हें अपनी भूल समझ में नहीं आती! आश्चर्य ?'

'आप मेरे नाथ हैं। आप बताएँ········मैं सुधारने का प्रयत्न करूँगी।'

'मुझे यदि नाथ माना होता, तो भूल होने का प्रश्न ही नहीं उठता।'

'मैं समझी नहीं········नाथ····'

'क्या सती स्त्री अपने पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष के सामने देखती भी है ?'

'मेरे नाथ! वास्तव में····आपके सिवाय किसी भी पुरुष को········'

'तो यों ही युद्ध लड़ा गया होगा, क्यों ?' नघुष की आवाज रोषपूर्ण बनी।

'मेरी युद्ध में जाने की तनिक इच्छा नहीं थी।'

'तो किसने बाध्य किया था ?'

'इसके विनां अयोध्या की रक्षा असम्भव थी।'

इसके बजाय ऐसा कहो कि हजारों युवानों के साथ आनन्द प्राप्त करने का अन्य कोई साधन न था।' नघुप बोलता हुआ खड़ा हो गया।

सिंहिका नघुप के शब्द सुनकर कांप उठी—उसकी शत-प्रतिशत पवित्र आत्मा दुःखी हो उठी—उसे कल्पना भी न थी कि नघुप के हृदय में उसके विषय में ऐसी हीन कल्पना होगी—।

'नाथ—' सिंहिका ने नघुप के चरण पकड़ डाले। मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ केवल राज्य के रक्षणार्थ ही, प्रजा के हित की दृष्टि से ही मैं युद्ध में गई थी—मैं सम्पूर्ण·······'

'मुझे यह कुछ नहीं सुनना—मैं नहीं मानता कि उत्तम कुल में उत्पन्न स्त्री युद्ध जैसे क्षेत्र में, जहाँ शील सुरक्षित रहना असम्भव है, वहाँ जाए—और दक्षिणापथ के राजाओं को जिन्हें हराना मुझ जैसे के लिये भी कठिन है, उन्हें ऐसे ही पीछे खदेड़ दे।'

नघुप झरोखे से खंड में चला गया। सिंहिका अश्रु बहती आँखों से जाते हुए नघुप को देखती रही—उसकी आँख से अश्रु धारा बहती रही—वह वहीं बैठी रही। उसके चित्त में रोष उत्पन्न हो गया।

'क्या मैंने अयोध्या की रक्षा कर, कोई भूल की? क्या लाखों प्रजाजनों और विशाल राज्य की रक्षा करके कोई अपराध किया? मैं महल में बैठी रही होती···दक्षिणापथ के राजा अयोध्या पर विजय प्राप्त करते···अयोध्या में घुस आते

तो क्या लाखों नारियों का शील वे अखंडित रहने देते ? मैं स्त्री हूँ....स्त्री का कलेवर मुझे मिला है इसीलिये क्या मैं युद्ध करने की अधिकारिणी नहीं हूँ ? युद्ध में लड़ना क्या उस समय अनिवार्य कर्तव्य नहीं था ? और मैं युद्ध में गई इसीलिये मैं चरित्रहीन ?'

नघुष के अन्यायपूर्ण व्यवहार से उसके हृदय में क्रोध उमड़ पड़ा। जीवन में एक बार भी नघुष के सिवाय किसी अन्य पुरुप के प्रति राग का अंकुर जिसके हृदय में प्रस्फुटित हुआ नही, उस महासती पर मात्र कल्पना के तरंगी घोड़े पर वैठकर जव पति दोषारोपण करने लगे, तव क्या छद्मस्थ आत्मा में क्रोधाग्नि का भभकना स्वाभाविक नहीं है ? क्रोधाग्नि न भभके तव तो वह महायोगी है, संसारी नहीं।

यद्यपि सिंहिका ने शील का महायोग सिद्ध कर रक्खा था, फिर भी क्रोध, मान, माया, लोभ का सर्वथा क्षय नहीं हुआ था; तव भी उसने अपने मन को मनाने का प्रयत्न किया।

'जव जीव के पाप का उदय होता है तब उसे ऐसे दुःख सहने पड़ते हैं जिनकी कल्पना तक नहीं होती। मेरे दुर्भाग्य का उदय है। इनका कोई दोष नहीं। जब तक मेरे दुर्भाग्य का उदय रहेगा तब तक मेरे पति का दुर्भाव रहेगा ही, कुविकल्प रहेंगे ही, परन्तु दुर्भाग्य के पश्चात् सद्भाग्य का भी तो उदय होता है.......अतः जीव तू धैर्य रख...........पाप के उदय में विशेषतः परमात्मा के ध्यान में चित्त लगा ....'

वह धीरे धीरे वहाँ से उठी—नघुष के कमरे में प्रविष्ट हुई।

इतने में तो नघुष का कर्कश स्वर सुनाई दिया।

'तुम मेरे कमरे में आओगी नहीं। कल से तुम मेरे महल में भी न रह सकोगी। तुम्हें अलग आवास स्थल मिल जाएगा।'

आँखें बन्द करके, दो हाथ जोड़कर सिंहिका खड़ी रही.... उसने नधुप को प्रणाम किया और वहाँ से बाहर निकल गई।

उस जमाने में परित्यक्ता स्त्रियों के प्रति सहानुभूति रखने वाले तथा अन्तरात्मा से वासना लोलुप समाज सेवक, देश नेता नहीं थे। उस युग में पति के विरुद्ध पत्नियों को भड़काने वाली नारी संस्था न थीं। उस काल में पति के कष्टों से उकताई हुई स्त्रियों को आश्रय देने वाले और मनमाने पुरुषों के साथ आनंद मनाने की अनुकूलता सुलभ करवाने वाले विकास गृह न थे। उस समय कोई भी स्त्री अपने पति के विरुद्ध शिकायत कर सके, उसको नीचा दिखा सके—उसे कोर्ट में घसीट कर ले जा सके, सजा दिला सके—ऐसे संघ नहीं थे।

उस जमाने में तो स्त्री पति के सानिध्य में जैसे पति को देव मानती थी, उसी प्रकार पति के द्वारा त्यक्ता होने पर भी पति के प्रति द्वेष, शत्रुता नहीं करती थी, क्योंकि वह ऐसे प्रसंग को ब्रह्मचर्य पालन के लिए सुन्दर अवसर मानती थी और इस प्रकार अपना धैर्य धारण करती थी। फिर भी यदि उसका चित्त न माने तो वह परमात्मा के मन्दिर में जाकर परमात्मा से प्रार्थना करती और उसका चित्त प्रसन्न होता—इतना करने पर भी यदि किसी का चित्त स्वस्थ न होता तो संसार त्यागी ज्ञानीध्यानी तपस्विनी साध्वियों के चरणों में जाकर सान्त्वना प्राप्त करती थी।

आर्य स्त्रियों का जीवन मात्र जगत के विषय सुख भोगने के लिये ही नहीं है। विषय सुखों में ही कर्तव्य की इतिश्री समझने

वाली आर्य नारी नहीं हो सकती। जगत में सुख दुःख की प्राप्ति अपने प्रारब्ध के अनुसार होती है—यह श्रद्धा अविचल रखकर आर्य नारी सुख में नम्र और दुःख में धैर्य रखने वाली होती थी।

आज की नारी दुःख को दूर करने के लिए दुनिया के बाजार में जाती है, जहाँ शील सदाचार की नीलामी लगाकर सुख भोगती है।

सिंहिका अपने शयन-कक्ष में पहुँची, जहाँ नयना उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी।

'बहुत देर लगी, महादेवी!' पूछ तो लिया पर नयना ने सिंहिका के मुख पर देखा और वह चौंक उठी। सिंहिका के मुख पर आँसुओं के बिन्दु अभी तक सूखे नहीं थे। आँखों की वेदना अभी तक वैसी ही बनी हुई थी।

'तू अभी तक सोई नहीं?' नयना की ओर दृष्टि डाली फिर सिंहिका अपने पलंग में करवट के बल लेट गई। नयना सिंहिका के सिरहाने बैठ गई और अपनी प्रिय रानी के दुःख में सहयोगिनी बनने के लिए उससे पूछा।

'क्या हुआ·······देवी?'

'भाग्य का खेल।'

'तब भी·······'

'कल हमें दूसरे महल में जाना है····'

'सो क्यों?' नयना खड़ी हो गई····उसे कुछ भी नहीं सूझा।

'कह तो दिया कि भाग्य का खेल है····' हल्की सी मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई सिंहिका बोली।

'नहीं महादेवी, जो भी हो स्पष्ट कहो।'

सिंहिका पलंग से उठ बैठी। वह नयना के सामने देखती रही। अभी तक नयना की बाँयी आँख से पट्टी खुली नहीं थी।

'क्या हुआ देवी ? दूसरे महल में जाने का कारण ? यह महल भी तो अपना ही है न........'

'नहीं, यह महल अयोध्या के महाराजा का है।'

'अपना भी....'

'था, आज नहीं।'

'तो क्या महाराजा ने....'

'आज्ञा दी है....'

'कारण ?'

'मैं युद्ध में गई। पर-पुरुषों के बीच गई—उन्हें नहीं जँचा।'

'यदि आप युद्ध में न आई होतीं तो आज हम या महाराजा अयोध्या में .... नहीं होते....कोई जंगल में....कोई वृक्ष के नीचे पड़े होते।'

सिंहिका मौन रही।

'नहीं जचा, उसकी इतनी भयंकर सजा। आपका त्याग ?'

'उन्हें मेरे सतीत्व में शंका है....क्योंकि मैंने पर-पुरुषों के साथ तथा राजाओं के विरुद्ध युद्ध लड़ा।'

देवी ! 'यह तो घोर अन्याय हो रहा है।'

'यही तो भाग्य का खेल है....नयना।'

दोनों मौन हो गईं। नयना के हृदय में नघुप के प्रति आक्रोश उमड़ पड़ा। परन्तु वह कर ही क्या सकती थी ? वह

तो थी दासी ही न। सह्यांद्रि जैसे पराक्रमी राजा को थकाने वाली नयना नघुप के सामने लाचार थी।

'नयना, चिन्ता न कर। जीवन में ऐसे प्रसंग की भी आवश्यकता रहती है। हमने वाह्य शत्रुओं के सामने युद्ध लड़कर उन्हें तो भगा दिये, अब आंतरिक शत्रुओं के सामने युद्ध करने का प्रसंग उपस्थित हुआ है, उसमें भी दीनता छोड़कर महान् धैर्य धारण कर आगे बढ़ना चाहिये। महाराजा ने हमें सुअवसर प्रदान किया है।'

नयना तो सुनती ही रही—सिंहिका की तत्त्वज्ञान भरी बातें सुनकर उसे आश्चर्य हुआ। जैसा शौर्य दक्षिणापथ के राजाओं के विरुद्ध देखने को मिला था उससे भी अधिक शौर्य व धैर्य नयना को आज देखने को मिला।

दूसरे दिन प्रातः सिंहिका ने नयना के साथ नघुष के महल का त्याग किया और अन्य महल में जाकर रही। सारे ही राजमहल में गुप्त कोलाहल मच गया।

अलग महल में जाकर सिंहिका ने श्री अरिहंत भगवान् की भक्ति में अपना चित्त जुटाया। जब पूजन भक्ति से निवृत्त होती, तब नयना के साथ तत्त्व विचार करती और इस प्रकार धर्मध्यान में दिन रात बिताने लगी।

नगर में भी यह बात फैल गई। प्रजाजनों के हृदय में सिंहिका के प्रति सहानुभूति उभरने लगी, परन्तु सत्ता के आगे विद्वता किस काम की? फिर भी नगर के अग्रगण्य नागरिक महामन्त्री से मिले।

'आपने कुछ भी प्रयत्न नहीं किया? क्या आपको महादेवी पर अविश्वास है?'

'यह एक ऐसा प्रश्न है कि जब तक महाराजा के हृदय में महादेवी के सतीत्व के सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास न हो, तब तक अपना एक भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता।' महामन्त्री ने अग्रगण्य नागरिकों के सम्मुख अपना मत व्यक्त किया।

'परन्तु क्या आप महाराजा को समझा नहीं सकते, कि महादेवी सर्वथा दोष-रहित हैं।'

'समझाना दलीलों से, तर्क से, बुद्धि से होता है, जब कि दूसरे के हृदय का परिवर्तन तर्क या दलील से नहीं हो सकता। हाँ, उसे निरुत्तर कर सकते हैं।'

'प्रजा में बड़ा असंतोष व्याप्त है। प्रत्येक के हृदय में महादेवी के प्रति अपूर्व श्रद्धा और सम्मान है। जिस महादेवी ने सम्पूर्ण राज्य को शत्रु के हाथ में जाने से बचा लिया उसका सम्मान उसका त्याग करके महाराजा ने किया?' एक युवक अग्रगण्य नागरिक तनिक रोषयुक्त बन कर बोला।

'देखो भाई, महादेवी ने जो महान् कार्य किया है, उसका सम्मान तो अयोध्या के समग्र राज्य ने किया है। महाराजा भी एक दिन सत्य को अवश्य समझेंगे। जब स्वयं समझ कर सम्मान करेंगे तब वह अपूर्व होगा। हमें थोड़ा धैर्य रखना चाहिये।' महामन्त्री ने प्रेमपूर्वक बात समझाई। अग्रजनों को भी महामन्त्री की बात ठीक लगी। वे चले गए।

दिन बीतते चले। महिने बीत गए। नघुप व्याकुलता में दिन बिताने लगे। मन्त्री वर्ग को मिलना भी छोड़ दिया। अब वे रात दिन अपने शयन खण्ड में रहने लगे।

आन्तरिक चिन्ता का प्रभाव उनके शरीर पर दीखने लगा। शरीर में अस्वस्थता बढ़ने लगी। धीरे धीरे शरीर में दाह बढ़ने

लगा। वैद्यों ने उपचार शुरू किया परन्तु जैसे जैसे उपचार होते वैसे वैसे दाह घटने के बदले बढ़ता गया।

मन्त्री वर्ग में चिन्ता बढ़ने लगी। दूर दूर से अच्छे वैद्य बुलवाए गए, परन्तु कुछ भी सुधार न हुआ।

सिंहिका को तो अभी तक कोई समाचार ही न था, क्योंकि उसने बाहर से सम्पर्क बिलकुल तोड़ रक्खा था और परमात्मा का सम्पर्क प्रगाढ़ बना दिया था, परन्तु एक बार नयना कार्य-वश बाहर गई तो वह समाचार ले आई। सुन कर सिंहिका ने नयना के द्वारा निश्चित् समाचार मँगवाए। नयना नघुष के महल में पहुँची और सम्पूर्ण परिचय प्राप्त कर लौट आई।

'देवी, महाराजा की स्थिति चिंता-जनक बनती जा रही है। कोई भी दवाई प्रभावशाली नहीं हो रही है। शरीर में दाह बल पकड़ता जा रहा है। सम्पूर्ण राज-परिवार चिंतातुर बन चुका है।'

सिंहिका सुनती रही। उसने आँखें बन्द कर दीं। परम कृपालु परमात्मा का स्मरण कर उसने सोचा। 'क्या ऐसे प्रसंग पर मुझे न जाना चाहिये, अवश्य जाना चाहिये.......परन्तु मुझे देखकर उनके चित्त को अधिक क्लेश तो न होगा ? नहीं.... नहीं होगा। साथ ही यह प्रसंग उनके चित्त का समाधान करने के लिये भी उपयुक्त रहेगा।'

'नयना, मेरे वस्त्र ला। हमें महाराजा के पास चलना है।'

'परन्तु....'

'चिन्ता न कर। तू वस्त्र देकर, महामन्त्री को मेरे यहाँ आने के समाचार दे.......।'



३६. सतीत्व का प्रताप

'उसे मेरे सामने न लाओ—मुझे उसका मुख नहीं देखना....'

'एक बार आने की अनुमति प्रदान करें, महाराजन् !'

'पर मुझे उससे काम नहीं....'

'उनकी तीव्र इच्छा है....एक बार....'

महामन्त्री ने नघुप से सिंहिका को आने देने के लिये प्रार्थना की। नघुप दाह की भयंकर पीड़ा में व्याकुल हो रहे थे। उनके हृदय में सिंहिका के प्रति तीव्र क्रोध उछल रहा था। उन्होंने सिंहिका को अपने पास आने की मनाई कर दी—परन्तु महामन्त्री ने विशेष आग्रह किया तब उन्होंने कहा :

'आप लाना ही चाहते हैं तो ले आयें। मैं अपनी आँखें बन्द करके पड़ा रहूँगा।' नघुप ने अपनी आँखें बन्द कर दीं। दीवार की ओर करवट बदल कर पड़े रहे।

महामन्त्री ने नयना को इशारा कर दिया। नयना तुरन्त बाहर गई और सिंहिका को ले आई। महामन्त्री की दाहिनी आँख स्फुरित होने लगी। वैद्यों के निराश हृदय में आशा का मानो संचार होने लगा।

सिंहिका आकर नघुप के मस्तक की ओर खड़ी हो गई।

'नयना एक पात्र में पानी ले आ'

नयना ने तुरन्त स्वर्ण पात्र में पानी भेंट किया। सिंहिका ने आँखें बन्द कीं। करबद्ध प्रार्थना शुरू की।

'मैं अरिहंत परमात्मा की साक्षीपूर्वक, सिद्ध भगवंतों की साक्षीपूर्वक, साधु-पुरुषों की साक्षीपूर्वक, स्वर्गलोक के देवों की साक्षीपूर्वक और मेरी आत्मा की साक्षी से कहती हूँ कि मेरा शील अखंडित है। मेरे नाथ के सिवाय किसी भी अन्य पुरुष को मेरे हृदय में स्थान मिला नहीं....राग दृष्टि से देखा नहीं.... यदि मेरा सतीत्व अखंडित रहा हो, तो मेरे नाथ का ज्वर दूर हो जाए....'

स्वर्ण पात्र से सिंहिका ने नघुप की देह पर जल का छिड़काव किया।

सभी स्तब्ध होकर क्षण में नघुप की ओर तो क्षण में सिंहिका की ओर देखने लगे। परिणाम देखने की आशा में सबके जीव ऊँचे हो गए।

दो — चार क्षण बीते — नघुप की आँखें घिरने लगीं। उनके मुख से उद्वेग-अशांति-पीड़ा दूर होने लगी,- मधुर निद्रा छा गई।

वैद्यों ने शरीर को जाँचा। दिग्मूढ़ हो गए। शरीर से ज्वर दूर हो गया—सब के मुख पर हर्ष छा गया। नयना तो नाच उठी। वह बाहर दौड़कर गई। बाहर नगर के सैंकड़ों लोग महाराजा की गंभीर बीमारी से उदास खड़े थे। नयना ने सबको शुभ समाचार दिये। इतने में तो महामन्त्री भी बाहर आ गए।

'भाइयो! महाराजा ज्वर मुक्त हो चुके हैं। आप सब

प्रसन्न हों। महासती सिंहिका के सतीत्व ने महाराजा को ज्वर मुक्त किए हैं....'

'महाराजा नघुष की जय हो। महासती सिंहिका देवी की जय हो!' नगरजनों ने हर्षोत्सव मनाया।

महामन्त्री और सारा राज-परिवार सिंहिका के चरणों में झुक पड़ा।

'वास्तव में देवी! आपने अयोध्या के राज्य कुल की कीर्ति पर कलश चढ़ा दिया है। क्षमा करें, हमारे चित्त में भी आपके प्रति....'

'आपका किसी का दोष नहीं....मेरे अशुभ कर्मों के उदय से ही यह परिस्थिति सृजित हुई थी। परमेष्ठि भगवंतों की कृपा से सब कुछ अच्छा हो गया है।'

'नमना, चलो अब अपने स्थान पर चलें।' सिंहिका अपने महल में जाने के लिये तैयार हुई।

'महासती! अब आप यहीं रहें—वहां क्यों.......?' महामन्त्री बोले।

'महाराजा की आज्ञा होगी तो मुझे यहां आते कौन सी देर लगती है? अब तो पूजन का समय हो गया है।'

नमना को लेकर सिंहिका चली गई।

पूरे चार प्रहर बीत गए। नघुष निद्रा से जाग्रत हुए। इधर उधर उन्होंने दृष्टि दौड़ाई। मंत्री वर्ग और परिचारिकाओं को देखा। मुख पर आनन्द छा रहा था। महामन्त्री नघुष के पास आए।

'किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव हो रहा है क्या कृपानाथ?'

'नहीं, पूर्ण स्वस्थ हूँ,' नघुष महामन्त्री की ओर देख ने लगे और गंभीर विचार में डूब गए। महामन्त्री ने इशारा किया और सभी कक्ष छोड़कर चले गए।

'महादेवी को अब बुला लें,' महामन्त्री ने प्रस्ताव रक्खा।

'सही बात है····मुझ से भयंकर अपराध हो चुका है········' नघुष को अपनी गलती समझ में आई।

'परन्तु महादेवी के हृदय में आपके प्रति पूर्ण सम्मान है···· वास्तव में महादेवी के सतीत्व का अपूर्व प्रभाव है।'

'मुझे तो लगता है कि इनके सतीत्व के प्रभाव से ही दक्षिणापथ के राजागण भाग चुके हैं।' नघुष की दृष्टि खुली।

'यदि महादेवी उस समय महल में बैठी रही होती तो आज अयोध्या पर अवश्य दक्षिणापथ के राजाओं का राज्य होता····' महामन्त्री ने आज सिंहिका की राजा के समक्ष प्रशंसा की।

'अपूर्व साहस किया—' नघुप ने सिंहिका के पराक्रम की स्तुति की।

'जिसके पास सतीत्व की अनन्त शक्ति हो उसके साहस का तो पूछना ही क्या ?'

'प्रजा ने भी कैसा अद्भुत साथ दिया !'

'महादेवी के एक आदेश पर पच्चीस हजार नवयुवान तैयार हो गए, इसमें महादेवी के सतीत्व के प्रकाश का ही चमत्कार दिखाई दिया।'

नघुष मौन रह गए। उनके मुख पर ग्लानि छा गई।

'महामन्त्री ! वास्तव में मेरे ही हाथों भारी अपराध हुआ

है। निरपराधिनी महासती पर मैंने कलंक लगाया……मैंने घोर पाप का उपार्जन किया।'

'राजन्! उस पाप का तो उदय भी आ गया और उसका शमन भी हो गया। अतः अब चिन्ता न करें। अब तो महादेवी को यहाँ बुलाने……'

महामन्त्री ने प्रार्थना की।

'विलम्ब न हो—' नघुप के चेहरे पर प्रसन्नता छा गई। वे महामन्त्री की ओर देखकर मुस्करा दिये। महामन्त्री का हृदय भी आनन्दित हो उठा, इतने में तो परिचारिका आ पहुँची तथा महाराजा को स्नानविधि हेतु प्रार्थना कर लौट गई। महामन्त्री ने विदा ली और नघुप स्नानागार में प्रविष्ट हुए।

अयोध्या के नर नारियों की लाखों जबानों पर सिंहिका के सतीत्व की गुण गाथा गाई जाने लगी। थोड़े समय पहले तो सिंहिका के अपूर्व पराक्रम को देखने का तथा अभिनन्दन करने का अनमोल अवसर प्राप्त हुआ था। अभी वह अवसर विस्मृत हुआ भी न था कि सिंहिका के सतीत्व का चमत्कार देखने को मिला। इससे अयोध्या के नर नारियों के हृदय में हर्ष सागर ने पूर्णिमा के पयोदधि के साथ स्पर्धा करना शुरू किया। मात्र अयोध्या में ही नहीं…अनेक महान् नगरों में सिंहिका का नाम महान् गौरव के साथ लिया जाने लगा।

सिंहिका के चित्त में भी प्रसन्नता छाई। यद्यपि उनके चित्त में अन्य किसी बात की व्यग्रता नहीं थी—क्यों हो? जो आत्मा परमात्मा की साक्षी से, आत्मा की साक्षी से विशुद्ध हो, उसे व्यग्रता किस बात की? कर्मों के विविध उदयों में अन्तःविशुद्ध

आत्मा सदा प्रसन्न रहती है। हाँ! सिंहिका को एक बात अवश्य खटकती थी। नघुष के हृदय की अशांति-पीड़ा। अपने कारण पति को पीड़ा हुई थी उसके निवारण के प्रसंग की वह प्रतीक्षा कर रही थीं और वह प्रसंग प्राप्त हो गया। नघुष के हृदय से शोक संताप दूर हो गया—इतना ही नहीं, परन्तु हर्ष आनन्द स्थापित भी हो गया। सिंहिका को अब किसी बात का दुःख न रहा। वे परमात्मा भक्ति में लीन हो गईं।

'देवी! महाराजा यहाँ पधारे हैं—' नयना दौड़ती आई। सिंहिका को समाचार दिया।

'अभी आई....' सिंहिका ने पूजन विधि पूर्ण करली और अपने महल में पहुँची।

नघुष दीवानखाने में आ पहुँचे थे। सिंहिका ने प्रवेश किया। दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक नवाकर नघुष को प्रणाम किया।

'आपका स्वास्थ्य अभी तक ठीक नहीं है और आपने यहाँ पधारने का श्रम किया....मैं ही वहाँ आ जाती....' सिंहिका ने रुग्णावस्था में मुरझाई हुई नघुष की देह की ओर देखते हुए कहा।

'अब मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल अच्छा है....मुझे तनिक कष्ट नहीं हुआ....' नघुष ने सिंहिका को बैठने का इशारा करते हुए कहा। सिंहिका उचित आसन पर बैठ गई।

'रोग चला गया—परन्तु अशक्ति–निर्बलता तो अब भी है–नाथ।'

'शरीर निर्बल हो सकता है-मन अब तन्दुरस्त हो गया है।'

'देव-गुरु की कृपा से।'

'तुम्हारे लिये देव-गुरु की कृपा, मेरे लिये तो सिंहिका की कृपा.........'

'नहीं....नाथ, जरा भी नहीं—मैं तो आपके चरणों की रज हूँ—आप ऐसा न कहें.....' सिंहिका के मुख पर गम्भीरता व्याप्त हो गई।

'वास्तव में तुम्हारे सहवास में वरसों वीतने पर भी तुम्हारे सतीत्व को मैं पहचान न सका—मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया।'

'आपने जरा भी अन्याय नहीं किया, नाथ। मेरे कर्म ही रूठ गए तब आप भी क्या कर सकते थे? परन्तु जो हुआ वह अच्छाई के लिये ही हुआ।'

'आज मैं सत्य समझ सका कि दक्षिणापथ के दुर्द्धर राजाओं को भी तुमने भगा दिया उसमें तुम्हारे सतीत्व का ही अद्भुत प्रभाव था—मैंने विपरीत कल्पना करके पापोपार्जन किया.....' नघुष के स्वर में दर्द उभर आया।

'नाथ! विषाद न करें, जो होने योग्य होता है उसे मिथ्या कौन कर सकता है।'

नघुष के चेहरे पर थकान छाने लगी। सिंहिका ने आराम करने के लिये प्रार्थना की। नघुष ने वहीं आराम किया। सिंहिका परिचर्या करती हुई वहीं बैठी रही। दो-तीन घड़ियों तक विश्राम कर नघुष सिंहिका को लेकर अपने महल में आए। सारे राज्य परिवार में पुनः आनन्द व्याप्त हो गया।

समय अस्खलित गति से बढ़ता चला जा रहा है। काल-क्रम से सिंहिका ने एक पुत्र को जन्म दिया।

जन्म महोत्सव का आयोजन हुआ। अयोध्या के राज्य का भावी उत्तराधिकारी हजारों नगरजनों के अभिनन्दन का पात्र बना। नघुष के हृदय में भी आनन्द हुआ। सिंहिका ने पुत्र के कान में श्री नवकार मंत्र के शाश्वत अक्षर डाले और डालती ही रही।

नघुष ने पुत्र के भावी संस्करण-शिक्षण के लिए अच्छे-अच्छे कलागुरुओं को पसन्द कर नियुक्त किया। परन्तु सबसे बड़ी गुरू तो सिंहिका ही थी। जिस बालक की गुरू माता नहीं, जिस शिशु का सृजन करने वाला शिल्पकार नहीं, उस शिशु का जीवन असृजित पत्थर जैसा हो जाता है।

मात्र बालक को जन्म देने से माता का कर्तव्य पूर्ण नहीं होता। बालक के मात्र खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने का ध्यान रखने मात्र से कर्तव्य की इति नहीं हो जाती।

बालक अभक्ष्य न खा ले।

बालक अपेय का पान न कर ले।

बालक अपने कुलोचित-समाजोचित वेश धारण करे।

बालक को न देखने योग्य दृश्य देखने की आदत न बन जाए।

बालक न करने योग्य मित्रों की संगति न कर बैठे।

बालक माता-पिता का पूजक-विनीत बनी रहे।

बालक के हृदय में परमात्मा पर प्रेम बढ़ता रहे।

बालक के हृदय में सद्गुरु के प्रति सद्भाव बनी रहे।

बालक स्वार्थी न बने।

बालक क्रोधी, अभिमानी अथवा मायावी न बन जाए।

ऐसे २ लक्ष्यों को माता अपने सामने रखकर अपने बालक का पालन पोषण करे तब बालक के प्रति उसका कर्तव्य पूरा होता है। सिंहिका ने पुत्र का सर्वांगीण विकास करने में अपना समय और शक्ति लगाना शुरू किया। जितना समय वह पुत्र के पीछे व्यतीत करती थी उतना समय वह किसी काम को नहीं देती थी। नघुप को भी सिंहिका के इस प्रयत्न से संतोष और आनन्द था।

पुत्र का नाम 'सोदास' रक्खा गया।

सोदास प्रतिदिन बड़ा होने लगा। तरुणवय में आने पर कलागुरुओं ने उसे अनेक प्रकार की कलाएँ सिखाना शुरू किया। सोदास युद्ध कला में अति कुशलता प्राप्त करने लगा। इनमें भी मंत्र सिद्ध अस्त्रों में तो विशेष रूप से पारंगत होने लगा।

सोदास की सभी कलाओं पर सिंहिका आत्म विद्या का ध्यान रखती थी। दिन के अधिकांश भाग में सोदास कुल गुरुओं के पास रहता। रात को वह अपनी माता के पास बैठता और सिंहिका उसे आत्मज्ञान देती। मनुष्य जीवन में करने योग्य धर्म पुरुषार्थ को समझाती। भगवान ऋषभदेव से लेकर अनेक महान् पुरुषों के उत्तम पवित्र और पराक्रमी चरित्र सुनाती। सोदास बड़ी तीव्र उत्कंठा से और तन्मयता से सुनता। उसके चित्त में भी अनेक पवित्र महान् कार्य करने के मनोरथ जाग्रत होते। सिंहिका के सामने अपने मनोरथ व्यक्त भी करता। सिंहिका उसकी बातें सुनकर आनंदित हो जाती।

दूसरी ओर सोदास के कलाचार्यों के पास पुरोहित का पुत्र

आनन्द भी विद्याभ्यास के लिए आता था। आनन्द स्वभाव से भी विनोदी था। सोदास की आयु का वह भी था। सोदास के साथ उसकी प्रीति बढ़ी। दोनों के बीच प्रीति प्रागाढ़ होने लगी। अधिकांशत: आनन्द सोदास के साथ ही भोजन करता। साथ ही आराम करता था। साथ ही दोनों घूमने जाते थे। परन्तु आनन्द का जीवन निर्माण भिन्न प्रकार का था, सोदास का भिन्न ही था। आनन्द को खाने-पीने-घूमने में सोदास की स्निग्धता प्रिय नहीं थी। परन्तु उस सोदास को अप्रीति न हो, इसलिए सोदास को प्रिय लगे ऐसा ही व्यवहार आनन्द करता था। सोदास कई बार आनन्द को खाने-पीने में रोकता भी, पर आनन्द को प्रिय नहीं लगता था और वह सुनी अनसुनी कर लेता था।

एक दिन सोदास और आनन्द अश्वारुढ़ होकर सैर को निकले। घूमते-घूमते वे दूर निकल गए।

'सोदास, हम बहुत दूर चले आए हैं।'

'हाँ, घर पहुँचने में विलम्ब हो जाएगा।'

'मुझे तो भूख लगी है।'

'तो क्या मुझे नहीं लगी ?'

'यहाँ कुछ खाने को मिल जाए तो पता लगायें....' आनन्द घोड़े से नीचे उतरा। एक वृक्ष के नीचे सोदास दोनों घोड़ों को सम्हालता हुआ खड़ा रहा और आनन्द आस पास खोज करने निकला। आधे घण्टे में आनन्द लौट आया।

'मित्र, सब तैयारी हो चुकी है। यहाँ से कुछ ही दूर एक कृषक की कुटिया है, वहाँ हमें चलना है।' दोनों अश्वारूढ़ होकर पाँच-दस मिनिट में ही वहाँ पहुँच गए। कृषक ने दोनों

मित्रों का स्वागत किया। सोदास को देख कर उसे बड़ा ही आनन्द हुआ।

'कुमार, भोजन तैयार है; आप पधारें।' दोनों के लिए मिट्टी के बर्तन में भोजन परोसा गया।

'भाई यह साग क्या है ?' सोदास ने कृपक से पूछा।

'कुमार, यह जमीनकन्द का है।'

'कन्दमूल ? मुझसे नहीं खाया जायेगा।' उसने भोजन अलग रख दिया। कृपक तो मौन रहा क्योंकि आनन्द ने ही उसे वह बनाने के लिए कहा था।

'सोदास, यहाँ जंगल में कन्दमूल के सिवाय और मिलता भी क्या है ? फिर रोज कहाँ खाना है ? यह तो जब दूसरा कुछ न मिले तब.........'

'परन्तु कन्दमूल कैसे खा सकता हूँ ? मैं चला लूँगा।'

'मुझे तेरा यह आग्रह पसन्द नहीं। तुझे न खाना हो तो मैं भी नहीं खाता।'

'आनन्द तू मुझे क्यों आग्रह करता है ?'

इसीलिए कि तू कोई भी पौष्टिक भोजन नहीं करता। जहाँ कोई शक्ति पोषक भोजन सामने आता है, तू उसे 'अभक्ष्य' कह कर ग्रहण नहीं करता। इसीलिए देख ले तेरा शरीर भी कहाँ शक्तिशाली दिखता है ?'

'तू जानता है कि माताजी को यह पसन्द नहीं है ?'

'लेकिन यहाँ माताजी कहाँ देखने आ रही है ? महल में खाने का आग्रह मैं तुझे कहाँ करता हूँ ?' आनन्द का दिल दुःखी होता देखकर सोदास चिंतामग्न हो गया। उसका आनन्द पर बड़ा स्नेह था।

'अच्छा तो तू मुझे वार वार आग्रह मत करना। तेरे स्नेह के कारण आज एक वार मैं खा लेता हूं।' आनन्द हर्षित हो गया। सोदास ने कन्दमूल का भोजन किया। आनन्द ने खूब खिलाया। सोदास ने जीवन में कभी भी कन्दमूल का स्वाद चखा नहीं था, आज उसे कन्दमूल के भोजन में बडा स्वाद आया; परन्तु उसके हृदय में तो भारी उथल पुथल मच गयी थी। यदि माताजी को पता चल गया तो ? यह विचार उसे अधीर करने लगा।

'आनन्द, यदि माताजी को पता चला तो·······'

'तू चिंता न कर। हम दो और तीसरा कृषक। तीन के सिवाय किसी को गन्ध तक नहीं आएगी।' आनन्द ने विश्वास दिलाया।

संग का रंग चढ़े विना रहे भी भला ? आनन्द मात्र कन्द-मूल खाकर अपनी स्वाद वृत्ति को सन्तुष्ट करने वाला नहीं था। वह तो माँस-भक्षण भी करता था। उसकी इच्छा सोदास को माँस-भक्षी वनाने की थी। राजपुत्र यदि उनका शिष्य वन जाए तो फिर महफिलें उड़ाने में बड़ा मजा आएगा।

सरल और स्नेही सोदास आनन्द के फन्दे में फँस गया। प्रारम्भ में तो वह सिंहिका से बहुत डरता था, परन्तु जहाँ उसे कन्दमूल खाने का शोक लग गया फिर तो वह गुप्त रूप से आनन्द के साथ जी भरकर खाने लगा। उसकी बुद्धि में परि-वर्त्तन होने लगा। उसका स्वभाव भी बदलने लग गया।

अब उसे परमात्म पूजा में आनन्द नहीं आने लगा। ध्यान में चित्त अस्थिर होने लगा। सिंहिका माता की कल्याणकारी बातों में उसकी रुचि घटने लगी :

सिंहिका ने भी सोदास में आया हुआ परिवर्त्तन देखा। उसने सोदास को टेढ़े मेढ़े प्रश्न पूछकर उसके हृदय की थाह लेने का प्रयत्न किया परन्तु कपटी आनन्द के सहवास ने सोदास की सरलता का हरण कर लिया था। उसने सिंहिका को सच्ची बात नहीं कही, परन्तु बहाने बनाकर सिंहिका को उत्तर दिए।

दूसरी ओर आनन्द ने अब सोदास को माँसाहार की ओर मोड़ने की योजना का निर्माण करना शुरू किया। उसके लिए उसने सोदास के विचारों में परिवर्त्तन लाने के लिए युक्ति-पूर्वक प्रयत्न करना शुरू किया। सोदास में सिंहिका ने जन्म से ही ऐसे गहरे सुसंस्कार तथा सुविचार डाल रक्खे थे कि आनन्द सरलता-पूर्वक सोदास के विचारों में परिवर्त्तन ला सके ऐसा शक्य न था। कभी कभी आनन्द सोदास की मीठी मीठी मजाक भी उड़ाता था।

'ये श्रीमान् तो जब तक प्रत्येक वस्तु का स्वाद चखा नहीं होता तभी तक अभक्ष्य....अभक्ष्य.... का सिद्धान्त कहते हैं। अब कहां गया आपका सिद्धान्त ?'

तब सोदास भी सुना देता:—

'आनन्द, मैं कन्दमूल खाने लगा इसका अर्थ यह न समझो कि कन्दमूल अभक्ष्य नहीं। इसके खाने में पाप नहीं ? कन्दमूल खाने में पाप ही पाप है ऐसी मेरी मान्यता अपरिवर्तनशील है। मेरी दुर्बलता है कि मैं उसके स्वाद को छोड़ नहीं सकता आनन्द हंसकर बात को उड़ा देता।

आनन्द ने विविध प्रकार की खाद्य वस्तुएँ बनवा कर सोदास को खिलानी शुरू की। ऐसी खाद्य सामग्रियां राज-

महल में नहीं बनती थीं। सिंहिका जैसी सदाचारिणी और धार्मिक सन्नारी के रसोई घर में अभक्ष्य खाद्य वस्तुएँ बने भी कहाँ से।

ऐसी ऐसी चीजें आनन्द सोदास को खिलाता कि सोदास को पता तक नहीं चलता था कि यह चीज किस की बनी हुई है। खाने के पश्चात् आनन्द सोदास से कहता कि यह वस्तु किसकी बनी थी। आनन्द ने सोदास का सम्पूर्ण विश्वास सम्पादित कर लिया था।

दूसरी ओर सोदास सिंहिका से धीरे धीरे दूर हटता गया। सिंहिका सोदास के सम्बन्ध में चिन्तातुर रहने लगी।



३७. सोदास का पतन

सोदास दिन प्रतिदिन रसलोलुप बनता चला। आनन्द उसकी रसलोलुपता पुष्ट करता गया।

दूसरी ओर अयोध्या के कुसुमोद्यान में शीलसुन्दर महामुनि विशाल मुनिवृन्द के साथ पधारे। वनपालक ने महाराजा नघुष को बधाई दी। महाराजा नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर सिंहिकादि परिवार के साथ कुसुमोद्यान में पहुँचे। महामुनि के पावन दर्शन करके राज्य परिवार कृतार्थ हुआ। महाराजा नघुष तथा महारानी सिंहिका ऐसे महात्मा की मानो प्रतीक्षा ही कर रहे थे। महात्मा के दर्शन करते ही उनके हृदय में सर्व त्याग करने का शुभ मनोरथ प्रकट हुआ। उन्होंने शील सुन्दर महामुनि को सविनय प्रार्थना की।

'कृपानाथ, आप श्री के पावन दर्शन से हमारी संसार वासना नष्ट हुई है और तरन-तारन चारित्र्य मार्ग स्वीकार करने का शुभ मनोरथ प्रकट हुआ है, अतः हमें परम चारित्र्य जीवन का दान करने की कृपा करें।'

'राजन्, आपके मनोरथ सुन्दर हैं। शुभ कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये।' महामुनि ने महाराजा के मनोरथ को सुदृढ़ किया।

'दयानिधि ! राज्य सिंहासन पर पुत्र का राज्याभिषेक करके अविलम्ब हम आपके चरणों में उपस्थित हो रहे हैं। तब तक आप यहीं विराजने की कृपा करें।'

महाराज परिवार सहित राजमहल में पहुँचे। महामन्त्री को बुलाकर सोदास का राज्याभिषेक करने के लिए आज्ञा दी। सोदास को भी पता चल गया कि माताजी और पिताजी संसार त्याग कर संयम मार्ग पर जा रहे हैं। उसके दिल में दुःख हुआ। उसके हृदय में सिंहिका के प्रति प्रगाढ़ स्नेह था; परन्तु वह भगवान ऋषभदेव के कुल की परम्परा से परिचित था। उसने माता के मार्ग में विघ्न नहीं डाला। उसका राज्याभिषेक किया गया परन्तु अशुभ मुहूर्त में। जल्दवाजी में मुहूर्त देखने में गड़बड़ कर डाली।

सोदास का राज्याभिषेक कर राजा रानी ने महामुनि के पास आकर चारित्र्य अंगीकार किया। महामुनि भी राजा व रानी को चारित्र्य देकर वहाँ से कूच कर गये।

सोदास अयोध्या के महान् राज्य का स्वामी बना। परम मित्र आनन्द को वह अपने पास ही रखता। आनन्द को भी अब रसलोलुपता का पोषण करने का सुअवसर मिल गया। उसने भोजन बनाने वाले को अपनी ओर मिलाया। उसके पास अनेक अभक्ष्य पदार्थों को तैयार करवाने लगा। सोदास को भी उसका चसका लग गया।।

आनन्द में अब मांस के रसास्वादन की वासना जागृत हुई, परन्तु उसने सोचा कि यदि सोदास को पहले से पता चल गया तब तो जरा भी वह नहीं मानेगा और मेरे प्रति घृणा भी करेगा। इसके बदले प्रारम्भ में अन्न मिश्रित थोड़ा थोड़ा मांस

उसे खिलाकर रसिक बना दूँ। फिर तो वह स्वयं ही माँग करने लग जायेगा, और मेरी भी फिर पौबारह। कैसा दुष्ट मित्र! सोदास आनन्द पर विश्वास करने से उसकी दुष्टता का भोग बन रहा था। .....

आनन्द रात्रि के समय बाहर निकला। लुकता छिपता वह कसाई के घर पहुँचा। अपने घर पुरोहित पुत्र और महाराजा के निजी मित्र को आया देखकर कसाई को भी आश्चर्य हुआ।

'महाकाल! तुझे एक काम करना है।'

'फरमाइए महाराज! आपकी सेवा में सेवक तैयार है,' महाकाल ने हाथ जोड़कर आनन्द से कहा।

'कार्य तुझे गुप्त रखना है। यदि किसी को भी पता चला तो.......'

'महाराज, आप निश्चिन्त रहें। कार्य अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी कर दूँगा।'

'बस बस! महाकाल, तब तो तुझे थोड़े ही दिनों में माला-माल कर दूँगा।'

आनन्द हर्ष से नाच उठा। उसने महाकाल को नित्य ताजा माँस अपने गुप्त स्थान पर पहुँचाने का आदेश दिया। महाकाल ने बात स्वीकार की। महाकाल के हाथ में पाँच स्वर्ण मुद्राएँ रखकर आनन्द वहाँ से विदा हुआ। महाकाल ब्राह्मण पुत्र को जाता हुआ देखता रहा—उसका हृदय पुकार उठा—'वाह रे ब्राह्मणपुत्र!'

आनन्द वहाँ से सीधा अपने निवास स्थान पहुँचा और माँस भक्षण की मधुर कल्पना करता हुआ निद्राधीन हुआ।

दूसरे दिन प्रातः उठकर वह राजमहल में पहुंचा। रसोइये को गुप्त रूप से बुलाकर उसने कहा :—

'यदि तुझे यहाँ रहना हो और सुखी होना हो तो मैं कहूँ वैसा कर........'

'महाराज, आपके कथनानुसार ही मैं करता हूँ। सेवक की कोई गलती हुई हो तो बताने की कृपा करें....।'

'तेरी गलती नहीं हुई, परन्तु अब तुझे एक महत्वपूर्ण कार्य करना है।'

'फरमाइये।'

'कार्य गुप्त रखना है....।'

'विश्वास रक्खें, गुप्त रहेगा।'

आनन्द ने रसोईए को सारी योजना समझा दी तथा साथ ही उसकी जेब भी सोने की मोहरों से गर्म कर दी। धनलोलुप व्यक्ति धन के लिये क्या नहीं करता? दूसरे दिन से सोदास के रसोईघर में गुप्त रूप से माँस आना शुरू हो गया। रसोईया आनन्द के मार्गदर्शन के अनुसार ऐसी ऐसी अजीब चीजें बनाने लगा कि सोदास बड़े उत्साह के साथ खाने लगा। उसे यह पता भी न चला कि ये चीजें किसकी बन रही थीं। कई महिने बीत गए। एक दिन सोदास और आनन्द भोजन कर रहे थे। सोदास ने कहा—

'आनन्द! गत कुछ महिनों से रसोई ऐसी स्वादिष्ट हो रही है कि जिसे खाने को बार बार जी चाहता है।' सुनकर आनन्द मात्र हँसा। सोदास ने रसोईये की ओर देखा। रसोईया भी आनन्द के सामने देखकर मुस्करा रहा था।

'तुम दोनों क्यों हँसते हो ? क्या रहस्य है।'

'कुछ नहीं राजन् । आपके आनन्द से हमें प्रसन्नता हो रही है,' आनन्द ने कहा ।

'नहीं, जो भी सच्ची बात हो वह कह दो ! तुम दोनो क्यों हँसे ?' राजा ने आग्रह किया ।

'हँसने का कारण आपको अवसर आने पर समझ में आ जायेगा । अभी नहीं कहा जा सकता ।' आनन्द ने बात पर पर्दा डाल दिया ।

सोदास को चैन नहीं था । भोजन से निवृत्त होकर दोनों मित्र विश्राम गृह में गये । वहाँ पुनः सोदास ने आनन्द से यह बात पूछी । आनन्द ने कहा :

'राजन्, अभयदान दें तो कहूँगा ।'

'मित्र, तुझे अभयदान ही है, तू सुखपूर्वक रह ।'

'आपको जब से भोजन अधिक स्वादिष्ट लगा है तब से भोजन में पशुओं का मांस पकाया जा रहा है ।'

'हूं !' सोदास का शरीर सिहर उठा ।

'मेरी एक ही इच्छा रहती है कि मेरे मित्र को—मेरे राजा को जैसे भी हो सके पौष्टिक भोजन करवाऊँ । इनके जीवन में जैसे जैसे विशेष सुख वृद्धि हो वैसा काम करूँ । इसीलिये मैंने यह काम किया है ।'

'आनन्द, तूने ठीक नहीं किया ।' सोदास विचार मग्न हो गया । महिनों से मांस उसके पेट में जा रहा था इससे उसके विचारों पर भी भारी प्रभाव पड़ा था । माता सिंहिका ने जिन सुसंस्कारों का रोपण किया था वे भी सूख गये थे । अपने परिवार की कुलीनता और उत्तमता को वह भूल चुका था ।

आनन्द ने रहस्योद्‌घाटन किया इससे उसके मन को ठेस तो अवश्य पहुँची परन्तु रस युक्त माँस भक्षण का त्याग करने का विचार उसके मन में नहीं आया। आनन्द सोदास को आराम करने का कहकर वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

अब आनन्द का मार्ग और भी सरल हो गया। राजमहल में खुले रूप से माँस की टोकरियाँ आने लगी। मन्त्री वर्ग को भी पता लग गया; परन्तु अब परिवर्तन होना अशक्य था। सोदास भी अब मर्यादा का उलंघन कर माँस खाने लगा। ऐसा करते करते महाराजा नघुष की दीक्षा तिथि आ गई। मन्त्री वर्ग ने जिन मंदिरों में अठ्ठाई महोत्सव के आयोजन का निर्णय किया। सारे नगर में आठ दिन तक सम्पूर्ण अहिंसा पालन का आदेश प्रसारित किया गया। महाराजा सोदास को भी मंत्री वर्ग ने आठ दिन तक सम्पूर्ण अहिंसा पालन करने की प्रार्थना की। विना माने चल नहीं सकता था अतः सोदास ने अपनी स्वीकृति तो प्रकट कर दी, परन्तु उसका मन माना नहीं। दिन रात जिसे मांसाहार की लत लगी हो, वह आठ दिन तक उसका त्याग कैसे कर सकता था? उसने रसोईये को बुलाया और कहीं से भी मांस गुप्त रूप से लाने के लिए आदेश दिया। रसोईया सारे गाँव में घूम लिया, किसी भी कसाई को बाकी न रक्खा परन्तु माँस कहीं भी न मिला; क्योंकि मन्त्री वर्ग का कठोर आदेश था। कोई भी व्यक्ति किसी भी जीव की हिंसा नहीं कर सकता था। कसाईयों ने भी आठ दिन के लिये हिंसा का सम्पूर्ण त्याग कर रक्खा था।

रसोईया घबराया। एक ओर राजा की आज्ञा थी माँस लाने की, दूसरी ओर कहीं भी माँस मिलता नहीं था। भटकता भटकता वह अयोध्या से बाहर निकल गया। मध्याह्न हो चुका था।

वह थक कर एक वृक्ष के नीचे गाल पर हाथ रखकर भावी भय का विचार करता हुआ बैठा था। कुछ क्षण बीतने पर उसकी दृष्टि सामने एक टेकरी पर दौड़ी। उस टेकरी पर सैंकडों गिद्ध और चीलें उड़ रहे थे। रसोईया वहाँ से उठा। दबे पाँवों वह टेकरी के पास पहुँचा। उसे एक ताजे मरे हुए बालक का कलेवर दिखाई दिया। गिद्धों ने चोंचों के प्रहार से उसे कुचल डाला था। रसोईये ने तुरन्त मन ही मन निर्णय कर उस मृत कलेवर को वहाँ से उठाया। माँस की खास टोकरी में उसे डालकर वस्त्र में लपेट कर वह त्वरित गति से राजमहल में आ पहुँचा। किसी को जरा भी गन्ध न आये इस प्रकार उसने उस कलेवर को परिष्कृत कर उसे पकाया। जितनी पाक कला उसमें थी उस सब का उपयोग कर उसने स्वादिष्ट भोजन तैयार किया। फिर दौड़ा राजा सोदास के पास। सोदास तो कभी से भूख के मारे भेड़िये की तरह तड़फ रहा था। रसोईये को आता देखकर वह उठ बैठा और उसने पूछा :

'क्यों मिल गया ?'

'महाराजा की कृपा से क्या न मिले ?'

'भोजन तैयार है ?'

'जी हाँ ! आपको बुलाने ही आया हूँ।'

'शाबाश ! तू तो वास्तव में मेरा स्वामी-भक्त नौकर है। ऐसा कहकर सोदास ने अपना कण्ठहार उतारकर रसोईये के गले में पहना दिया।

रसोईये की खुशी का पारावार नहीं रहा। सोदास को उसने मनुष्य के मांस से तैयार की हुई खाद्य वस्तुएँ परोसी। सोदास ने जहाँ दो चार कौर खाये कि उसे आज किसी अपूर्व

रस का आनन्द हुआ। आज का भोजन उसे वहुत ही प्रिय लगा। उसने रसोईये से पूछा :

'आज का भोजन तो कमाल है। ऐसा ही भोजन रोज वनाये तो कैसा आनन्द आये ? पर यह तो वता यह माँस किस पशु का है ?'

'महाराजा, पशु का माँस तो आज अयोध्या में कहीं न मिला। यह तो वड़े परिश्रम के पश्चात् मनुष्य का माँस मैंने प्राप्त किया है !'

'किसी का भी हो, अव से नित्य ऐसे ही मांस का भोजन वनायेगा—समझा ?'

'जैसी महाराजा की आज्ञा।'

रसोईया तो हजारों की कीमत का हार देख देखकर प्रसन्न हो रहा था। उसका तो जिन्दगी का दारिद्रय दूर हो चुका था। उसने रोज मनुष्य का माँस लाना स्वीकार तो कर लिया परन्तु फिर पछताने लगा। मनुष्य का माँस रोज कहाँ से लाना ? और उसमें भी वालक का माँस ? उसने सोचा आनन्द की सलाह लूँ। सायंकालीन भोजन कार्य से निवृत्त होकर वह आनन्द के मकान पर पहुँचा। दो दिन से शरीर अस्वस्थ होने के कारण आनन्द राजमहल में नहीं आया था। रसोईये को आता देखकर आनन्द के मन में अनेक शंकाएँ कुशंकाएँ उत्पन्न हुई। रसोईये ने तबियत के समाचार पूछकर मूल बात आनन्द के समक्ष रक्खी।

'महाराज मैं तो चक्कर में पड़ गया हूँ; अब आप बताईये मैं क्या करूँ ?'

'इसमें चिन्ता क्यों करता है ? महाराजा की खुद की इच्छा

है, तो फिर तेरे डरने का क्या कारण? गाँव में अनेक छोटे छोटे बालक हैं। रोज एक को·······'

'काम खतरे से खाली नहीं है।'

'डरपोक लोग राजा की सेवा नहीं कर सकते समझा?'

'महाराज, मैं तो एक गरीब ब्राह्मण का पुत्र हूँ·······कहीं पकड़ा गया तो·······'

'तू डर मत। मैं तुझे सारी योजना समझा देता हूँ। तदनुसार तू काम किये जा। बाकी सब कुछ मैं सम्हाल लूँगा।'

'यह बात ठीक है। तब मुझे डरने की जरूरत नहीं।' आनन्द ने रसोईये को बालक पकडने की कला समझा दी। रसोईये को भी योजना पसन्द आ गई। वह आनन्द को नमस्कार कर विदा हुआ। आनन्द मनुष्य के माँस की कल्पना का रसास्वादन करता हुआ निद्राधीन हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल आनन्द की योजना के अनुसार रसोईये ने मिठाई का एक टोकरा भरा और उसे उठाकर वह अयोध्या की निर्जन गली के किनारे जा कर खड़ा रहा। इस मार्ग से गाँव के गरीब वर्ग के बालक शाला में विद्याभ्यास के लिये जाया करते थे। गली के दूसरे किनारे पर उपाध्याय की शाला थी। गली का मार्ग बालकों के आवागमन के सिवाय निर्जन रहता था। नित्यक्रम के अनुसार बालक इस मार्ग से शाला जाने लगे। रसोईये ने प्रत्येक बालक को मिठाई देना शुरु किया। बालक खुशी से नाच उठे। दूसरे दिन भी इसी प्रकार मिठाई दी और तीसरे दिन भी दी। तीसरे दिन एक के बाद एक बालक मिठाई लेकर जाने लगा। ऐसा करते करते एक अन्तिम बालक आया। उसने भी मिठाई लेने के लिए

हाथ लम्बा किया। रसोईये ने उसका हाथ पकड़कर उसके नाक पर एक दवा सुंघा दी। बालक तुरन्त बेहोश हो गया। रसोईये ने मिठाई के खाली टोकरे में उसे डाला. टोकरा सिर पर रक्खा और वहाँ से चलता बना। वेग के साथ वह राज-महल में आ पहुँचा। रसोईघर के नीचे तहखाना था। वह सीधा उस तहखाने में पहुँच गया। टोकरा नीचे उतारते ही छुरी से उसने उस कोमल बालक की हत्या कर डाली।

धनलोलुप व्यक्ति कौनसा पाप नहीं करता? रसोईये को राजा की ओर से तथा आनन्द की ओर से जैसे जैसे पुरस्कार मिलते गये, वैसे वैसे उस ब्राह्मण का लोभ बढ़ता गया और राजा तथा आनन्द की क्रूर वासना का वह पोषण करने लगा। यहाँ तक कि पुष्प जैसे सुकोमल बालकों की भी हत्या करते उसका हृदय कम्पित नहीं होता था।

'बस, अब यह पाप लीला रसोइये को पसन्द आ गई। रोज वह एक बालक को उड़ा लाने लगा और उसका माँस पकाकर सोदास को खिलाने लगा।

नित्य एक-एक बालक खोना शुरू होने से नगर में हाहाकार मच गया। दिन प्रतिदिन मन्त्री वर्ग के पास शिकायतें आने लगीं। मन्त्री वर्ग भी चिन्तातुर हो गया। अयोध्या के अग्रगण्य नागरिक महामन्त्री से आकर मिले :

'महामन्त्रीजी! कभी भी नहीं पर आजकल नित्य एक बालक का हरण हो रहा है–इसका फौरन पता लगाना चाहिये तथा बालक का अपहरण करने वाले को पकड़ना भी आवश्यक है।'

'आपकी बात बिल्कुल उचित है। मैं भी इसी विचार में

हैं । आज ही महाराजा को [illegible] उचित [illegible]
हैं ।' महामन्त्री के [illegible]
महामन्त्री महाराजा के पास गए । [illegible]
आया जानकर परिस्थिति [illegible] गया ।

'महाराजा, नगर में [illegible]
हो रहा है । प्रजा में गम्भीर [illegible] है । [illegible]
तुरन्त कठोर जाँच करना आवश्यक है ।'

'कोतवाल से कह दो कि पता लगाए । [illegible]
कि रात को कोई [illegible] आकर [illegible]
होगा ।'

'नहीं श्रीमान् ! बच्चे पाठशाला से [illegible]
ही उनमें से किसी बच्चे का अपहरण हो जाता है ।' [illegible]

'तब तो शालाध्यापक से पूछताछ करनी चाहिये ।' [illegible]
के हृदय में मानो कोई चिन्ता ही न हो, इस प्रकार [illegible]
रहा था । चतुर महामन्त्री को महाराजा के इस [illegible]
आश्चर्य हुआ । महामन्त्री वहाँ से उठ [illegible]
आए और मन्त्रिमण्डल को एकत्रित [illegible]
तत्काल बाल-अपहरणकर्ता की खोज करने [illegible]
किया । महामन्त्री ने भी अपने विशेष [illegible]
चोर का पता लगाने का कार्य उसे सौंप [illegible]

गुप्तचर ने तुरन्त ही चोर के सम्बन्ध [illegible]
वह रात के समय शालाध्यापक के [illegible]
चिन्तातुर थे । [illegible]
प्राप्त कर ली थी।

बच्चों को जो पूछना था वह पूछ लिया। उसमें उसे पता चला कि गत कुछ समय से एक व्यक्ति नित्य बच्चों को मिठाई देता है। उसने निर्णय किया कि पहले उस व्यक्ति को पहचान लूँ।

दूसरे दिन गुप्त रूप से उसने मिठाई देने वाले रसोईये को देखा। तुरन्त ही उसे पहचान लिया। वह देखता रहा कि वह क्या करता है। मिठाई लेकर कई बच्चे चले गए। कई बच्चों के साथ उनके संरक्षक भी थे। थोड़ी ही देर पश्चात् एक बच्चा आया। मिठाई लेने के लिये वह रसोईये के पास गया। रसोईये ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। कोई दिखा नहीं। बच्चे को बेहोश कर टोकरे में डाल दिया। गुप्तचर ने यह देख लिया। उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह दुष्ट ही नित्य एक-एक बच्चे को उड़ा ले जाता है। पर अब यह भी पता लगाना आवश्यक था कि वह इस बालक को कहाँ ले जाता है? वहां क्या करता है? अतः गुप्तचर ने उसका पीछा किया। रसोईया तो सीधा राज-महल में घुसा। उसने राजमहल के रक्षक सैनिकों को अपने पीछे-पीछे आने के लिए समझा दिया। रसोईया जैसे ही तह-खाने में घुसा, गुप्तचर ने उसका हाथ पकड़कर पूछा :

'कहाँ जाता है?'

'तुझे क्या?'

'मुझे क्या, बोल कहाँ जाता है? और इस टोकरे में क्या है?'

मेरे साथ बहस न कर। तू अपना रास्ता पकड़।'

'टोकरा नीचे उतार।'

'नहीं उतारता।'

गुप्तचर ने सैनिकों को इशारा किया। सैनिकों ने रसोईये को घेर लिया। गुप्तचर ने तुरन्त एक सैनिक को रवाना किया और महामन्त्री को बुला लाने का आदेश दिया। सैनिक दौड़ता हुआ महामन्त्री के पास पहुँचा और उन्हें फौरन बुला लाया।

टोकरा रसोईये के पास ही था। रसोईया भय के मारे काँप रहा था। उसके शरीर से पसीना छूट रहा था। महामन्त्री को देखकर रसोईये ने टोकरा नीचे रख दिया और महामन्त्री के चरणों में गिर पड़ा।

'माँ-बाप''''मुझे क्षमा करें। इसमें मेरा अपराध नहीं।'

'परन्तु क्या है यह तो कह''''?' महामन्त्री ने रसोईये के मुख से ही सारी बात सुनने के लिए प्रश्न किया।

'कृपानाथ ! नित्य मैं एक बच्चे को इस टोकरे में लाता हूँ।'

'टोकरा खोल।'

रसोईये ने तुरन्त टोकरा खोला....। अन्दर से बेहोश अवस्था में छोटा बच्चा निकला........। महामन्त्री का शरीर सिहर उठा। तुरन्त ही उसने वैद्यों को बुला लाने का आदेश दिया। सैनिक त्वरित गति से जाकर वैद्य को बुला लाया। वैद्यों ने आकर बालक की परीक्षा की। औषधोपचार करके बच्चे की बेहोशी दूर की। महामन्त्री ने बच्चे को एक सिपाही के साथ उसके घर विदा किया। दूसरी ओर रसोईये को कारावास में ले जाने तथा दूसरे दिन राजसभा में उपस्थित करने के लिये आदेश दिया। गुप्तचर के साथ महामन्त्री ने रसोईघर के तहखाने में प्रवेश किया। तहखाने से भयंकर दुर्गंध आ रही

थी । महामन्त्री तथा गुप्तचर ने वस्त्र से अपने नाक मुँह बाँध लिये । ज्यों ही वे तहखाने में पहुँचे.... वहाँ का दारुण दृश्य देख कर महामन्त्री का हृदय काँप उठा । एक ओर नन्हें नन्हें बच्चों के अस्थि पिंजरों का ढेर पड़ा था । तो दूसरी ओर मांस के लोथड़े लटक रहे थे.... भूमि रक्त से गन्दी हो रही थी ।



३८. नरभक्षी

रसोईये के पकड़े जाने के समाचार मिलते ही आनन्द अयोध्या छोड़कर भाग निकला। सोदास चिंतातुर हो गया। अयोध्या के मन्त्रीमण्डल को वह भली प्रकार समझता था। न्याय के खातिर मन्त्रीमण्डल सर्वस्व बलिदान करने में भी नहीं हिचकता था। उसने आनन्द की सलाह लेने का सोचा। आनन्द का पता लगवाया पर हो तब न! वह तो कभी का भाग चुका था।

दूसरी ओर रात के समय महामन्त्री मन्त्रीमण्डल को लेकर कारावास में पहुँचे जहाँ रसोईया कैद था।

'यदि तू सच्ची-सच्ची बात कह देगा तो तुझे मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जाएगा। परन्तु यदि सच्ची बात जरा भी छिपाई तो फाँसी के तख्ते पर लटका दिया जाएगा····' महामन्त्री ने रसोईये के साथ कठोर व्यवहार किया।

'कृपानाथ! मैं सच कहता हूँ कि मैं निर्दोष हूँ।'

'तो किसके कहने से तू यह घोर पाप कर रहा था?'

'दयालु·······'

'कह दे, जरा भी घबराने की आवश्यकता नहीं, सत्य कह दे।'

'महाराजा के कहने से......' तुतलाती जवान से रसोईये ने कह दिया।

'तू यह काम कब से कर रहा था ?'

'लगभग एक महिने से।'

'तुझे बच्चों का अपहरण करने की कला किसने सिखाई ?'

'पुरोहित पुत्र आनन्द ने।'

महामन्त्री ने इस प्रकार सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली। पुनः रसोईये को कोठरी में बन्द कर दिया। मन्त्री-मण्डल महामन्त्री के निवास-स्थान पर पहुँचा। सबके चित्त गम्भीर चिन्ता में मग्न थे। सोदास के घोर दुष्ट कृत्य पर सबके मन उद्विग्न बने हुए थे।

'सारी परिस्थिति आपके सामने स्पष्ट है। अब इसमें क्या करना चाहिए ? आप सबका क्या अभिप्राय है।' महामन्त्री ने मन्त्री-मण्डल के सामने बात रक्खी।

'इस सम्बन्ध में आपने क्या सोचा है ?' दूसरे मन्त्रियों ने महामन्त्री से पूछा।

'मैंने तो सोचा है कि सबसे पहले हमें महाराजा से मिलकर उन्हें यह घोर पाप बन्द करने के लिए समझाना चाहिए।

'मानो यदि न समझें तो ?' एक मन्त्री ने प्रश्न किया।'

'तो फिर मन्त्री-मण्डल को योग्य मार्ग अपनाना चाहिये।'

'कौनसा मार्ग ?'

'आपको कौनसा मार्ग सूझता है ?'

'मुझे तो लगता है कि यदि वे न मानें तो उन्हें राजगद्दी से उतार देना चाहिए !' जरा आवेश के साथ मन्त्री ने अपना अभिप्राय व्यक्त किया।

'बात तो उचित है, प्रजा का भक्षण करने वाला राजा कैसे चल सकता है ?' दूसरे मंत्रियों ने अपनी सहमति प्रकट की।

'तो फिर पहले हम महाराजा से मिलते हैं। उन्हें समझाने का पूर्ण प्रयत्न करते है फिर उचित निर्णय करेंगे।' महामंत्री ने अवसरोचित बात कही। सबने उसे स्वीकार की। काफी रात बीत चुकी थी। परन्तु इसी समय राजा के पास गये बिना चल भी नही सकता था। मन्त्री-मण्डल राजमहल में पहुँचा। सोदास की नींद तो कभी की गायब हो चुकी थी। द्वारपाल ने जाकर सोदास को समाचार दिया।

'मन्त्री-मण्डल आपसे मिलना चाहता है।'

'आने दो' व्यग्रचित्त के साथ सोदास ने उत्तर दिया।

मन्त्री-मण्डल ने सोदास के मन्त्रणा खण्ड में प्रवेश किया। सोदास ने मौन रूप से उनका स्वागत किया और स्वयं एक भद्रासन पर बैठ गया। मन्त्रीमंडल भी उचित आसन पर बैठ गया।

थोड़ी देर मौन छाया रहा; सोदास ने आगमन का कारण पूछ कर मौन भग्न किया। महामन्त्री ने प्रत्युत्तर दिया :

'आप जानते हैं कि एक महिने से गाँव में नन्हें-नन्हें बच्चों की चोरी होती चली आ रही है। इससे प्रजा में बड़ा ही असंतोष व्याप्त है।'

'आपने पता लगाया होगा न ?' सोदास ने भूमि पर दृष्टि रखते हुए पूछा।

'जाँच पूरी हो चुकी है, इसीलिए आपसे मिलना जरूरी है।' महामन्त्री ने कहा। सोदास मौन रहा।

'आपको भी पता लग गया है कि चोर कौन है और किसके लिए वह चोरी करता था।'

'हाँ।'

'अब इस परिस्थिति में परिवर्तन करना आवश्यक है। आप अयोध्या के विशाल राज्य के पिता हैं। पिता प्रजा का पालन करे यही उचित है। भक्षण करना उचित नहीं।'

'मैं यह समझता हूँ····मुझे शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है····' सोदास ने क्रोध में कहा।

'हम शिक्षा देने वाले कौन! यह तो हमें जो उचित लगा उसे आपके सामने कहना अपना कर्तव्य समझ-कर हम कह रहे हैं: प्रजा की शान्ति के बिना राजा राज्य पर टिक नहीं सकता।'

'तो आप क्या कहना चाहते हैं?'

'आपके द्वारा आपकी प्रजा के बालकों का भक्षण बन्द होना चाहिए यही हमारी प्रार्थना है।'

'उस सम्बन्ध में मुझे जैसा उचित लगेगा वैसा मैं करूँगा।'

'आपको क्या उचित लगता है?'

'यह आपको जानने की जरूरत नहीं।'

'राज्य का महामन्त्री होने के नाते यह जानना मेरे अधिकार में है। आपको बताना पड़ेगा। यह जानने के लिए ही अयोध्या का मन्त्री-मण्डल इस समय आपके पास आया है।' महामन्त्री ने दृढ़ता के साथ सोदास को ललकारा। सोदास क्षण

भर तो स्तब्ध हो गया।' क्या उत्तर दूँ।' इसी उथल-पुथल में फँस गया। वह समझ तो गया था कि मन्त्री-मण्डल विना निर्णय लिए यहाँ से जाने वाला नहीं था।

'यदि आप हमें इस समय संतोषजनक उत्तर नही देंगे तो हमें आपके प्रति अपने कर्तव्य पालन के कदम उठाने पड़ेंगे।' महामन्त्री ने जोर देकर कहा।

'तुमसे हो सो कर लेना, मै भी देख लूँगा....' सोदास उत्तर देकर वहाँ से उठकर शयनगृह में चलता वना।

मन्त्रीमण्डल वहाँ से महामन्त्री के आवास पर पहुँचा। सबके मन दुःख और रोष से संतप्त थे। मंत्रणागृह में प्रवेश करते ही महामन्त्री ने कहा 'भाइयो ! मुझे अव एक उपाय सूझता है।'

'वताइये।'

'सोदास को पदभ्रष्ट कर युवराज को राजसिंहासन पर बैठा दें।'

'आपकी वात विलकुल ठीक है ऐसे राजा को कदापि नहीं रक्खा जा सकता।' दूसरे मन्त्री ने वात की पुष्टि की।

'इस वात से प्रजा को सूचित करना चाहिए', महामन्त्री ने कार्य करने की रूपरेखा अंकित करना शुरू किया।

'इसके लिए अग्रगण्य नागरिकों को वुला लेना चाहिए।'

'अभी ही वुला लें', एक मन्त्री बोल उठे। मध्यरात्रि हो चुकी थी। अयोध्या के राजमार्गों पर नीरव शांति व्याप्त थी। कभी कभी नगर रक्षक सिपाहियों के अश्वों का हेशारव शांति को भंग करता था। तो कभी कभी कुत्तों के भौंकने की आवाज

सुनाई देती थी। महामन्त्री के दो अंगन्रक्षक राजमार्गों पर आगे बढ़ते-बढ़ते नगर सेठ की हवेली के पास आ पहुँचे। अंग-रक्षकों ने आवाज लगाई। सामने से हवेली के द्वारपालों ने प्रत्युत्तर दिया। अंग-रक्षक द्वारपालों के पास जा पहुँचे।

'नगर सेठ से मिलना है।'

'इस समय।'

'हाँ जरूरी काम है।'

एक द्वारपाल हवेली के अन्दर गया। पन्द्रह मिनिट में लौट आया और महामन्त्री के अंग-रक्षकों को लेकर पुनः हवेली में चला गया। थोड़ी देर में दोनों अंग-रक्षक नगरसेठ के पास जा पहुँचे। नगरसेठ को प्रणाम कर महामन्त्री का सन्देश सुनाया।

तुरन्त ही नगरसेठ खड़े हो गये। वस्त्र परिवर्तन किया तथा श्री नवकार-मंत्र का स्मरण कर अंगरक्षकों के साथ रवाना हो गये। अपने द्वारपालों को सूचना दी कि नगर के अग्रगण्य जनों को वे महामन्त्री के महल पर आने की सूचना दे दें।

एक आध घण्टे में अग्रगण्य नागरिक महामन्त्री के महल पर एकत्रित हो गये। सबको लेकर नगरसेठ ने महल में प्रवेश किया। महामन्त्री ने योग्य स्वागत करके सबको आसन दिये।

'श्रेष्ठीवर्य ! नगर के कोमल बालकों के भक्षक का पता लग चुका है।'

'बहुत सुन्दर', नगर-सेठ ने बात का हर्षपूर्वक स्वागत किया।

'भक्षक बड़ा विचित्र निकला......जिसकी कल्पना भी न हो सके, ऐसा.......'

'वह-कौन ?'

'रक्षक ही भक्षक ?' दुःख भरे शब्दों में महामन्त्री बोले। महान् मुत्सद्दी नगरसेठ समझ गये।

'फिर क्या किया ?'

'समझाया।'

'और वे समझ गये।'

'नहीं।'

'तब फिर।'

'आपको क्या करना उचित लगता है' महामन्त्री ने नगर सेठ से पूछा, आप सब ने कुछ सोचा होगा न।'

'हमने तो विचार कर रक्खा है।

'वह क्या।'

'युवराज सिंहरथ को राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ कर दें।'

'महाराजा को।'

'पदभ्रष्ट कर दें।

'कैसे ?'

यही सोचना शेष है।' महामन्त्री ने नगरसेठ के सामने आतुरता-पूर्वक देखते हुए पूछा, नगरसेठ के मस्तिष्क में सारी समस्या का कुशलता-पूर्वक समाधान करने की योजना घड़ी जा चुकी थी।

'सेनापति को बुलाकर आज्ञा कर दें, कि इसी समय महाराजा के महल के चारों ओर सैनिकों को नियुक्त कर दे। जब तक हम युवराज का राज्याभिषेक सम्पन्न न करदें तब तक

महाराजा को महल से बाहर निकलने न दे ।' नगर सेठ ने अपनी योजना स्पष्ट की ।

'फिर ?'

'पहरा उठा ले .... महाराजा अयोध्या छोड़कर चले जाऐंगे ।'

नगरसेठ ने भविष्यवेत्ता की भाँति भावी की सूचना दी । सबको नगर सेठ की बात पसन्द आई । महामन्त्री ने तुरन्त ही सेनापति को बुला लाने के लिए एक व्यक्ति को रवाना किया । सेनापति अविलम्ब उपस्थित हुए । महामन्त्री ने सेनापति को परिस्थिति समझा दी और महल को सैनिकों से घेर लेने के लिए सूचना दी । सेनापति महामन्त्री की आज्ञा स्वीकार कर वहाँ से रवाना हुए । मन्त्री-मण्डल और महाजन भी प्रभात में युवराज का राज्याभिषेक करने का निर्णय लेकर अपने-अपने स्थान के लिए विदा हुए ।

कैसा वह प्राचीन काल ! भगवान ऋषभदेव से चली आ रही पवित्र संस्कृति का संरक्षण करने के लिए अयोध्या के सत्ताधीश और नागरिक कितने जागरूक थे । स्वयं राजा भी भूल करता है तो उसे भी सजा देते देर नहीं । निजी स्वार्थ की दुनिया से बाहर निकले बिना यह बात संभव नहीं हो सकती ।

प्रातः हुआ । अयोध्या का राजमहल सशस्त्र सैनिकों से घिर गया था । सारे नगर में भारी कोलाहल फैल चुका था । सबको समाचार मिल चुका था कि सोदास राजा ही स्वयं बाल-भक्षक है । उससे सबके हृदय में सोदास के प्रति भारी घृणा पैदा हो गई थी ।

इतने में नगरवासियों के कानों में राजघोषणा सुनाई दी। 'युवराज सिंहस्थ का आज प्रातः नौ बजे राजसभा में राज्याभिषेक किया जाएगा, अतः सभी नागरिक समय पर उपस्थित हो जाएँ ऐसी महा-मन्त्रीश्वर की आज्ञा है।'

दूसरी ओर सोदास ने अपने महल को सशस्त्र सैनिकों से घिरा हुआ देखा। उसके हृदय में महान् उल्कापात मच गया। बाहर निकलना सम्भव न था और अन्दर रहना सहन नहीं था। वह बेचैन हो गया। सबसे बड़ी बेचैनी तो यह थी कि उसे दो दिन से मनुष्य का माँस मिला नहीं था और अब अयोध्या में मिलना भी असम्भव था। उसके मन में राजगद्दी की कोई कीमत नहीं थी। उसके मन में तो सर्वस्व था मनुष्य का माँस। विषयासक्ति भयंकर होती है। पाँचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त मनुष्य न्याय नीति और सदाचार से दिन प्रतिदिन दूर हटता जाता है। सोदास जिलेन्द्रिय की आसक्ति में बुरी तरह फँसा था। कैसी स्थिति में जा पहुँचा। नरभक्षी हो गया। उसकी लत लग गई। लत में वह अपनी कुलीनता भूला, महान् कर्त्तव्य भूला और अपनी आत्मा को भी भूल बैठा।

युवराज सिंहरथ का राज्याभिषेक हो गया। सेनापति ने राजमहल से सशस्त्र सैनिकों का घेरा उठा लिया। सोदास राजमहल से बाहर निकल पड़ा, अयोध्या से बाहर चला गया। अयोध्या छोड़कर वह दूर दूर चला गया। कोई उसके पीछे नहीं गया। किसी ने उसके पीछे शोक में आंसू नहीं बहाए।

सोदास तीन दिन से भूखा था। उसे अब मनुष्य के माँस के सिवाय कुछ भी प्रिय नहीं लगता था। वह अयोध्या से

दस बारह योजन दूर निकल चुका था। रास्ते में उसे कुछ भी भक्ष्य न मिला। उसकी क्रूर आँखें चारों ओर भटकती थीं। वह एक जंगल में होकर निकल रहा था। वहाँ उसकी दृष्टि में एक झोंपड़ी जैसा मकान दिखाई दिया। कुछ आशा की किरण दिखने से वह मकान की ओर मुड़ा। जैसे जैसे मकान के निकट गया वैसे वैसे बालक के रुदन की आवाज उसे सुनाई देने लगी।

सोदास मकान के आंगन में पहुंचा। मकान में उसे कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया परन्तु अन्दर एक बच्चा रो रहा था। सोदास ने मकान ने झाँका। एक पालने में छोटा बच्चा पड़ा पड़ा रो रहा था। पालने के पास रोटी के दो चार टुकड़े पड़े हुए थे। सोदास में अनुमान लगाया कि अवश्य इस बालक की माँ इसे सुलाकर किसी काम से बाहर गई है परन्तु घर खुला छोड़कर गई है। अतः तुरन्त लौटनी चाहिये।

जबसे उसने छोटे बच्चे की आवाज सुनी थी तभी से उसकी जीभ में पानी भर आया था। उसने तुरन्त अन्दर जाकर बालक को उठाया और वेग के साथ बाहर निकल कर लुकता छिपता वहाँ से भाग निकला। परन्तु बालक का रुदन जारी था। क्रूर हृदय वाले नराधम ने बालक की गर्दन मरोड़ दी और उसे सदा के लिए शांत कर दिया। बस, कच्चे के कच्चे शरीर को खाने लगा....उसका मुख....उसके वस्त्र....और गात्र रक्त से लथपथ हो चुके थे वह डरावना नर राक्षस हो चुका था। उसकी क्षुधा कुछ शांत हुई....तालाब में जाकर उसने पेट भर पानी पीया और एक वृक्ष के नीचे जाकर सो गया। दो-चार मिनिट में वह खर्राटे भरने लग गया।

कहाँ एक दिन महासती सिंहिका का वह लाडला सोदास और कहाँ आज जंगलों में भटकता हुआ नर राक्षस सोदास ? अहो कर्मों की कैसी घोर विडम्बना है ? संसार के रंगमंच पर सदा ही ऐसे नाटकों का अभिनय देखने को मिलता है। ऐसे संसार में कहाँ सुख और शांति है ? मृग तृष्णा के सुख में मस्त होता जीव स्वयं अपनी चिता बनाकर उसमें जल मरता है।

सोदास ने वहाँ से उत्तरापथ की ओर चलना शुरू किया।

उसके सामने से एक बैलगाड़ी आ रही थी। गाड़ी में दो स्त्री पुरुष और दो बच्चे थे। बच्चों को देखते ही सोदास की जीभ में पानी भर आया। उसने यकायक उस गाड़ी पर हमला किया। स्त्री पुरुष का वहीं कटार से वध कर दोनों बच्चों को उसने उठाया और वहां से वह भाग निकला। परन्तु दोनों बच्चों ने करुण क्रन्दन करना शुरू किया। आवाज सुन कर आसपास के खेतों में काम करते हुए लोग दौड़ आए और उन्होंने सोदास का पीछा किया। सोदास ने तुरन्त ही दोनों बच्चों को धरती पर पटककर निर्दयतापूर्वक उनका वध कर डाला। और उसका पीछा करते हुए लोगों की ओर रक्त रंजित कटार के साथ लपका। लोगों के हाथ में भी लाठी, तलवार आदि शस्त्र थे। सोदास का डरावना चेहरा देखकर पहले तो ग्रामवासी डरे परन्तु समूह में होने से हिम्मत करके सोदास को उन्होंने घेर लिया।

ग्रामजनों ने सोदास पर डण्डों का प्रहार करना शुरू किया। परन्तु सोदास ने देखते ही देखते दो ग्रामजनों के सिर धड़ से उड़ा दिए। लोग एकदम आग बबूला हो उठे और

सोदास के सिर पर प्रवल प्रहार करने लगे। सोदास बेहोश होकर जमीन पर ढल पड़ा। नीचे गिरते ही लोग उस पर टूट पड़े परन्तु थोड़े ही क्षणों में मूर्छा हटते ही सोदास खड़ा हो गया और खूंखार शेर की भाँति छलांग भरता हुआ वहाँ से भागा। उसके सिर से रक्त वह रहा था। उसके शरीर पर भी घाव थे। रक्त लिप्त सोदास वहाँ से भागता-भागता एक घोर अरण्य में जा पहुँचा। उसका शरीर बिल्कुल थक चुका था। वह एक वृक्ष के नीचे मूर्छित होकर गिर पड़ा।

कर्मों की कैसी विचित्रता है। अयोध्या के राज-सिंहासन पर अनेक राजा महाराजा जिसके चरणों में झुकते थे, अनेक अप्सराओं जैसी नृत्यांगनाएँ जिसके सामने नृत्य करती थीं···· आज्ञा को उठाने के लिये सैकड़ों सेवक उपस्थित रहते थे, वही सोदास आज असहाय, सर्वथा अकेला घोर अटवी में मूर्छित अवस्था में पड़ा था। यहाँ न कोई उसके अंग की रक्षा करने वाला अंगरक्षक था·······न कोई पंखा झलने वाली दासी थी···· ····वहाँ थे गिद्ध और चीलें! वहाँ थे भेड़िये और गीदड़।

३९. सोदास का उत्थान

'अरे मित्र तू यहाँ कहाँ से ? ऐसी बेहाल स्थिति कैसे हुई ?' एक व्यक्ति वहाँ आ पहुँचा। सोदास को मूर्छित अवस्था में देखकर वह उसके समीप आया। उसे पहचानते ही वह आश्चर्य और दु:ख के साथ उसके पास बैठ गया और उपर्युक्त प्रश्न पूछा। परन्तु सोदास कैसे उत्तर देता! वह तो गाढ़ बेहोशी में पड़ा था। आगंतुक व्यक्ति उठा और कुछ दूर गया। वृक्ष पर्ण का पात्र बनाकर वह सरोवर से पानी भर लाया और सोदास के मुख पर धीरे धीरे छिड़कने लगा। वस्त्र के छोर से हवा डालने लगा। क्रमश: सोदास की मूर्छा कम होने लगी। दो तीन घटिकाओं के पश्चात् उसने आँखें खोलीं। आगंतुक व्यक्ति को देखा।

'आनन्द ? तू ?'

'हाँ····मित्र····परन्तु तेरी ऐसी स्थिति·······?'

'सारी बात कहता हूँ—मुझे प्यास लगी है···········पानी प्राप्त होगा क्या ?'

'हाँ, अभी लाया।' आनन्द दौड़ता हुआ गया और पर्ण-पात्र में पानी भर लाया। सोदास को देकर वह पुन: अटवी में गया और कई वनस्पतियाँ लेकर शीघ्र ही लौट आया। वन-

स्पतियों का रस निकाल कर उसने सोदास के शरीर पर पड़े हुए घाव पर लगाया। सोदास आनन्द के सहारे उठ बैठा। वृक्ष का सहारा लेकर वह बैठा। आनन्द भी सोदास के सम्मुख बैठा। दोनों के मुख पर शोक, खेद और ग्लानि की छाया छाई हुई थी।

'आनन्द! पहले तू अपना वृतान्त कह।'

'मित्र, क्या कहूँ? मुझे मालूम हुआ कि रसोईया पकड़ा जा चुका है, मैंने अपनी सुरक्षा का विचार किया। महामन्त्री के स्वँभाव से आप कहाँ अपरिच्चित हैं? मैं गुप्त रीति से वहाँ से निकल भागा। लुकता-छिपता अयोध्या के राज्य की सीमा से बाहर निकल गया। किसी ग्राम-नगर में आश्रय लेने में मुझे भय लगा, क्योंकि अयोध्या के गुप्तचरों के लिये कोई भी ग्राम-नगर कहाँ छिपा है? मैं जंगलों में भटकने लगा और किसी सुयोग्य स्थान की शोध करने लगा। इस प्रकार भटकता भटकता मैं इस जंगल में आ पहुँचा। यहाँ का स्थान मुझे जँचा। यहाँ निकट ही सरोवर है—तथा इस वन में अनेक प्रकार की औषधिया हैं। थोड़ी ही दूरी पर राजमार्ग भी है—वहाँ से यदा-कदा भक्ष्य भी प्राप्त हो जाता है। भक्ष्य की शोध में भटकता भटकता मैं यहाँ आ पहुँचा........।'

आनन्द ने संक्षिप्त में अपना वृतान्त कह सुनाया। सोदास ने भी अयोध्या में घटित सारा वृतान्त कह सुनाया।

'मित्र, अब हम यहीं रहें। मैं सेवा में कोई कमी नहीं रक्खूँगा,' आनन्द ने सोदास से प्रार्थना की। सोदास विचारमग्न हो गया। कुछ देर सोचकर उसने कहा:

आनन्द, यहाँ एक ही स्थान पर रहने में खतरा है। साथ

ही रोज भक्ष्य प्राप्ति भी कठिन है। अतः मेरा विचार तो घूमते फिरते रहने का है।'

'हम अन्यत्र जाकर भक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। हाँ, रहने का स्थान तो यह सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त अब तो आप जैसे पराक्रमी मुझे मिल गए हैं, फिर भय किस बात का ?'

आनन्द के आग्रह से सोदास सहमत हो गया। दोनों धीरे धीरे वहाँ से आगे बढ़ते हुए सरोवर के पास पहुँचे। आनन्द ने धीरे धीरे सोदास के रक्त लिप्त शरीर को पानी से साफ किया। वस्त्र भी साफ किये और वहाँ से आनन्द द्वारा निर्मित गुप्त स्थान पर दोनों पहुँचे।

दोनों नरभक्षी मित्रों का पुनः मिलन हुआ। उनकी राक्षसी वृत्ति के विकसित होने का अवसर प्राप्त हो गया। कैसा घोर पापोदय! दोनों प्रसन्न हो गए और राक्षसीवृत्ति का पोषण करने लगे।

दोनों मित्रों ने बहुत सा समय वहाँ व्यतीत किया। सोदास की इच्छा अब दूसरे प्रदेश में जाने की हुई। दोनों वहाँ से दक्षिणापथ की ओर मुड़े : रास्ते में जिस किसी अकेले-दुकेले बालक को देखते, तुरन्त ही उसका घात कर भक्षण कर लेते।

दक्षिणापथ की सीमा में प्रवेश करते ही आनन्द को ठोकर लगी और वह लुढ़क पडा। गीदड़ का अशुभ क्रन्दन-रव सुनाई दिया। सोदास वहीं खड़ा रह गया। उसने आनन्द से कहा—

'आनन्द अपशकुन हो रहे हैं, अतः आज यहीं रुक जाएँ।'

'मित्र शकुन-अपशकुन का विचार हमारे लिये भी कैसा ? देख, इस मार्ग पर कोई छोटे छोटे पदचिह्न दिखाई दे रहे हैं। शीघ्र हम चलें तो भक्ष्य मिल जाएगा।'

सोदास को आनन्द की बात न जँची। आज उसके चित्त में आगे बढ़ने का उत्साह ही नहीं था।

'आनन्द ! मैं तो यहीं रहूँगा। तू जल्दी जा और भक्ष्य लेकर तुरन्त लौट आ।'

आनन्द त्वरित गति से आगे बढ़ा। सिर पर मयूरपंखों की पगड़ी, हाथ में धनुष, पीठ पर तीरों का तरकश, नाभि प्रदेश के नीचे व्याघ्रचर्म और पैरों में काष्ट-पादुकाएँ—एक समय का राजपुरोहित पुत्र आज जंगली शिकारी होकर दक्षिणापथ की अटवी के मार्ग पर दौड़ता चला जा रहा था। दाएँ, बाएँ उसका लक्ष्य नहीं था। वह तो उन छोटे छोटे पदचिह्नों को देखता हुआ दौड़ता चला जा रहा था। चारों ओर पर्वत और बीहड़ वन ! पर्वत की एक ऊँची शिला पर वनराज खड़ा खड़ा भक्ष्य की राह देख रहा था। उसकी दृष्टि दौड़ते हुए आनन्द पर गिरी। भयंकर गर्जना की और छलांग मारकर आनन्द के सामने आकर खड़ा हुआ। आनन्द अचानक आक्रमण से हक्का बक्का हो गया। उसके हाथ से धनुष छूट गया। उसका शरीर काँपने लगा—वनराज का जालिम पंजा उसके शरीर पर पड़ा और वह धराशायी हो गया।

भक्ष्य की खोज में निकला हुआ आनन्द स्वयं ही भक्ष्य हो गया। सोदास ने बड़ी प्रतीक्षा की—परन्तु आनन्द कहाँ से आता ? एक दिन विश्राम कर सोदास दक्षिणापथ में प्रविष्ट हुआ। उसका दाहिना नेत्र स्फुरित होने लगा। सामने से सौभाग्यवती स्त्रियों का समूह आ रहा था। पक्षियों की मधुर ध्वनि हो रही थी।

सोदास के चित्त में आज नर माँस की जरा भी भूख जाग्रत नहीं हुई थी। वह सीधा चलता ही जा रहा था। मध्याह्न

काल तक वह चलता ही रहा। इतने में उसे स्वच्छ जल पूरित सरोवर दिखाई दिया। सरोवर के किनारे अशोक वृक्ष की रमणीय घटा थी। सोदास ने सरोवर पर जाकर जलपान किया और अशोक वृक्ष की छाया में जाकर विश्राम करने बैठा। दो घड़ी विश्राम कर वह उठा और आस पास के रमणीय प्रदेश को देखता हुआ भ्रमण करने लगा। इतने में उसे एक अपूर्व दृश्य देखने को मिला।

एक महामुनि ध्यानस्थ खड़े थे, और अशोक वृक्ष की छाया और आसपास क्रीड़ा करते हुए वन्य पशुगण! महामुनि की मुख मुद्रा पर अद्भुत सौम्यता छाई हुई थी। काया कृश थी, वस्त्र मलीन थे। सोदास खड़ा रह गया। महामुनि की ओर एक दृष्टि से देखता रहा। लोह चुम्बक की ओर जैसे लोहा आकर्षित होता है, उसी तरह सोदास भी महामुनि की ओर आकर्षित हुआ। दबे पांवों वह महामुनि के निकट पहुँचा। नवागन्तुक को देखकर वन्य पशु महामुनि के आसपास आकर चारों ओर जमा हो गए। महामुनि ने ध्यान पूर्ण किया। सोदास ने प्रश्न किया :—

हे श्रमण! आपके दर्शन से मुझे आनन्द हो रहा है। आप मुझे धर्म समझाने की कृपा करेंगे?'

महामुनि ने सोदास में छिपी हुई योग्यता को पहचान ली। धर्म प्राप्ति की योग्यता उसके शरीर पर तो दिखती न थी, परन्तु महामुनि केवल बाह्य वेश या शरीर देखकर ही योग्यता का निर्णय नहीं करते। उनकी दिव्यदृष्टि तो शरीर में रही हुई आत्मा का दर्शन करने वाली होती है।

'जिज्ञासु को धर्म समझाना हमारा कर्तव्य है।'

'तो मुझे समझाएँ।'

'सुनो महानुभाव !'

महामुनि ने स्वच्छ स्थल पर आसन बिछाया। सोदास विनय-पूर्वक दूर बैठ गया। अशोक की डाली पर कोयलें कुहूक उठीं।

'जैसा तू स्वयं के प्रति व्यवहार करता है वैसा ही व्यवहार अन्य जीवों के प्रति भी कर—यह धर्म है ! जैसे तू स्वयं को दुःख पहुँचाना नहीं चाहता, वैसे ही तुझे दूसरे जीवों को भी दुःखी नहीं करना चाहिये।'

'मुनि ! बीच में मैं पूछ सकता हूं क्या ?'

'अवश्य !'

'धर्म सुखी वनने के लिये करने का होता है न ?'

'हाँ।'

'अन्य जीवों की हत्या कर यदि सुख मिलता हो तो उसे धर्म तो नहीं कहेंगे न ?'

'भाग्यशाली ! अन्य जीवों को मार कर सुख प्राप्ति होती ही नहीं। अन्य जीवों को मार कर जो सुख प्राप्ति का अनुभव होता है। वह तो अल्पकालिक, काल्पनिक सुख होता है। बाद में उस हिंसा के पाप का फल भोगता हुआ जीव बुरी तरह दुःखी हो जाता है।'

'पाप का फल तो अन्य भव में भोगना पड़ता है न ? इस भव में तो हिंसा से सुख प्राप्ति ही दीखती है न ?'

'इस भव में भी पाप का प्रारम्भिक फल भोगना पड़ता है। परलोक में तो पाप का फल भुगतना पड़ता है वह भिन्न। हिंसक मनुष्य इस भव में भी अनेक कष्ट प्राप्त करता है। तू जरा बुद्धि से सोच। दूसरे जीवों को दुःख देने वाले मनुष्य को शांति कभी मिल सकती है क्या ? हिंसा करके सुख का

अनुभव करने वाले को दुःख के भयंकर अनुभवों के लिये तैयार ही रहना पड़ता है।'

सोदास की आँखों में उसका भूतकाल प्रतिविम्बित होने लगा। माँस भक्षण का पाप जब से उसके जीवन में प्रविष्ट हुआ तब से दिन प्रतिदिन उसका चित्त अशांत रहता था—यह बात उसके समझ में आ गई। माँस भक्षण का सुख अल्पकालीन था जबकि दुःख कितना विपुल सहन करना पड़ा? अयोध्या की प्रजा में अप्रिय बनना पड़ा, राज्य सिंहासन से भ्रष्ट होना पड़ा—भागना पड़ा—जंगलों में भटकना पड़ा, खान-पान और प्रतिष्ठा से हाथ धोना पड़ा—जबकि माँस भक्षण का सुख कितने समय का? जब तक कौर मुँह में चबाया जाए तभी तक सुख। पेट में जाने के पश्चात् क्या?

महामुनि के कथन के साथ अपने अनुभव का साम्य देखकर सोदास महामुनि की बात से मुग्ध होने लगा।

'महानुभाव! हिंसा से बैर बढ़ता है। जीवों के साथ वैर बंधन होता है, परिणाम-स्वरूप हिंसा करने वाले की हिंसा हो जाती है।'

'प्रभो! आपकी बात सत्य है। मुझे अनुभव है।'

'इतना ही नहीं, हिंसक का हृदय क्रूर और कठोर बन जाता है। उसे कोई पाप पापरूप नहीं लगता। परलोक की ओर उसकी दृष्टि जाती नहीं कि मेरा परलोक में क्या होगा? परमात्मा तो उसकी स्मृतिपटल से बिल्कुल मिट जाता है। फिर परमात्मा की आज्ञा के पालन की बात ही कहाँ रही? हिंसक पशु का जैसे कोई मनुष्य विश्वास नहीं करता, वैसे ही हिंसक मनुष्य का भी कोई विश्वास नहीं करता। हिंसक पशु की भांति उसे भी भागते फिरना पड़ता है......मनुष्य जीवन वह हार

जाता है और चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है।'

सोदास का हृदय गद्‌गद् हो गया, उसने महामुनि के चरणों में अपना मस्तक झुका दिया।

'नाथ! आप मेरा उद्धार करें.......मैं घोर पापी हूँ। भगवान् ऋषभदेव के पवित्र वंश को लज्जित करने वाला अयोध्या का मैं अधम सोदास हूँ—मैं नरभक्षी राक्षस हूं—मैंने घोर पाप किये हैं'—सोदास की आँखों से अश्रुधारा वहने लगी।

'सोदास! धर्म की शरण लेने से तेरे पाप हल्के होंगे।'

'प्रभो! मुझे धर्म की शरण देने की कृपा करें-मेरा उद्धार करें।'

'तो आज से तू प्रतिज्ञा कर कि किसी भी निरपराधी जीव को जान-बूझकर मारना नहीं, झूठ बोलना नहीं, चोरी करनी नहीं और परिग्रह की मर्यादा रखनी। स्वस्त्री में सन्तोष मानना, स्वस्त्री के सिवाय अन्य सभी स्त्रियों को माता और वहिन तुल्य मानना।'

'नाथ! मुझे इस प्रतिज्ञा का दान करें—मैं इसका पालन करूँगा।'

महामुनि ने सोदास को व्रत दिए। देव-गुरु और धर्म का स्वरूप समझाया। यद्यपि सिंहिका ने सोदास को यह सब बाल्यकाल में ही समझा रक्खा था, परन्तु महामुनि के ये पुनः समझाने से सोदास के पुराने संस्कारों का उद्‌बोधन हो गया। उसने विनयपूर्वक व्रत अंगीकार किये, महामुनि के चरणों में पुनः पुनः वन्दना की और वहाँ से वह आगे वढ़ा।

मनुष्य का जीवन कैसा है! दो घड़ी पहले का क्रूर, घातक

और नरभक्षी सोदास कोमल-हृदय, दयालु और नर-रक्षक बन गया। पतन और उत्थान, अवनति और उन्नति–बरबादी और आबादी! जहां तक जीव संसारी है, तब तक ये द्वन्द्व चलते ही रहते हैं।

श्री राम के पूर्वजों के तेजोज्वल इतिहास में मात्र सोदास का जीवन ही ऐसा देखने को मिलता है जिसमें पतन की चरम-सीमा दिखती है–परन्तु भगवान ऋषभदेव के वंश का प्रभाव अभी तक वैसा ही तेजस्वी था—सोदास पतन के गर्त से पुनः तिर गया। उसका जीवन पवित्रता के पावन पथ पर मुड़ गया।

सोदास वहां से चला। उनके चित्त में महामुनि ने घर कर लिया था। उनके द्वारा बताया हुआ अहिंसा प्रधान जिन धर्म उसके हृदय में बस गया था। कभी वह अपने पतन पर पश्चात्ताप करता है तो कभी अपने उत्थान के उल्लास का अनुभव करता है। चलता-चलता वह महापुर नामक नगर के रहावन में आ पहुँचा। नगर के बाहर उद्यान था। सोदास उस उद्यान में एक आम्र-वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठा। उससे कुछ दूर दो-चार नौजवान बैठे थे। वे तन्मयता के साथ जोर-जोर से बातें कर रहे थे। सोदास का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ।

'इस प्रकार अच्छे राज्य के अधिनायक का निर्णय करने का कार्य हाथी जैसे प्राणी पर छोड़ने की मूर्खता मंत्री-मंडल ने की है।' एक युवक कह रहा था।

'ऐसा कोई नियम नहीं कि सभी बातों का निर्णय करने में मनुष्य ही होशियार होता है। अरे! कई बातों में मनुष्य भी पशु जैसा निर्णय नहीं कर सकता। जबकि हाथी की बुद्धिमत्ता वैसे भी विशेष [illegible] गई है।'

युवक को सम्बोधित करते हुए कहा। परन्तु युवक के मन का समाधान न हुआ। उसने तर्क दिया—'क्या हाथी की अपेक्षा कोई विशेष बुद्धिशाली मनुष्य महापुर में नहीं है—ऐसा आप मानते हैं ?'

'बुद्धिशाली तो कई मिलेंगे, पर निष्पक्ष बुद्धि वाले बहुत ही कम मिलेंगे और उन्हें भी ढूँढ़ने पड़ेंगे।'

'तो क्या हाथी निष्पक्ष बुद्धि वाला होता है ? क्या उसके स्वामी के प्रति वह पक्षपाती नहीं होता ?'

'होता है ? परन्तु स्वामी तो मर गया ! अब तो वह अपना योग्य स्वामी ढूँढ़ेगा ! देखो ! सुबह से वह नगर में फिर रहा है। अभी तक उसने किसी का अभिषेक नहीं किया है।'

बात यह थी कि महापुर के महाराजा की मृत्यु हो चुकी थी। महाराजा के कोई सन्तान न थी। राज्य के मालिक का निर्णय करने के लिए मंत्री-मंडल ने प्राचीन परम्परा का अनुसरण किया था। राजहस्ति की सूंड में स्वर्ण-कलश दिया था। हाथी को पूर्णतः शृङ्गारित किया था। हाथी जिस को स्वर्ण कलश से अभिषेक करेगा, उसे राजा बनाने की घोषणा की गई थी। सुबह से हाथी नगर में घूम रहा था। हाथी के पीछे-पीछे सारा मंत्रीमंडल और नगर के अग्रगण्य लोग भी घूम रहे थे।

हाथी सारे दिन चक्कर काट कर नगर से बाहर चला। उद्यान की ओर हाथी आता हुआ दिखाई दिया। वे चर्चा करने वाले भी वहाँ से उठे और हाथी की ओर बढ़े। सोदास तो वहीं बैठा रहा। हाथी उद्यान में प्रविष्ट हुआ, उद्यान के द्वार पर वह खड़ा रहा; और सोदास की ओर वह त्वरित गति से आगे बढ़ा। सोदास के पास आकर उसने महान् हर्षारव किया—और

तुरन्त स्वर्ण-कलश से सोदास का अभिषेक किया। मंत्री वर्ग और प्रजाजनों ने जय-जयकार किया।

हाथी वहाँ बैठ गया। मन्त्री वर्ग ने सोदास को प्रणाम किया और प्रार्थना की—'हे महापुरुष! आप पर महापुर राज्य के अधिपति का अभिषेक हुआ है। आप इस पटहस्ति पर आरुढ़ हों और नगर को पावन करें।'

सोदास के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने आँखें बन्द कर गुरुदेव को मन ही मन भाव-पूर्वक वन्दना की—'प्रभो! आपकी ही कृपा का यह प्रभाव है।' मन्त्रीवर्ग ने रत्नजटित थाल में राज-मुकुट प्रस्तुत किया। स्वर्ण थाल में राजा के योग्य वस्त्राभूषण सामने रक्खे। सोदास ने श्री नवकार मन्त्र का स्मरण कर राजवेश धारण किया। महामन्त्री ने जयनाद के साथ सिर पर मुकुट पहनाया। सोदास पटहस्ति पर आरूढ़ हुआ। दोनों ओर चँवर लेकर राज रमणियाँ खड़ी रहीं। सोदास का राज तेज पुनः प्रकाशित हो उठा—कौन जानता था कि ये तो अयोध्या के नाथ हैं!

सवारी नगर की ओर आई। नारियों ने नगर प्रवेश द्वार पर अक्षत, कुंकुम से नये-राजा का स्वागत किया। नगर की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं से कुसुम वृष्टि की। शहनाईयाँ बज उठीं। सन्नारियों ने मंगल गीतों से नगर की गलियों में यौवन ला दिया। सभी सोदास को देखकर प्रसन्नता-आनन्द का अनुभव कर रहे थे।



४०. त्याग की परम्परा को टिकाना सीखा !

सोदास का धार्मिक और भौतिक उत्थान एक साथ हुआ। कोई जीव सदा के लिए बुरा नहीं रहता। यथा योग्य काल में उसमें अच्छाई आती है। सोदास महापुर राज्य का अधिनायक हुआ। उसने राज्य को सुव्यवस्थित कर दिया, परन्तु अब प्रतिदिन उसकी स्मृति में महामुनि का उपदेश आने लगा। उसे अपने पूर्वजों का त्याग प्रधान जीवन याद आने लगा। अपने किये हुए घोर पापों का उग्र प्रायश्चित करने की तमन्ना जागती है। अयोध्या-वासियों को पुनःप्रतीति करवाने की भावना जाग्रत होती है कि 'उनका राजा भगवान ऋषभदेव के वंश को कलंकित करने वाला नहीं।'

सोदास ने दूत को समाचार देकर अयोध्या रवाना किया। कई दिनों तक रास्ता काटने के पश्चात् दूत अयोध्या आ पहुँचा। सीधा ही वह राजमहल में पहुँचा। द्वारपाल ने जाकर राजा सिंहरथ को समाचार दिया :

'महाराजा ! महापुर से राजदूत आया है और आपसे मिलना चाहता है।'

'उसे आने दो', सिंहरथ ने आदेश दिया। द्वारपाल दूत को लेकर उपस्थित हुआ, दूत ने सिंहरथ को प्रणाम किया और कहा :

'अयोध्यापति की जय हो। मैं महापुर से आया हूँ। महा-पुर के महाराजा सोदास का सन्देश आपको देने की मेरी इच्छा है।'

'अरे दूत, महापुर के राजा तो कीर्तिधवल हैं, नाम भिन्न कैसे बोलता है?'

'महाराजा को मालूम हो कि राजा कीर्तिधवल का अकाल निधन हो गया। महाराजा के कोई सन्तान न होने के कारण पटहस्ति जिसे अभिषेक करे उसे महापुर का स्वामी बनाने का मन्त्रीमण्डल ने निर्णय किया। पटहस्ति ने पराक्रमी, तेजस्वी और महान् पुण्यशाली सोदास का अभिषेक किया! सोदास महापुर के महाराजा बने।'

'आश्चर्य! अति आश्चर्य! नरभक्षी सोदास पर पटहस्ति ने अभिषेक किया। पशु ने पशु का अभिषेक किया—यह उचित ही किया।' सिंहरथ ने हँसी उड़ाई।

'महाराजा! यह तो आपको फिर पता लगेगा कि पशु ने पशु का अभिषेक किया है अथवा पशु ने नरवीर पर अभिषेक किया है? हमारे प्रतापी महाराजा ने आपको कहलवाया है कि 'आप महाराजा सोदास की आज्ञा स्वीकार करें, इसी में आप-का हित है।'

'अरे अधम दूत! तेरा बकवास बन्द कर! क्या अयोध्या-पति तेरे नरभक्षी राजा की आज्ञा स्वीकार करेंगे? तू दूत है अत: अवध्य है, अन्यथा?'

'अन्यथा युद्ध क्षेत्र पर पता चलेगा कि कौन वध्य है और कौन अवध्य?'

दूत राजसभा छोड़कर चला गया। सिंहरथ विचार में

डूबा । अपने नरभक्षी पिता के राज्याभिषेक की बात उसकी समझ में न आई ।

सिंहरथ द्वारा तिरस्कृत दूत महापुर पहुँचा और सोदास को यथास्थित घटना सुनाई । सोदास ने तो प्रारम्भ में ही परिणाम का अनुमान कर लिया था । उसने सेनापति को बुलाया और सेना को सज्ज करने का आदेश दिया । सेनापति को पता चला कि 'महाराजा अयोध्या पर आक्रमण करना चाहते हैं' तो वह विचार-मग्न हो गया ।

'क्यों सेनापतिजी ! किस सोच में डूब गए ?'

'महाराजा ! अयोध्या का राज्य एक महान् राज्य है । उसकी सेना अद्वितीय है । उसके राजा एक एक से बढ़कर हैं—ऐसे राज्य पर आक्रमण करना........।'

'साहस है । यही कहना है न ? सेनापतिजी ! जिसमें साहस करने की ताकत नहीं वह क्षत्रिय नहीं—समझे ? जाओ, बिना घबराए तैयारी करो । डरें नहीं, सेना का नेतृत्व मैं करूँगा ।' सोदास ने हँसकर सेनापति को रवाना किया ।

सेनापति को सोदास के महान् पराक्रम का कहाँ परिचय था ? वह कहाँ जानता था कि सोदास अयोध्या का मालिक है ? महापुर के राजमहालय के शिखर पर युद्ध की भेरी बज उठी । हजारों सुभट शस्त्र सज्ज होकर राजमहालय के पटांगन में उमड़ने लगे । नगर की वीरांगनाएँ अपने स्वामी की ललाट पर विजय-तिलक करने लगीं और आनन्द से विदा देने लगीं ।

अनेक राजपुरुषों के मन में जय पराजय की शंकाएँ होने लगीं । किसी को सोदास का यह दुःसाहस लगा । किसी को यह जल्दबाजी का कदम लगा । किसी को सोदास का यह पराक्रम प्रशंसनीय लगा—अयोध्या जैसे महान् राज्य पर महापुर

का छोटा सा राज्य आक्रमण करे—यह कई वृद्ध पुरुषों को भी विचार-विहीन कृत्य लगा—परन्तु सोदास के सम्मुख किसी की बात कहाँ टिक सकती थी ? वह हँस कर बात उड़ा देता था।

शुभ मुहूर्त में सोदास ने युद्ध-यात्रा का आरम्भ किया। गगनभेदी शंख ध्वनि कर सोदास ने ब्रह्मांड गुँजा दिया। अपूर्व शंखध्वनि सुनकर योद्धागण युद्धोन्मत्त हो गए । अश्वों ने हेशारव किया और हाथी नाचने लगे।

थोड़े ही दिनों में सोदास हजारों सुभटों के साथ अयोध्या के रहावन में आ पहुंचा। सिंहरथ वहाँ पिता का स्वागत करने के लिए हजारों वीर सैनिकों के साथ खड़ा था। दोनों सेनाओं ने आमने-सामने छावनियाँ डालीं।

सोदास अपने खेमे में श्री नवकार मन्त्र का स्मरण कर निद्राधीन हुआ था। मध्य रात्रि का समय था। सोदास स्वप्न-सृष्टि में प्रविष्ट हुआ।

उन्हीं महामुनि ने उनके खेमे में प्रवेश किया । सोदास सहसा उठ बैठा और महामुनि के चरणों में वन्दना की। महा-मुनि खड़े ही रहे। उन्होंने दाहिना हाथ ऊँचा उठा कर 'धर्म-लाभ' की आशीष दी। सोदास हाथ जोड़ कर खड़ा रहा।

'सोदास! मैं जानता हूँ कि तू क्यों युद्ध के लिए तैयार हुआ है ? तू चाहता है कि पुत्र को पराजित कर फिर अयोध्या और महापुर दोनों का राज्य उसे सौंप दे। तुझे मेरे पास आना है। साधुता स्वीकार करनी है।'

'परन्तु युद्ध में तुझे मानव संहार रोकना चाहिए। तू सूर्योदय से पूर्व ही अपने मन्त्री को सिंहरथ के पास भेजना और कहलवाना कि 'तू और मैं दोनों ही युद्ध कर लें। व्यर्थ क्यों

हजारों मनुष्यों एवं पशुओं का संहार करें ?' वह मान जाएगा। उसमें तेरी विजय होगी। वत्स ! अयोध्या के लाखों नर नारी तेरे चरणों में नत मस्तक होंगे। तेरा कलंक धुल जाएगा।'

कैसा भव्य स्वप्न ? मनोहर स्वप्न देखकर सोदास एकदम जाग उठा। उसने इधर उधर देखना शुरू किया। कहीं भी मुनि दिखाई न दिए। वह विस्तर छोड़कर वाहर आया—चारों ओर दृष्टिपात किया। प्रहरी सिपाहियों के सिवाय कोई दिखाई न दिया। वह पुनः अपने खेमे में प्रविष्ट हुआ। विस्तर का त्याग कर भूमि पर एक श्वेत आसन विछाकर, शुद्ध वस्त्र धारण कर वैठा। श्री अरिहंत परमात्मा का भावपूर्वक स्मरण किया। श्री गुरूदेव को स्मृति पट पर लाकर उनके पावन चरणों में कोटि कोटि वन्दना की। श्री नवकार मन्त्र का स्मरण शुरू किया।

पूर्व दिशा में भगवान अंशुमाली की ऊषा रानी का आगमन हुआ। क्षितिज का पट लाल लाल हो गया। सोदास ने प्रहरी को आवाज दी। प्रहरी ने खेमे में प्रवेश कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

'महा-मन्त्री को फौरन वुला लाओ।'

'जो आज्ञा, श्रीमान् !' सशस्त्र प्रहरी अल्प समय में ही महा-मन्त्री को वुला लाया।

'महाराजा की जय हो—महा-मन्त्री पधार गए हैं।'

'अन्दर आने दो।'

महा-मन्त्री ने सोदास के खेमे में प्रवेश किया। महाराजा को प्रणाम कर वे उचित आसन पर बैठे।

'महा-मन्त्रीजी, अभी ही आपको अयोध्यापति के पास जाना है।'

'जैसी महाराजा की आज्ञा।'

'जाकर कहें कि 'सोदास कहलवाता है कि अयोध्यापति और महापुर के अधिनायक दोनों ही युद्ध करके जय-पराजय का निर्णय कर लें। व्यर्थ लाखों जीवों का संहार क्यों करें। हम भगवान ऋषभदेव के ही वंशज हैं। इस प्रकार अपने स्वार्थ के लिये लाखों जीवों का रक्तपात करना हमारे लिये उचित नहीं है। इस प्रकार कहकर उचित उत्तर ले आओ।'

'जैसी आज्ञा। अभी जाता हूँ।'

'साथ में सेनापतिजी को ले जाएँ।'

'क्या आवश्यकता है। भगवान जिनेश्वरदेव की कृपा से सेवक निर्भय है।'

'भगवान जिनेश्वरदेव आपकी रक्षा करें।'

महामन्त्री द्वार पर आए और क्षणभर खड़े रह गए। श्री-नवकार मंत्र का स्मरण कर उन्होंने प्रयाण किया। सीधे ही वे अयोध्या की छावनी के पास पहुँचे। पहरेदार ने रोका।

'कौन है ? कहाँ जाना है ?'

'मैं महापुर राज्य का महामन्त्री हूँ और मुझे अयोध्यापति से मिलना है। तू मुझे अयोध्यापति के पास ले चल।'

द्वाररक्षक तो महामन्त्री को देखता ही रहा। उसने कुछ आश्चर्य और कुतुहल अनुभव किया।

'आप यहाँ कुछ देर खड़े रहें। मैं हमारे नायक को बुला लाता हूँ।'

द्वाररक्षक कुछ ही क्षणों में लौट आया। उसके साथ उसका नायक भी अनेक शस्त्रों से सज्ज हुआ आ पहुँचा। महामन्त्री को लेकर वह अयोध्यापति के शिविर के पास पहुँचा। महामंत्री को वाहर खड़े रखकर वह अन्दर गया और कुछ ही क्षणों में लौटकर महामन्त्री को साथ ले पुनः अन्दर प्रविष्ट हुआ।

'पधारिये महामन्त्रीजी!' अयोध्या के महामात्य ने स्वागतोच्चारण किया और उचित आसन दिया।

'इस समय कैसे पधारना हुआ?' महामात्य ने प्रश्न किया।

'महापुर के राजा का एक महत्वपूर्ण संदेश देने के लिए।'

महामन्त्री ने शिविर के अन्दर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। राजा सिंहरथ और महामात्य को छोड़कर अन्य सभी वाहर चले गए। महामन्त्री ने कहा:

'महाराजा सोदास की ऐसी आंतरिक इच्छा है कि युद्ध दो सेनाओं के वीच न हो, परन्तु दो राजाओं के वीच हो।' सिंहरथ के सामने देखकर महामात्य ने संक्षिप्त भाषा में कह दिया।

'क्या अयोध्या का अजेय सैन्य देखकर महापुर नरेश घवरा गए?' सिंहरथ ने व्यंग किया।

'हा हा हा हा····महाराजा सोदास जैसे पराक्रमी नरवीर घवराएँगे? भूल रहे हैं महाराजा! महाराजा सोदास का कहना है कि हम दोनों भगवान ऋषभदेव के ही वंशज हैं। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए लाखों जीवों के रक्त की नदियाँ बहाना उचित नहीं। अतः दोनों राजा ही लड़ लें।' महापुर के महाप्रज्ञ मन्त्री ने हँसते हँसते बात को स्पष्ट किया।

सिंहरथ ने महामात्य की ओर देखा। महामात्य ने सहमति प्रकट की। सिंहरथ ने सोदास का आह्वान स्वीकार किया। महापुर के मन्त्री ने आनन्द व्यक्त किया और जाने की अनुमति मांगी।

दोनों छावनियों में घोषणा की गई कि युद्ध दो सेनाओं के बीच नहीं, परन्तु दो राजाओं के बीच होगा।

देख लो! यह है संसार की विचित्रता! पुत्र पिता के विरुद्ध युद्ध क्षेत्र में उतरता है! ये भी श्री राम के पूर्वज! भगवान श्री ऋषभदेव के वंशज! कर्म किसे भान नहीं भुलाते?

दोनों सेनाएँ शस्त्र नीचे डालकर खड़ी रहीं। दोनों राजा रथारूढ़ हुए। दोनों के रथ आमने सामने आ गए।

'पहले तू प्रहार कर।' सोदास ने सिंहरथ से कहा।

सिंहरथ ने धनुष पर तीर चढ़ाया—कान तक खींच कर सोदास पर छोड़ा। तीर सोदास के कान के पास होकर निकल गया। सोदास ने एक साथ दस तीर छोड़े—सिंहरथ ने बीच से ही इन तीरों को तोड़ फेंके और पाँच तीर छोड़कर सोदास के अश्व को घायल कर डाला। सोदास ने पाँच तीर छोड़ कर सिंहरथ के मुकुट को उड़ा दिया और अपने रथ को सिंहरथ के रथ के साथ भिड़ा दिया। सिंहरथ ने धनुष बाण नीचे रख दिए और हाथ में गदा उठाई। सोदास ने भी हाथ में गदा उठाई। आमने-सामने गदाएँ टकराने लगीं। उनमें से अग्नि-कण बरसने लगे। ब्रह्मांड प्रस्फोट जैसी भयानक ध्वनि होने लगी। सोदास ने चतुराई से सिंहरथ के हाथ पर प्रहार किया। सिंहरथ की गदा उछलकर दूर जा गिरी। वह दूसरा शस्त्र

उठाने जाए उसके पूर्व तो सोदास ने लात मार कर उसे नीचे गिरा दिया और हाथ में परशु लेकर छाती पर जमा दिया ।

महापुर की सेना ने गगनभेदी जयध्वनि की । सिंहरथ के रथ पर महापुर का ध्वज फहरा दिया गया । अयोध्या के मन्त्री मण्डल ने सोदास के चरणों में वन्दना की । सोदास ने सिंहरथ को खड़ा किया ।

'पुत्र ! मुझे तेरा राज्य नहीं चाहिए । मेरा राज्य भी तुझे देना है । अयोध्या का राज्य मैंने तुझे नहीं दिया था—वह तो मन्त्री-मण्डल ने तुझे दिया था । आज मैं तुझे अयोध्या का राज्य भी सौंपता हूँ और महापुर का राज्य भी सौंपता हूँ ।'

'पिताजी ! मेरा अपराध क्षमा करें ।' सिंहरथ ने सोदास के चरणों में नमस्कार किया ।

महापुर के मन्त्री वर्ग को जब ज्ञात हुआ कि ये सोदास तो अयोध्या के स्वामी थे तब उनके हर्ष की सीमा न रही । महामन्त्री ने सिंहरथ को प्रणाम किया । सोदास ने महापुर के मन्त्री-मण्डल से कहा :

'आज से तुम्हारा स्वामी सिंहरथ है—इसकी आज्ञा का पालन करना ।'

'परन्तु नाथ आप........'

'मैं ? अब स्वामी बनना नहीं चाहता........मैं तो अब दास बनूँगा—जिनचरणों का सेवक बनूँगा—मेरे पापों का प्रायश्चित करूँगा ।'

'आपके बिना तो, स्वामी,—अयोध्या का राज्य अनाथ हो जाएगा ।'

'अयोध्या का राज्य जब तक भगवान ऋषभदेव से चली आ रही त्याग की परम्परा का अनुसरण करता रहेगा, तब तक सनाथ ही रहेगा। मैं उन महापुरुषों का अनुसरण करना चाहता हूँ जिन्होंने सर्व त्याग कर परम आत्म कल्याण साधा है। वे पुण्य पुरुष तो धन्य थे……संसार में भी सच्चरित्र थे—जबकि मैं तो पापी हूँ—मैंने घोर पाप किए हैं। मैंने महासती सिंहिका की कोख को लज्जित किया है।'

दोनों राज्यों के मन्त्रियों की आँखें अश्रु भीगी हो गई। अयोध्या के महामात्य ने कहा :

'नाथ ! हमारा अपराध क्षमा करें। हमने आपके प्रति घोर अन्याय किया है—अनुचित व्यवहार किया है।'

'आपने जरा भी अनुचित नहीं किया। अयोध्या के मन्त्री-मण्डल ने उचित ही किया था। नरभक्षी राजा को पदच्युत करना सर्वथा न्याय-संगत था।'

'तो आप अयोध्या में पधारने की कृपा करें।' महामन्त्री ने निवेदन किया।

'अब मुझे अयोध्या से क्या प्रयोजन ? अब तो उन महान् गुरुदेव की निश्रा में ही जाना है, जिन्होंने मुझे नव-जीवन प्रदान किया, जिन्होंने मुझे सन्मार्ग पर लगाया—जिन्होंने मुझे राक्षस से मानव बनाया। वे महामुनि मुझे बुला रहे हैं। अब तो 'अरिहंते शरणं पवज्जामि।'

सोदास ने रणभूमि पर ही संसारी वेश का त्याग किया। साधु वेश को धारण कर लिया। अयोध्या के लाखों नर नारी दौड़े आए। राजर्षि के पावन चरणों में सभी ने अश्रु भीगी आँखों से वन्दना की।

श्री रामचन्द्रजी के पूर्वजों के तेजस्वी इतिहास की यहाँ समाप्ति होती है। राग पर अंततोगत्वा त्याग की महान् विजय मानव जाति को जीवन का अन्तिम लक्ष्य सूचित कर जाती है। राग में जीवन बिताते हुए मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य तो सर्व त्याग का ही होना चाहिए। जीवन के अन्तिम साँस तक राग-मय जीवन व्यतीत करना भगवान श्री ऋषभदेव की संस्कृति नहीं।

समाप्त

परिशिष्ट २

सदस्य सूची

आजीवन सदस्य

१.	श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ	जयपुर (राज०)
२.	,, संपतलालजी लूंकड़	शोलापुर (महाराष्ट्र)
३.	,, भेरुबाग जैन संघ	जोधपुर (राज०)
४.	,, शान्तिलालजी बाफना	जयपुर (राज०)
५.	,, पूनमचन्दजी हरिश्चन्द्रजी बडेर	,,
६.	एक सद्गृहस्थ	,,
७.	,, विजयसिंहजी सिंघवी	उदयपुर (राज०)
८.	,, शाह फोजमल कपूरचन्द स्टेशन रोड	दावणगिरी (मैसूर)
९.	,, श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ	उदयपुर

मानद सदस्य :

१.	श्री गोड़ीदासजी ढढ्ढा	जयपुर
२.	श्री केसरीसिंहजी उमरावमलजी पालेचा	,,
३.	गुजराती बहिनें C/O मनसुख भाई लीनावर	,,
४.	श्री चांदसिंहजी फतेहसिंहजी कर्नावट	,,
५.	श्री एम० मिलापचन्द	मद्रास
६.	यतिश्री चन्द्रकान्तिसागरजी	अलवर
७.	श्री कालुलालजी मोडीलालजी मारवाड़ी	उदयपुर
८.	,, रोशनलालजी बोल्या	,,

९. श्री दीवानसिंहजी बोतलालजी बाफना	उदयपुर
१०. ,, गणपतसिंहजी कोठारी	,,
११. ,, हरनाथसिंहजी मेहता	,,
१२. ,, ख्यालीलालजी सुन्दरलालजी सुराणा (दलाल)	,,
१३. ,, पारसमलजी शराफ	बिलाडा
१४. ,, तेजराजजी भंसाली	पिपाड
१५. ,, भैंरूसिहजी मेहता	बिलाडा
१६. शाह धर्माजी लखमाजी, डोड्डापेट	दावणगिरी
१७. शाह पूनमचन्द चंपकलाल ,,	,,
१८. शाह जे० कपुरचन्द विजयलक्ष्मी रोड	,,
१९. सरूपचन्दजी बोथरा	मद्रास

पंचवर्षीय सदस्य : (वि०सं० २०२६)

१. श्री मानकचन्दजी देशलड़ा	केकड़ी
२. ,, नेमीचन्दजी कोठारी	,,
३. ,, मांगीलालजी डांगी	,,
४. ,, हेमचन्दजी तातेड़ा	,,
५. ,, दीपचन्दजी रूपावत	,,
६. ,, ताराचन्दजी धुप्या	,,
७. ,, चुन्नीलालजी देसाजी पालरेचा	लोनावला
८. ,, भंवरलालजी रांका	ब्यावर
९. ,, पारसचन्दजी चपलावत	आगरा
१०. ,, भंवरलालजी रामपूरीया	पुरलिया
११. ,, रोशनलालजी दशरडा	उदयपुर
१२. ,, सोहनलालजी दौलतरामजी सोनी	,,
१३. ,, करणसिंहजी कालुलालजी नाहर	,,
१४. ,, नानालालजी मनोहरलालजी	,,

१५. श्री प्रभुलालजी गोरधनलालजी दोशी	उदयपुर
१६. ,, भगवतीलालजी गहरीलालजी हुमड़	,,
१७. ,, वर्द्धमान जैन ज्ञानमन्दिर	,,
१८. ,, वीरचन्दजी सोरोया	,,
१९. ,, ग्रन्थालालजी तेजसिंहजी दोशी	,,
२०. ,, बसन्तीलालजी मोतीलालजी बाफना	,,
२१. ,, माणकचन्दजी पन्नालालजी जैन	,,
२२. ,, छगनलालजी कोठारी	,,
२३. ,, शिवदानसिंहजी चोपड़ा	,,
२४. ,, किशोरीलालजी मोतीलालजी मेहता	,,
२५. डा० मोहनसिंहजी खाव्या	,,
२६. श्री अजितनाथ जैन धर्मशाला	,,
२७. ,, रामसिंहजी चपलोत	,,
२८. ,, कन्हैयालालजी मोगरा	,,
२९. ,, मनोहरलालजी भण्डारी	,,
३०. ,, भंवरलालजी रामपुरिया	,,
३१. ,, रूपलालजी श्रीमाल	,,
३२. ,, बलवन्तसिंहजी उरजनलालजी बया	,,
३३. ,, रूपलालजी कोठारी	,,
३४. ,, चतरसिंहजी गोरवाड़ा (एडवोकेट)	,,
३५. ,, मनोहरसिंहजी खाव्या	,,
३६. ,, फतहलालजी मेहता	,,
३७. ,, जैन श्वे. पेढ़ी, केसरियाजी	,,
३८. ,, श्रीमती चन्द्रकान्ता मेहता	,,
३९. श्री उत्तमसिंहजी चोतलालजी घुप्पा	,,
४०. ,, जोयनसिंहजी भीमराजजी मेहता	,,
४१. ,, चोतमलजी नाहर	,,

४२. श्री रोशनलालजी लोढा — उदयपुर
४३. ,, सुन्दरलालजी सिंघटवाडिया — ,,
४४. ,, सम्पतलालजी पुंजावत — ,,
४५. ,, राजेन्द्रकुमारजी रामसिंहजी मेहता — ,,
४६. ,, जैन ब्रदर्स (धान मण्डी) — ,,
४७. ,, कन्हैयालालजी जैन लक्कड़वास वाला — ,,
४८. ,, लक्ष्मीलालजी गोपाललालजी कर्णपुरिया — ,,
४९. ,, मीठालालजी जैन, कलकत्ता स्टोर्स — ,,
५०. ,, उग्रसिंहजी धर्मसिंहजी मोरडिया — ,,
५१. ,, शान्तिलालजी गोट्टुलालजी दोशी — ,,
५२. ,, पदमसिंहजी नवलसिंहजी सोनी — ,,
५३. ,, चतरभुजजी नारायणजी शराफ (राजपूत) — ,,
५४. ,, धनपतसिंहजी शोभालालजी मेहता — ,,
५५. ,, घीसूलालजी कटारिया — पाली
५६. ,, रिखबचन्दजी जैन (अध्यापक) — जोधपुर
५७. ,, गोपीनाथजी जैन C/o श्री जयपुर डेयरीज कोआपरेटिव सोसायटी — जयपुर
५८. ,, मनोहरसिंहजी गलुंडिया — उदयपुर
५९. ,, जोधसिंहजी गलुंडिया — उदयपुर
६०. ,, कटारिया प्रोडक्ट्स — जयपुर
६१. ,, जी.डी. सिंघवी — बम्बई
६२. डा० जवाहरलालजी चोरडिया — जयपुर
६३. श्री चेतनदासजी शीतलदासजी — ,,
६४. ,, गोपालदासजी रामकुमारजी — ,,
६५. शाह नोपचन्द मोतीजी, चौकीपेठ — दावणगिरि
६६. ,, मगनलाल फूलचन्द बारदान मर्चेन्ट चामराज पेठ — ,,
६७. श्री अम्बिका स्टोर्स, स्टेशन रोड — ,,

६८. श्री रिकबदास मूलचन्द C/o कपूरचन्द रिकबदास, दावणगिरी
कालिकादेवी रोड ,,
६९. शाह फौजमल कालुराम, स्टेशन रोड ,,
७०. ,, बाबुलाल कस्तुरजी, काथपेठ ,,
७१. ,, गेनमलजी सांकलचन्दजी, तंबाकू पेठ ,,
७२. श्री महावीर होलसेल क्लोथ डिपो, डोड्डा पेठ ,,
७३. शाह पीतालाल मणीलाल, विजयालक्ष्मी रोड ,,
७४. ,, भभूतमल प्रेमचन्द, कालिकादेवी रोड ,,
७५. ,, छगनलाल मगनलाल, बेबुली गली ,,
७६. ,, जयन्तीलाल जेठमल, स्टेशन रोड ,,
७७. ,, मानाजी भभूतमल, मंडीपेठ ,,
७८. ,, हीरालाल एण्ड ब्रदर्स, चोकीपेठ ,,
७९. ;, वेलचन्द दोलाजी, डोड्डपेठ ,,
८०. ,, चुन्नीलाल श्री तलकाजी, विजयलक्ष्मी रोड ,,
८१. ,, झवेरचन्दजी शंकरलालजी, बेबुली गली ,,
८२. ,, एस. गुलाबचन्द दोड्डपेट ,,
८३. ,, भबुतमल ओंकारमल. स्टेशन रोड ,,
८४. ,. जेताजी फूलचन्द, स्टेशन रोड ,,
८५. ,, धरमचन्द भबुतमल कालिका देवी रोड ,,
८६. श्री प्रकाशचन्द मल्लारा उदयपुर
८७. ,, कवरमलजी भवरलालजी पामेच ,,
८८. ,, बसन्तीलालजी मालमसिंहजी बाफना ,,
८९. ,, रोशनलालजी सिगटवाडिया ,,
९०. ,; हिम्मतसिंहजी बाफना ,,
९१. ,, लक्ष्मीलालजी मारु ,,
९२. ,, मयालीलालजी सिगटवाडिया ,,
९३. , फूलचन्दजी पारख ,,

९४.	श्री लक्ष्मीलालजी लोढा	उदयपुर
९५.	,, बख्तावरसिंहजी चपलोत	,,
९६.	,, पदमसिंहजी बाफना	,,
९७.	,, हीरालालजी डुंगरपुरिया	,,
९८.	,, गोविन्दसिंहजी सिपाणी	,,
९९.	,, मोहनलालजी सुराणा	,,
१००.	,, रणजीतलालजी दोशी	,,
१०१.	,, धन्नालालजी बोलीया	,,
१०२.	,, उदयलालजी बाबुलालजी गांधी	,,
१०३.	,; मनोहरलालजी मुगनलालजी मेहता	,,
१०४.	,, जगन्नाथसिंहजी मेहता	,,
१०५.	,, शान्तीलालजी चेलावत	,,
१०६.	,, फतेहलालजी सिंघवी	,,
१०७.	,, गोरधनलालजी पटवा	डुगरपुर
१०८.	,, बाबुलालजी भंवरलालजी भटेवडा	विजय नगर
१०९.	,, बन्शीलालजी नारायणलालजी शोभावत	उदयपुर
११०.	,, भंवरलालजी चेलावत	,,
१११.	,, करणसिंहजी चेलावत	,,
११२.	,, हीरालालजी नाहर	,,
११३.	, हमेरलालजी मुरडिया	,,
११४.	,, विजय मेनेट्री ट्रेडिंग कम्पनी	,,
११५.	,, कालूलालजी जैन	,,
११६.	,, भंवरलालजी बलाई	पाली
११७.	,, भुरीलालजी बसन्तीलालजी	उदयपुर
११८.	,, हिम्मतसिंहजी पन्नालालजी	,,
११९.	,, हस्तीमलजी घासीरामजी पोरवाल	,,
१२०.	,, मांगीलालजी लोढा	,,

१२१.	,, मोतीचन्दजी ममरड़िया	नागौर
१२२.	,, मोहनलालजी भाक	उदयपुर
१२३.	,, गोरजाबाई नागोरी	,,
१२४.	,, कन्हैयालालजी बया	,,
१२५.	,, पी० सी० कोठारी	रतलाम
१२६.	,, मोतीलालजी बडोरिया	पाली
१२७.	,, महेन्द्रसिंहजी भंवरलालजी पारख	,,
१२८.	,, मङ्गलसिंहजी सिंघी	,,
१२९.	,, कंचनबाई मेरविया	,,
१३०.	,, कमलसिंहजी सुराना	बहरइ नसिया (बंगाल बिहार)
१३१.	,, सज्जनसिंहजी मेहता	उदयपुर
१३२.	,, बसन्तीलालजी दलाल	,,
१३३.	,, प्राणलालजी कोठारी	,,
१३४.	,, मोहनलालजी गेगलालजी भण्डारी	,,
१३५.	,, नारायणजी भागचन्दजी सराफ	,,
१३६.	,, गुणीलालजी बोल्या	,,
१३७.	,, जिनदासजी कोचर	बीकानेर
१३८.	,, सिंघवी तेजमलजी सोपमलजी	भीलवाड़ा
१३९.	,, कंवरलालजी जैन वार्ड नं० ३	भीलवाड़ा
१४०.	वकील राजमलजी बोरदिया वार्ड नं० ३	भीलवाड़ा
१४१.	श्री चन्द्रसिंहजी माणकलालजी मेहता	उदयपुर
१४२.	,, पारसमलजी चुन्नीलालजी	नोखो